FIRST EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

SHUKDEVA ROY

at

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road

Chandralok—Allahabad

May

1930
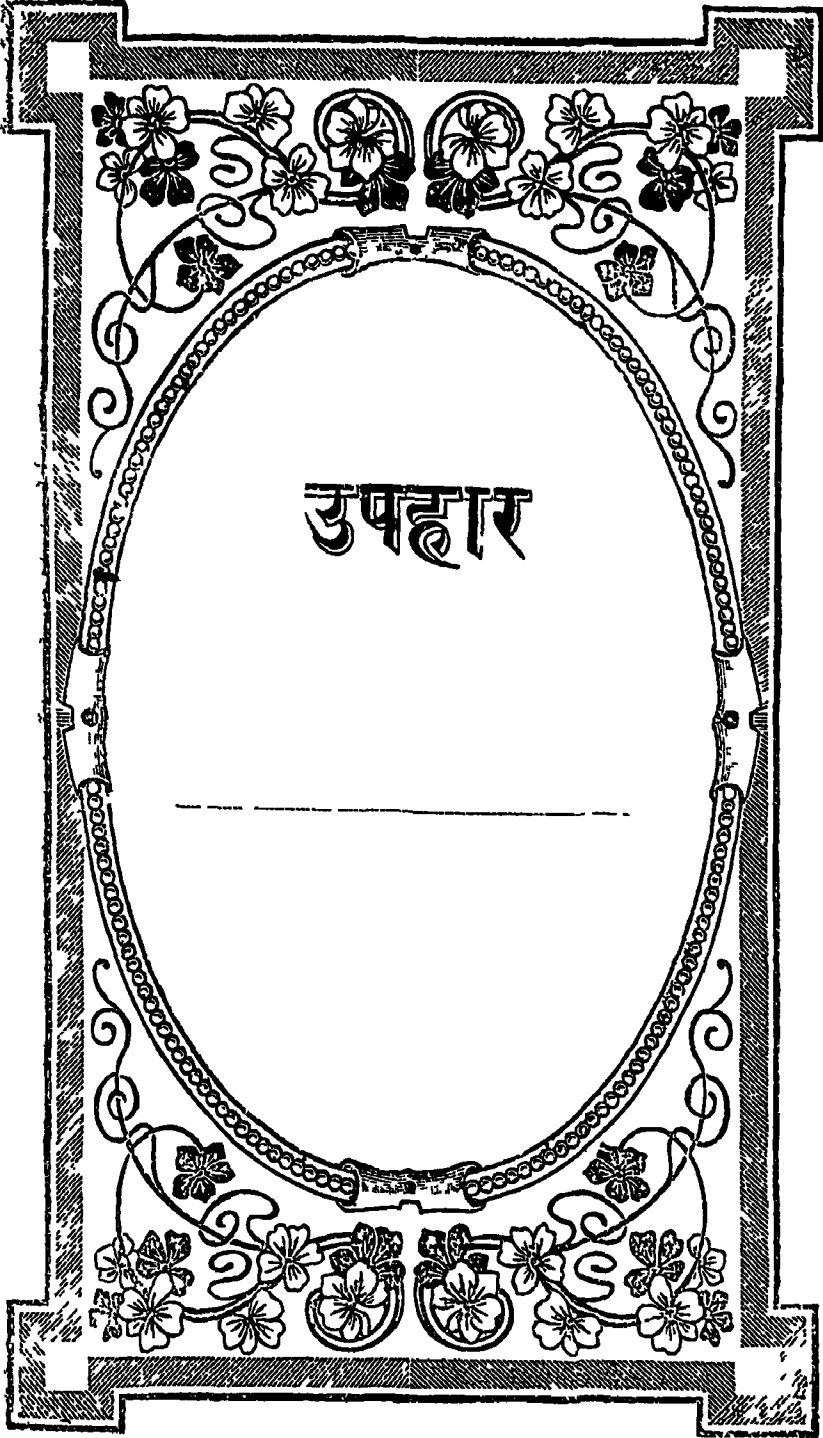
माँ !

अपने जीवन के उस सुदूर शैशव से लेकर आज तक तेरी ही उस स्नेहमयी गोद में बैठ कर तुतलाया और इठलाया हूँ। १४ वर्ष तक निरन्तर तेरे ही स्तनों से सुमधुर ज्ञान-सुधा का पान कर अपने को कृतार्थ किया है। मेरी देह व प्रत्येक अङ्ग, मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण और मेरे ज्ञान का प्रत्येक अंश तेरा है।

तेरे उस स्वर्गीय स्तन्य के सहारे ही मैंने संसार की विभूति महात्मा ईसा के सम्बन्ध में कुछ लिखने का प्रयास किया है। भली या बुरी जो कुछ भी है तेरे इस कुपूत की कृति है। तेरी चीज़ है इसे और किसके अर्पण करूँ ?

'त्वदीयं वस्तु हे मातः ! तुभ्यमेव समर्पये'

पुत्र-वात्सल्य की स्वर्गीय भावनाओं के साथ इस श्रद्धामयी अकिञ्चन भेंट को स्वीकार करना—

गुरुकुल, रजत-जयन्ती
वै० कृ० ३, १९८७

तेरा ही,
—विश्वेश

हिन्दी-भाषा के प्रतिदिन बढ़ते हुए साहित्य में ईसाई मत पर अनेक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु महात्मा ईसा के जीवन पर इस प्रकार की निष्पक्ष आलोचनात्मक कोई पुस्तक अभी तक देखने में नहीं आई। प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर लेखक ने उस भारी कमी को पूरा करने का सफल प्रयत्न किया है।

पुस्तक के लेखक श्री विश्वेश्वर जी, गुरुकुल वृन्दावन के प्रतिष्ठित स्नातक और दर्शन शास्त्र के महोपाध्याय हैं। अपनी इस पुस्तक में महात्मा ईसा के प्रति जो भाव उन्होंने दर्शाए हैं वह प्रशंसनीय है। वर्तमान ईसाई मत के सिद्धान्तों के विषय में किसी के कुछ भी विचार क्यों न हों, परन्तु ईसा का चरित्र इतना विशुद्ध है, उसका ईश्वर-विश्वास और विश्व-प्रेम ऐसा उज्ज्वल है कि उसके सामने सबको सिर झुकाना चाहिए। ईसाई मत के बहुत से विवादास्पद सिद्धान्तों का महात्मा ईसा के उपदेशों में वर्णन भी नहीं पाया जाता। उसका जन्म यहूदियों में हुआ था और उसके श्रोतागण भी अधिकतया यहूदी ही थे, इसलिए उसके नैतिक उपदेश और यहूदी सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से एक नया मत बन गया जिसका विना आजकल ईसाई मत है। परन्तु वस्तुतः ईसा की

असली शिक्षा उसके उन्हीं नैतिक उपदेशों में है जो इञ्जील में रत्न के समान चमकते हैं, और जिनका बहुमूल्य भण्डार, महात्मा ईसा का प्रसिद्धतम गिरि-प्रवचन (Serman on the mount) नामक व्याख्यान है । लेखक ने इस पुस्तक में उसकी आलोचना बड़े सुन्दर ढङ्ग से और व्याख्या बड़ी ओजस्विनी भाषा में की है।

महात्मा ईसा के इन उपदेशों का आधार बहुत अंशों तक महात्मा बुद्ध के उपदेश हैं, जो ईसा के जन्म से पूर्व उसकी जन्म-भूमि में फैल चुके थे। बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म का महत्व और संसार में उनके फैलने का मुख्य कारण इन दोनों महात्माओं का विशुद्ध चरित्र और उज्ज्वल उपदेश ही हैं।

महात्मा ईसा का चरित्र वस्तुतः मनन और अनुकरण के योग्य है, परन्तु साम्प्रदायिक भावनाओं और अन्य अनेक कारणों से अब तक जन-साधारण ने उसे अपनाया नहीं है। इस पुस्तक के प्रकाशक से आशा है कि हिन्दी-प्रेमी जनता की रुचि उस ओर बढ़ेगी। पुस्तक गम्भीर और खोजपूर्ण है। इसकी भाषा और लेखन शैली परिमार्जित है। आशा है कि इससे हिन्दी-साहित्य की वृद्धि में सहायता मिलेगी। तथास्तु—

टिहरी }

—गङ्गाप्रसाद
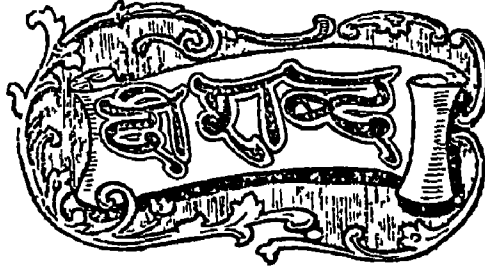
आज से लगभग दो वर्ष पहले की बात है। उन दिनों मैं गुरुकुल वृन्दावन का विद्यार्थी था और 'कुल' के महाविद्यालय-विभाग में तुलनात्मक धर्म-विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन कर रहा था। तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के विद्यार्थी को अन्यान्य प्रमुख विषयों की भाँति ही वक्तृत्वकला और वादविवाद या शास्त्रार्थ के पैतरों का भी अभ्यास करना होता है। उनकी नियमानुसार परीक्षा भी होती है। उस बार परीक्षा से एक दिन पहिले विश्वविद्यालय के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) महोदय की ओर से श्री० आचार्य जी के द्वारा सूचना मिली कि हमारी शास्त्रार्थ की परीक्षा के लिए "ईसा का ऐतिहासिक अस्तित्व" विषय नियत हुआ है। मेरे प्रतिद्वन्दी महोदय श्री० रामेश्वर जी सिद्धान्त-शिरोमणि ने उसके खण्डन की ठानी और ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व के समर्थन का भार मेरे ऊपर पड़ा। मैं ही जानता हूँ कि उस दिन मुझे अपने पक्ष के समर्थन के लिए कितना प्रयास करना पड़ा। अन्ततोगत्वा परीक्षा का दिन आया। शास्त्रार्थ हुआ और ख़ूब हुआ। पूरे तीन घण्टे तक युक्ति-प्रत्युक्तियाँ चलती रहीं। उस शास्त्रार्थ में विजयलक्ष्मी किसके साथ रही, यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु

हाँ, साधारणतः श्रोताओं की राय शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में मेरे प्रतिद्वन्दी महोदय के साथ और उसके अन्त में मेरे साथ थी। मेरे वक्तृत्व वैशिष्ठ्य के आधार पर, युक्ति प्राबल्य के आधार पर या शास्त्रार्थ की पैतेरेबन्दी के आधार पर—मालूम नहीं किस आधार पर उस परीक्षा में नम्बर भी मुझे सब से अधिक प्राप्त हुए।

परीक्षा बीत गई, छुट्टियों के दिन आए। गुरुकुल के नियमानुसार लम्बे ग्रीष्मावकाश के दिनों में भी ब्रह्मचारी कुलभूमि में ही रहते हैं और कुछ दिनों के लिए पढ़ाई की विशेष चिन्ता से मुक्त हो, अपनी रुचि के अनुसार शारीरिक, सामाजिक या मानसिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान देते हैं।

काव्यशास्त्र विनोदेन, कालोगच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेनवा॥

मेरी रुचि साहित्य-सेवा की ओर विशेष रूप से थी। उससे पहिले भी 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं में कुछ लिखता ही रहता था। मैंने उस दिन के शास्त्रार्थ वाले विचारों को किसी मासिक पत्रिका में भेजने के लिए लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया। परन्तु वह लेख तो शैतान की आँत की तरह बढ़ता चला गया। बड़ी कठिनता से ज्यों-त्यों करके पूरे ३० फ़ुलस्केप पृष्ठों पर समाप्त हो सका। अब उसके साथ ही मेरा ध्यान ईसा के सम्बन्ध में कुछ और महत्वपूर्ण बातों की ओर आकृष्ट हुआ। मैंने उन पर भी आलोचनात्मक रूप में कुछ लिख डाला। उधर अगले ही वर्ष स्नातक परीक्षा देनी थी और उसके साथ प्रतिष्ठित (Honour) स्नातक होने के लिए एक निबन्ध लिखने का भी विचार था। मैंने अपने

इस निबन्ध को तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के सीनियर प्रोफ़ेसर श्री० शिवदयालु जी सिंघल को दिखाया। उन्हें निबन्ध कुछ पसन्द आया। मेरे सामने ही नहीं, किन्तु मेरे पीछे भी कई बार उसकी प्रशंसा की। मुझे प्रोत्साहन मिला।

अभी छुट्टियाँ कुछ और शेष थीं। मैंने निबन्ध को टाइप करने की ठानी। कुछ स्वयं और कुछ अन्य महोदय से टाइप कराया। टाइप करने से एक साथ तीन प्रतियाँ तैयार हो गईं। उन प्रतियों में से एक श्रद्धेय श्री० नारायण स्वामी जी महाराज की सेवा में और दूसरी पूज्य श्री० पं० घासीराम जी एम० ए०, एल्-एल्० बी०, मेरठ की सेवा में भेज दीं। दोनों महानुभावों ने असीम अनुग्रह कर उस निबन्ध को आद्योपान्त पढ़ा। कुछ आवश्यक संशोधनों के लिए परामर्श दिए और उसकी प्रशंसा कर मुझे प्रोत्साहित किया। मेरे हृदय में निबन्ध को पुस्तकाकार करने की भावना जाग्रत हुई।

मेरी दृष्टि में श्रद्धेय श्री० आचार्य गङ्गाप्रसाद जी एम० ए०, एम० आर० ए० एस० चीफ़ जज टेहरी, तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के सब से प्रमुख विशेषज्ञ हैं और प्रकृत विषय पर उनकी सम्मति प्रामाणिक समझी जाती है। मैंने निबन्ध की वह प्रति जो श्री० पं० घासीराम जी के पास से लौट कर आई थी, उठा कर उनके पास भेज दी और इस निबन्ध को पुस्तकाकार देने म देने का सारा प्रोग्राम एक-मात्र उनकी सम्मति पर निश्चय करने की ठानी। यह बात यद्यपि मैं अपने मन में निश्चय कर चुका था, परन्तु उनके पास इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा गया था। दशहरे की छुट्टियों में श्रद्धेय आचार्य जी ने पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा और इतने ध्यान से पढ़ा जिसकी मुझे

आशा भी न थी। टाइप की हुई प्रति में अक्षर और मात्रा की प्रत्येक अशुद्धि का अपनी कलम से संशोधन किया। श्री० पं० घासीराम जी ने उस पर जो अनुकूल या प्रतिकूल नोट लिखे थे उनके सम्बन्ध में अपनी सम्मति उसीके साथ लिखी और जहाँ-जहाँ संशोधन करना आवश्यक था, उसके लिए भी परामर्श दिया। निबन्ध भेजते समय मैंने दबे शब्दों में इसकी भूमिका लिख देने की प्रार्थना भी उनसे की थी। मेरा सौभाग्य था और श्रद्धेय आचार्य जी की उदारता थी, उन्होंने पुस्तक की भूमिका रूप में कुछ शब्द लिख भेजने की भी कृपा की। आचार्य जी ने पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने और संशोधन करने में जो परिश्रम किया उसको उनकी सम्मति और उनकी भूमिका को देख कर मुझे निबन्ध के मूल्य का कुछ अनुभव हुआ और यह विश्वास हो गया कि विद्वत्समाज में उसका कुछ आदर हो सकेगा। मेरी दृष्टि में श्रद्धेय आचार्य जी की भूमिका से निबन्ध का गौरव बहुत बढ गया। इस बीच में मथुरा क्रिश्चियन मिशन के श्री० शोलबर्क साहब डी० एस्० से परिचय हुआ। शोलबर्क साहब अमेरिकन होते हुए भी संस्कृत मिश्रित विशुद्ध हिन्दी बोल, समझ और पढ सकते हैं। मैंने आपको निबन्ध पढने को दिया। निबन्ध को पढ़ कर उन्होंने उसकी स्तुति की। इधर प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क-शिरोमणि, शास्त्री, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, ने भी निबन्ध की प्रशंसा की। बस, मैंने उसे पुस्तक का रूप देने का निश्चय कर लिया।

* * *

पुस्तक प्रकाशन से आजकल लेखकों को कितनी कठिनाई होती

है, इसका अनुभव प्रत्येक लेखक को होगा। फिर मैंने तो अभी इस मार्ग में पहिली ही बार क़दम रक्खा था। अभी अनुभव भी नहीं था, आत्म-विश्वास भी कम था। परन्तु महत्वाकांक्षा ज़बर्दस्त थी। इच्छा यह थी कि पुस्तक किसी प्रथम श्रेणी के प्रकाशक के यहाँ से निकले। मैंने उसकी एक प्रति गङ्गा पुस्तकमाला और दूसरी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ भेज दी। गङ्गा पुस्तकमाला से उन्हीं दिनों ईसाई धर्म के विषय में 'भारत में बाइबिल' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसलिए उन्होंने इतने शीघ्र लगभग उसी विषय पर दूसरी पुस्तक प्रकाशित कर सकने में अक्षमता प्रकट की। नवलकिशोर प्रेस में पुस्तक निर्वाचित श्रेणी में आ गई थी और पुरस्कार आदि के सम्बन्ध में बातचीत भी शुरू हो गई थी। यह नवम्बर, १६२८ ई० की बात है। दिसम्बर में बड़े दिनों की छुट्टियों में गुरुकुल का वार्षिकोत्सव होना था और उसी अवसर पर मैं स्नातक हो रहा था, इसलिए पुरस्कार के लिए तो नहीं, हाँ मेरा यह आग्रह अवश्य था कि पुस्तक गुरुकुलोत्सव तक प्रकाशित हो जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में पत्रों और तारों की भरमार से मैंने शायद।उन्हें परेशान कर दिया। परन्तु इतने कम समय में पुस्तक प्रकाशित कर सकने में सफलता न मिली। दिसम्बर मास की किसी तारीख़ में उत्सव से पहले ही पुस्तक वापिस आ गई।

गुरुकुल का उत्सव आया और चला गया। अब अगला उत्सव सभा के विशेष निश्चयानुसार बड़े दिनों में नहीं, बल्कि ईस्टर की छुट्टियों में रजतजयन्ती के रूप में मनाना निश्चय हुआ। उत्सव के साथ पुस्तक प्रकाशन का उत्साह भी कुछ शिथिल हो

राया और लगभग साल भर पुस्तक यों ही पड़ी रही। गत नवम्बर मास में पुस्तक का प्रथम परिच्छेद मैंने 'चाँद' में प्रकाशनार्थ भेजा और यह भी लिख दिया कि यह मेरी अप्रकाशित पुस्तक "महात्मा ईसा" का एक अंश है। यदि आपको रुचे और आप पुस्तक प्रकाशित कर सकें तो अनुगृहीत हूँगा। 'चाँद' कार्यालय के व्यवस्थापकों ने पुस्तक का शेषांश मँगाया और वह प्रथम परिच्छेद दिसम्बर के अङ्क में प्रकाशित कर दिया। उसके बाद 'चाँद' के व्यवस्थापक 'भारत में अङ्गरेज़ी राज्य' के मुक़दमे और 'मारवाड़ी-अङ्क' की हलचल में व्यग्र रहे। इन दिनों कुछ पत्र-व्यवहार होता रहा। मेरा विशेष आग्रह यह था कि पुस्तक ईस्टर के अवसर पर १६ से २१ अप्रैल तक होने वाले गुरुकुल के रजत-जयन्ती महोत्सव तक प्रकाशित हो जाय। अन्ततः गत १९ मार्च को श्री० सहगल जी का पत्र इस सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय कर डालने के लिए मिला, क्योंकि फिर विलम्ब करने से जयन्ती-महोत्सव तक पुस्तक का प्रकाशन असम्भव हो जाता। मैंने उसी दिन तार द्वारा पुस्तक प्रकाशित करने के लिए अनुमति दे दी।

पुस्तक प्रेस में गई और उसके प्रूफ़ आने लगे। समय की कमी के कारण प्रायः जिस दिन प्रूफ आता उसी दिन संशोधन करके लौटाना आवश्यक होता। उधर गुरुकुल रजत-जयन्ती का कार्य-भार भी दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। रात-दिन किसी भी समय पूर्ण विश्राम लेना कठिन था। इतनी व्यग्रता के समय में और इतनी जल्दी में पुस्तक का संशोधन क्या हो सका होगा, मैं कह नहीं सकता। अनेक मान्य और सहयोगी बन्धुओं

ने जो परामर्श भेजे थे, उनसे लाभ उठा सकना तो दूर रहा, इस समय उन पर विचार करने का अवसर भी न मिला। मुझे हार्दिक खेद है कि उनके अमूल्य परामर्शों का समावेश इस संस्करण में नहीं हो सका। आशा है कि मेरी विवशता और कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए वह बन्धु उदार हृदय से मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे।

जिन दिनों पहिले-पहल यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय इसे दो भागों में समाप्त करने का विचार था। परन्तु पिछले दिनों की अनुकूल-प्रतिकूल समालोचनाओं का जो निष्कर्ष मैं निकाल सका, उससे इस निर्णय पर पहुँचा कि पुस्तक को दो भागों में समयान्तर में प्रकाशित करने से मेरे विचारों के सम्बन्ध में कुछ ग़लतफ़हमी फैलने की सम्भावना है। इसलिए जब पुस्तक प्रकाशित करने का निश्चय हुआ तो उस शेषांश की पूर्ति भी आवश्यक हुई। दूसरे भाग का जो कुछ ढाँचा सोच रक्खा था उन सब का पूर्ण करना तो असम्भव था इसलिए कुछ अत्यन्त प्रधान बातों को लेकर यथा-तथा पुस्तक को समाप्त करने का यत्न किया गया। अभी बहुत सा अंश ऐसा था जिस पर प्रकाश डाला जाना आवश्यक था, परन्तु समय के सङ्कोच और अवकाश के अभाव के कारण यह सब कुछ न हो सका।

मैं इस सारे संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन के लिए द्वितीय संस्करण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। और आशा है शीघ्र ही द्वितीय संस्करण में पुस्तक को सर्वाङ्ग पूर्ण बना सकूँगा। इस संस्करण के सम्बन्ध में साहित्य-प्रेमी समालोचकों के विचार भी पथ-प्रदर्शन करने में सहायक होंगे, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक का पारायण करने वाले पाठक प्रायः देखेंगे कि यह साम्प्रदायिक भावनाओं से सर्वथा ऊपर उठ कर एकदम निष्पक्ष भाव से लिखी गई है। महात्मा ईसा के प्रति लेखक के हृदय में छिपा हुआ भक्ति-भाव, स्थल-स्थल पर गैरिक स्राव की तरह फूटा पड़ता है। मैं महात्मा ईसा को सच्चा महात्मा मानता और जानता हूँ। मेरी दृष्टि में वह प्रथम श्रेणी के समाज-सुधारक और महापुरुष हैं। उनका वैयक्तिक चरित्र ऊँचा—बहुत ऊँचा है, वहाँ तक सर्वसाधारण की पहुँच नही हो सकती। उनके उपदेशों में ओज था, उनकी चेष्टाओं मे तेज था और उनके घनिष्ट सम्पर्क में थी पापियों को उठाने की—सुधारने की शक्ति। पाप से छुड़ाने की यह शक्ति ईसा में ही नहीं, संसार के सभी महापुरुषों में पाई जाती है। बुद्ध, दयानन्द और महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति पाप से छूटेगा और अवश्य छूटेगा। उसे अपनी दुर्भावनाओं को दबा कर चरित्र को उच्च बनाना ही होगा तभी तो वह ऐसे महापुरुषों की सङ्गति में रह सकेगा। इसी प्रकार जो लोग ईसा-सँगाती थे उनके ऊपर ईसा-चरित्र का प्रभाव अवश्य हुआ होगा। इसी अर्थ में हम उसे पाप से मुक्त करने वाला मान सकते ।

इन सब बातों के मानते हुए भी ईसा के नाम से प्रचलित ईसाई धर्म के साथ मेरी सहमति और सहानुभूति नहीं। मैं मानता हूँ कि ईसा के सिद्धान्त ऊँचे थे—उनका समर्थन भी करता हूँ, परन्तु फिर भी ईसाई धर्म का समर्थन कर सकने में असमर्थ हूँ। ईसाई धर्म यद्यपि महात्मा ईसा के नाम से प्रचलित है, फिर भी उसमें

बहुत अंश ऐसा है जो ईसा से बाहर का है। संक्षेप में यदि ईसाई धर्म का विश्लेषण किया जाय तो हम उसमें तीन प्रकार के सिद्धान्त या विचार पाएँगे, एक वह विचार जिसका सम्बन्ध ईसा और उसके चरित्र से है दूसरे वह विचार जो उसके आचार शास्त्र-सम्बन्धी उपदेशों पर अवलम्बित हैं। और तीसरे प्रकार के विचार वह हैं जिनमें मैं क्या हूँ? यह दृश्यमान जगत् क्या है दोनों कहाँ से आए और कहाँ जाएँगे? आदि दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

इनमें से पहिले प्रकार के सिद्धान्त ईसा से बिल्कुल बाहर की चीज़ हैं। ईसा के सम्बन्ध में ईसाइयों के जो विचार हैं वह गाढ़तम और तर्कशून्य चरम श्रेणी की श्रद्धा के आवश्यक परिणाम हैं। उन्होंने उसे जो कुछ रूप दे रक्खा है और गॉस्पल-लेखकों ने उसे जिस रूप में चित्रित किया है, उसका समर्थन तर्क और विमर्ष बुद्धि नहीं कर सकती। उनकी दृष्टि में ईसा :—

ईश्वर का पुत्र है।

अलौकिक ढङ्ग से उत्पन्न हुआ है।

सूली के बाद अलौकिक ढङ्ग से जी उठा है।

उसके भीतर अनेक चमत्कार रहने की शक्ति थी।

वह पापियों को पाप से छुड़ाता है।

उस पर—केवल उसी पर विश्वास करने से ही मुक्ति हो सकती है।

परन्तु हमारी दृष्टि में इनमें से कोई भी बात, जिस रूप में ईसाइयों में मानी जाती है, विश्वास योग्य नहीं। ईसा ईश्वर का

पुत्र था उन्हीं अर्थों में जिसमें कि हम और आप ईश्वर के पुत्र हैं। हाँ, उसमें हमारी अपेक्षा यह विशेषता अवश्य थी कि वह ईश्वरीय गुण, कर्म और स्वभाव का अनुकरण करने वाला था। उसने अपने वैयक्तिक चरित्र में ईश्वरीय आदेशों को क्रियात्मक रूप दिया था। इस रूप में उसकी स्तुति में हम कह सकते हैं कि वह जगत्पिता परमात्मा का सच्चा पुत्र था। परन्तु जिस पवित्रात्मा से उत्पत्ति के कारण उसे ईश्वर-पुत्र कहा जाता है वह विश्वास-योग्य नहीं। इसी प्रकार ईसाई धर्म के ईसा सम्बन्धी और भी विश्वास हैं। पुस्तक में यथावसर उन सब की आलोचना की गई है। यहाँ तो संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ईसा के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार ठीक उसी रूप में जिसमें कि वे साधारणतः माने जाते हैं, विश्वास-योग्य नहीं।

ईसाई धर्म के तीसरे प्रकार के सिद्धान्त, जैसा कि हम कह चुके हैं, सृष्टि-उत्पत्ति, परजीवन, ईश्वर आदि सम्बन्धी विश्वास हैं। हम इनमें से किसी से भी सहमत नहीं। ईसाइयों की या बाइबिल की सृष्टि-उत्पत्ति अधूरी है, असन्तोषजनक है। उसका समर्थन तर्क और विज्ञान नहीं करते। ईसाइयों के परजीवन सम्बन्धी विचारों पर कर्म फिलॉसफ़ी का अविश्वास है। इसलिए वह भी लचर है। समालोचना के एक हल्के से धक्के को भी नहीं सह सकते। ईसाइयों के ईश्वर-सम्बन्धी विश्वास अपरिमार्जित है। सातवें आसमान पर बैठना आदि सब कुछ उपहास योग्य है, अविश्वसनीय है। लिखने को इनकी आलोचना में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु इस परिष्कार के प्रसङ्ग में उन सब की आवश्यकता प्रतीत

नहीं होती। वह सब तो किसी दार्शनिक ढङ्ग की पुस्तक में आलोचना करने की बातें हैं।

अब ईसाई धर्म का एक भाग और शेष रह जाता है, जिसका सम्बन्ध महात्मा ईसा के आचार शास्त्र-सम्बन्धी उपदेशों से है। ईसाई धर्म का केवल यही अंश ऐसा है जिसे हम ईसा का अंश कह सकते हैं। इस अंश की प्रशंसा हम सदैव करते आए हैं। हमारी निश्चित धारणा है कि ईसा के ये उपदेश और उन पर अवलम्बित इस प्रकार के ईसाई धर्म के सिद्धान्त प्रथम श्रेणी के आचार-सिद्धान्त हैं। हमें उन्हें अपने जीवन में क्रियात्मक रूप से अपनाना चाहिए। उनसे हमारे शरीर को बल, सङ्कल्प को प्रोत्साहन और चरित्र को उद्बोधन मिलता है।

फलतः हम देखते हैं कि ईसाई धर्म में केवल थोड़ा सा भाग ऐसा है जिसे वस्तुतः ईसा का अंश कहा जा सकता है। शेष दो तिहाई या उससे भी अधिक अंश ऐसा है जो तर्क की कसौटी पर कसा ही नहीं जा सकता। विशेषतः भारतवर्ष जैसे देश में, जहाँ पर कि अशिक्षित कृषकों और साधारण गलियों में भी दार्शनिक चर्चा सुनाई देती है, इस प्रकार के थोथे विचारों को आदर नहीं मिल सकता। ईसाई धर्म के भीतर इतने अधिक थोथे अंश के रहते हुए भी संसार में उसके प्रचार का कारण महात्मा ईसा का बलिदान था।

महात्मा ईसा ही क्या—संसार का कोई भी महापुरुष, जिसे हम धर्म-प्रचारक कहते हैं, किसी नवीन धर्म की सृष्टि करने नहीं आता। किन्तु अपने समय में अपने देश में फैली बुराइयों और

अनाचारों का संशोधन ही उसका उद्देश्य होता है। इसलिए ऐसे महापुरुषों के सिद्धान्तों का सब से बढ़ कर उपयोग उस समय और उस देश मे हुआ करता है। उसके बाद कभी-कभी कालान्तर और देशान्तर में भी उसका उपयोग हो सकता है। ईसा ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया उनमें से कुछ सार्वदेशिक और सार्व-कालिक तथ्य हैं। हर एक सभ्य देश में उसी रूप में माने जाते है। जैसे, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्यादि कुछ ऐसे सिद्धान्त थे जिनका सम्बन्ध में ईसा के अपने देश और काल से है जैसे तलाक के सम्बन्ध में ईसा के संशोधन। भारत-जैसे देश में इस प्रकार की प्रथा ही नहीं, अतः इस उपदेश का कोई उपयोग भी नही।

इस ईसाई धर्म के सम्पूर्ण विश्लेषण मे हम देखते हैं केवल वह भाग जिसे सार्वदेशिक और सार्वकालिक तथ्य कहा जा सकता है, अभ्रान्त है, मान्य है और अनुकरणीय है। उसके साथ ही बहुत बडा भाग थोथेपन का है। हमारी निश्चित धारणा है कि ईसाई धर्म भारतवर्ष के लिए कोई नया सन्देश नहीं ला रहा है। उसमें जो कुछ तथ्य है, जो कुछ ग्राह्य है वह भारतवर्ष की अपनो मौरूसी सम्पत्ति है, जो सहस्रों वर्षों से उसके पास चली आ रही है। शेष अधिकांश बाते ऐसी हैं जिनके आगे भारत का दार्शनिक मस्तिष्क झुक नही सकता। परन्तु फिर भी महात्मा ईसा का व्यक्तित्व ऊँचा—बहुत ऊँचा है। उसे हम दयानन्द और बुद्ध की श्रेणी से अलग नहीं कर सकते।

महात्मा ईसा जैसे महापुरुषों का चरित्र मनन और अनुकरण के योग्य होता है। उसके सहारे हम अपने जीवन को ऊँचा उठा

सकते है। परन्तु दुर्भाग्यवश, कुछ तो बाइबिल के असाधारण चित्रण के कारण और कुछ धार्मिक सङ्कीर्णता के कारण ईसा-चरित्र हिन्दू-समाज और हिन्दी-संसार के लिए एक अछूती चीज़ रही है। हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक कुछ स्पष्टतर रूप में उसे हमारे निकटतर लाने में समर्थ हो सकेगी।

आर्यसमाज धार्मिक असहिष्णुता के लिए बहुत बदनाम हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक आर्यसमाज के ऊपर किए जाने वाले इस प्रकार के आक्षेपों का क्रियात्मक उत्तर होगी। आशा है कि उससे आर्य-समाज की परिस्थिति भी परिष्कृत हो सकेगी और उसकी गौरव-वृद्धि भी।

अन्त में उन समस्त महानुभावों का, जिनके ग्रन्थों और परि-मार्जित विचारों का प्रस्तुत पुस्तक में किसी भी रूप में उपयोग हुआ है, मै अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तक के क्रमिक विकास में जिन आदरणीय बन्धुओं ने सहयोग दे मुझे उपकृत किया है उनका अनुगृहीत हूँ। उनकी उस असीम अनुकम्पा को मेरा हृदय गम्भी-रता के साथ अनुभव करता है। शिष्ठतावश दिया गया बेचारा शाब्दिक धन्यवाद उसे क्या अभिव्यक्त कर सकेगा।

फूल-कुटीर
गुरुकुल वृन्दावन
रामनवमी
सम्वत् १९८७

—विश्वेश्वर
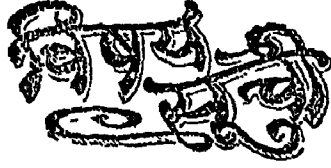
क्रमाङ्क विषय पृष्ठ

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

१—प्रस्तावना १
२—अस्तित्व-सम्बन्धी विवाद का कारण ... ११
३—अस्तित्व के विषय में चार भिन्न मत ... १६
४—प्राचीन इतिहास-लेखक और ईसा ... २१
५—काल एवं चरित्र-सम्बन्धी मतभेद ... ३६
६—कृष्ण के क्राइस्ट ४१
७—उपसंहार ४८

दूसरा परिच्छेद

८—ईसा-चरित्र का स्रोत ५०
९—ईसा-चरित्र के दृष्ट-साक्षी ५९
१०—ईसा-चरित्र को वर्तमान रूप कैसे मिला ? ... ६७
११—अनियमित घटनाएँ ७४

* * *

द्वितीय खण्ड

तीसरा परिच्छेद

१२—पूर्व-परिस्थिति ८१
१३—ईसा का जन्म ८७
१४—कुमारी मरियम और ईसा ९१
१५—दाऊद और ईसा ९७
१६—बैतलहम-समस्या १०३
१७—तारा-दर्शन १०६
१८—हिरोद का अत्याचार ११४
१९—मसीहाई मसलहत १२०

चौथा परिच्छेद

२०—बपतिस्मा १२५
२१—परीक्षा १३८

* * *

तृतीय खण्ड

पाँचवाँ परिच्छेद

२२—गिरि-प्रवचन १५३
२३—प्रचार-नीति और ईसा के चमत्कार... ... १७७
२४—विश्वास की महिमा १८२
२५—ईसा का आकृति-विज्ञान १८६

छठा परिच्छेद

२६—ईसा का शिष्यों को उपदेश १६२

२७—ईसा और पापी १६६

२८—प्राचीन आदेशों का नवीन संस्करण ... २०१

२९—मसीहाई वसीयत २०७

* * *

चतुर्थ खण्ड

सातवाँ परिच्छेद

३०—अन्तिम झाँकी २२९

आठवाँ परिच्छेद

३१—पुनरुज्जीवन २५४

महात्मा ईसा

महात्मा ईसा का सिर

[From the painting by Leonardo da Vinci, in Antwerp Cathedral]

पहला खण्ड

प्रस्तावना

क्रूराः कृतोञ्जलिरयं वलिरेष दत्तः,
कायो मया प्रहरता यथाभिलाषम् ।
अभ्यर्थये वितथ वाङ्मय पांसु वर्षै—
र्मा माविलीः करूत कीर्ति नदीः परेषाम् ॥

महान् आत्माएँ ईश्वरीय देन हैं, उनका जीवनाभिनय-प्रारम्भ भी अलौकिक ढङ्ग से होता है, और उनके यवनिकापात में भी कुछ असाधारणता होती है। जिस प्रकार कवियों के पैदा करने का श्रेय संसार को नहीं है, बल्कि वह स्वर्गीय नियामत है जो प्रभु की ओर से भेजी गई है, उसी प्रकार यह महान् आत्माएँ भी बनाई नहीं जातीं, वह ईश्वरीय देन हैं। गीता के :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

इस सिद्धान्त का रहस्य भी यही है। जिस समय किसी देश या जाति को इस प्रकार की अलौकिक आत्माओ की आवश्यकता होती है, जिस समय उस देश में धर्म की ग्लानि या ह्रास होता है, अधर्म का राज्य होता है, उसी समय—'विनाशाय च दुष्कृतां'—उस अनाचार को दूर करने के लिए और—'धर्मसंस्थापनार्थाय'—नीति एवं आचार की रक्षा के लिए इन महान् आत्माओ का आविर्भाव हुआ करता है। संसार का आज तक का इतिहास एक स्वर से इस बात की पुष्टि कर रहा है। ईसा, दयानन्द, मुहम्मद और बुद्ध इसी प्रकार की महान् आत्माएँ है। इन्हीं को अन्धी श्रद्धा आगे चल कर अवतार के रूप मे परिवर्तित कर देती है।

जिस प्रकार संसार का इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि समय-समय पर इस प्रकार की अलौकिक आत्माओं का आविर्भाव हुआ करता है, उसी प्रकार वह इस बात की भी पुष्टि कर रहा है कि उस देश की, जिसमें कि इस प्रकार की आत्माएँ पैदा होती हैं, तात्कालिक परि-स्थिति उनकी क़ीमत को नहीं समझ सकी है। इसीलिए हम देखते है कि प्राय: उन्हीं के हाथो, जिनके लिए वह अपना खून-पसीना एक कर रही हैं, इन महान् आत्माओ को जहर का प्याला पीना पड़ता है। महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध शकुन्तला नाटक में शकुन्तला प्रत्याख्यान के बाद दुष्यन्त के मुख से एक श्लोक कहलाया है :—

यथा गजो नेति समत्तरूपे,
तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात् ।
पदानि दृष्ट्वाथ भवेत् प्रतीत—
स्तथा विधो मे मनसो विकारः ॥

ठीक यही हाल उन देश और जातियों का होता है, जो इस प्रकार की महान् आत्माओं का मूल्य उनके जीवन-काल में नहीं समझ सकतीं। दुष्यन्त के सामने शकुन्तला (उनकी पत्नी) आई, मगर उनके मस्तिष्क पर एक परदा पड़ा हुआ था, वह उसे स्वीकार न कर सके। उन्होंने उसे समझने की कोशिश की, मगर व्यर्थ। उनके सारे प्रयास का अन्तिम परिणाम निराशाजनक था—'न खलु स्मरन्नपि स्वीकरणमत्र भवत्याः स्मरामि'—शकुन्तला—अपने पति के द्वारा अपमानित शकुन्तला—चली गई। अब की दुष्यन्त के दिल में एक उत्सुकता पैदा हो गई, उनके सामने शकुन्तला-परिणय की एक अत्यन्त अस्पष्ट सी ज्योति चमक गई। उसी की झलक दुष्यन्त के—

रम्याणिवीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वं,
भाव स्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥

इन शब्दों में दिखाई देती है शकुन्तला—साक्षात् शकुन्तला—जिसे देख कर दुष्यन्त कह उठे थे :—

भ्रमर इव निशान्ते कुन्दमन्तस्तुषारं,

न खलु सपदि भोक्तुं नापि शक्नोमि भोक्तुम्।

वही शकुन्तला आई और चली गई, मगर दुष्यन्त उसे पहचान भी न सके। अबकी उनके सामने शकुन्तला की तस्वीर—सिर्फ एक जड़ प्रतिकृति—थी, मगर अब उनके मस्तिष्क से वह पर्दा उठ चुका था, इसलिए आज इस जड़ प्रतिकृति ने भी उनके दिल पर गहरा प्रभाव डाला और इसीलिए आज वह—

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं,

चित्रार्पितामहमिमां बहुमन्यमानः।

स्रोतोवहां पथि निकाम जलामतीत्य,

जातः सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्।

के शब्दों में पश्चात्ताप करते दिखाई दे रहे हैं। ठीक इसी भाव को कालिदास ने अपने पहले श्लोक में व्यक्त किया है। भाव के इस सौन्दर्य के साथ उपमा के सौन्दर्य को मिला कर सचमुच कालिदास ने एक इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। वह कहते हैं—'यथा गजो नेति समक्ष रूपे।' हाथी—कोई छोटी-मोटी चीज नहीं, पहाड़ की तरह विशालकाय हाथी—सामने खड़ा है, मगर देखने वाला कह रहा है—न, यहाँ तो कुछ भी नहीं है। थोड़ी देर बाद वह हाथी चला जाता है। अब उस पागल आदमी को, जो अभी कह रहा था कि यहाँ कुछ भी नहीं है, कुछ संशय होता है। अरे!

कहीं हाथी तो न खड़ा था ! इसी तलाश में उसने इधर-उधर ढूँढ़ना शुरू किया और अब, जब कि वहाँ उस हाथी की हस्ती नष्ट हो चुकी है, सिर्फ़ उसके पैरों के कुछ अस्पष्ट चिन्ह शेष रह गए हैं, उन पद-चिन्हों को देख कर पागल आदमी चिल्ला उठता है—अरे ! यहाँ तो हाथी आया था । जो अवस्था ऐसे अवसर पर उस पागल के चित्त की होती है, वही अवस्था इस समय दुष्यन्त के दिमाग़ की थी, इसी-लिए वह कहते हैं—'तथा विधो मे मनसो विकारः।' और ठीक यही अवस्था उन देशों और जातियों की उस समय होती है, जब कि वह अपने हितैषी इन महान् आत्माओं के कलेजे मे ज़हरीली छुरी भोंक चुकते हैं । उदाहरण के लिए अभी बहुत दिनों की बात नहीं, मुश्किल से ५० वर्ष हुए हैं, २०वीं सदी के विधाता ऋषि दयानन्द ने बिगड़ी हुई भारत-सन्तान के सामने कुछ आदर्श रक्खे । भारतवर्ष की अवस्था इतनी बिगड़ चुकी थी, उस प्राचीन भारत के देह में इतने भयानक फोड़े हो चुके थे जिनकी चिकित्सा साधारण तौर पर नहीं की जा सकती थी; उसके लिए ऐसे ही शिग़ाफ़ की, जो दयानन्द लगा रहा था, आवश्यकता थी । इसमें सन्देह नहीं कि दयानन्द सिद्धहस्त वैद्य था, उसने भारत के उस मर्मान्तक रोक का मूल-निदान का पता लगा लिया था और वह उन्ही की चिकित्सा कर रहा था । मगर उस रोगी, अज्ञान, पागल भारत ने डॉक्टर दयानन्द के उज्ज्वल हृदय

को—उसकी हितैषिता को—समझने में भूल की और दयानन्द के इस नश्वर देह को, इस भौतिक हस्ती को मिटा देने मे ही अपना हित समझ कर ज़हर का प्याला उसके मुँह से लगा दिया। जिस समय दयानन्द इस नश्वर शरीर को छोड़ कर चले गए, उस समय लोगों को उनकी कुछ आवश्यकता और उपयोगिता प्रतीत हुई, और आज जब उसकी अमर आत्मा मर कर भी अमरता को प्राप्त कर चुकी है, लोग दयानन्द के असली स्वरूप को पहचान सके हैं। एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा देश आज उसकी योग्यता, उपयोगिता और आवश्यकता का क़ायल हो रहा है।

ठीक यही बात और यही उदाहरण हमारे आज के चरित-नायक महात्मा ईसा के चरित मे अद्भुत सौन्दर्य के साथ घटता है। ईसा सचमुच एक निरपराध और आदर्श पुरुष था। जिस समय पाइलेट के सामने ईसा का मुक़दमा पहुँचा, पाइलेट ने सारे मामले पर विचार कर उसे बिल्कुल निरपराध ठहराया। लूक ने अपने सुसमाचार में इसे अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में दिया है :—

"पाइलेट ने महायाजको, सरदारो एवं अन्य लोगो को बुला कर उनसे कहा कि तुम इस मनुष्य को, लोगो को बहकाने वाला ठहरा कर मेरे पास लाए हो और देखो, मैंने तुम्हारे सामने उसकी जॉच की, पर जिन बातो का तुम उस पर दोष लगाते हो, उन बातों के विषय में न मैंने और न

हिरोद ने उसमें कोई दोष पाया; क्योंकि उसने (हिरोद ने) उसे हमारे पास लौटा दिया; और देखो, उसने मृत्यु-दण्ड के योग्य कोई काम नहीं किया। इसलिए मैं उसे पिटवा कर छोड़े देता हूँ।"

—लूक २३। १३, १४, १५

इतने स्पष्ट शब्दों में एक विचारक द्वारा महात्मा ईसा के नितान्त निरपराध ठहराए जाने पर भी उस नृशंसतापूर्ण हत्या के लिए, जिस पर अत्याचार भी आँसू टपका देगा, किसे दोषी ठहराया जाय? यह सब संसार के उसी अटल नियम की महिमा है, जिसका कि उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। जनता ईसा के जीवन का मूल्य उस समय न समझ सकी, उसकी दृष्टि में ईसा का अस्तित्व दुनिया से मिट जाय—यही देश, जाति और धर्म का ध्येय था। इसीलिए पाइलेट के इन शब्दों को जनता सहन न कर सकी—

"They cried, saying crucify him; crucify him."

सब लोग एक साथ चिल्ला उठे—इसका काम तमाम कर दो और हमारे लिए वरअब्बा को छोड़ दो।

एक ओर निरपराध ईसा था—महात्मा ईसा था, और आदर्श सुधारक ईसा था—और दूसरी ओर था राजद्रोही, हत्यारा वरअब्बा, जिसके लिए लिखा है:—

"Who, for a certain sedition made in the city and, for a murder was cast into prison"

इन दोनों में से एक व्यक्ति मुक्त किया जा सकता था। पाइलेट स्वयं एक सहृदय व्यक्ति था और उसकी दृष्टि में ईसा निरपराध भी था, इसलिए उसकी हार्दिक अभिलाषा थी ईसा को छोड़ देने की। उसने एक बार फिर ज़ोर लगाया। पाइलेट ने ईसा को मुक्त करने के विचार से लोगो को फिर समझाया।

लेकिन पानी की धार जिधर बह गई, बह गई; वह फिर उल्टी नहीं लौटती। पाइलेट की अपील जनता पर कुछ असर न कर सकी।

वह फिर चिल्लाए—सूली-सूली! उसे सूली दे दो!

पाइलेट ने तीसरी बार—और अन्तिम बार—एक बार फिर ईसा की प्राण-रक्षा का यत्न करना चाहा, उसने अपनी सारी शक्ति लगा कर जनता से अपील की—

"क्यों, उसने कौन सी बुराई की है? मैंने उसमें मृत्यु-दण्ड के योग्य कोई बात नहीं पाई, इसलिए मैं उसे पिटवा कर छोड़े देता हूँ।"

—लूक २३। २३

* जो नगर मे किए गए एक राजविद्रोह के लिए और एक मनुष्य-हत्या के लिए जेल में डाल दिया गया था।

मगर आग्रह—हठ—अन्धा है, उसमें देखने की शक्ति नहीं। वह तर्क-वितर्क नहीं कर सकता, और न सोच-विचार सकता है। वह जो कुछ चाहता है, वही ठीक है, वही न्याय है और वही उस समय का आवश्यक कर्त्तव्य है। ईसा के विरोधी उस समय हठ पर थे, वह अपनी बुद्धि को ताक़ पर रख चुके थे। पाइलेट की युक्ति, अपील और दलील तो उस पर कुछ असर कर सकती जो उसकी तरह सहृदय होता, जिसके दिल होता और दिल के साथ दिमाग़ होता। मगर यहाँ दिल और दिमाग़ का सम्पर्क न था। यहाँ तो सिर्फ आग्रह—अन्धा आग्रह था। उसके सामने कैसी युक्ति और कहाँ की दया। वह अपील नहीं चाहता, दलील नहीं चाहता; उसके दरबार में दया और तर्क के लिए स्थान नहीं। इसलिए उस समय पाइलेट की ज़ोरदार अपील का उतना ही असर हुआ जितना कि किसी रेगिस्तान में ज्येष्ठ-वैशाख की बूँदों का। पाइलेट अपनी सारी शक्ति लगा कर भी जनता की विचार-धारा को परिवर्तित न कर सका और अन्त को महात्मा ईसा के खून से ही उसके विरोधियो ने अपनी प्यास बुझाई।

लेकिन आज हम देखते हैं कि जिस ईसा के ख़ून के लिए इतना यत्न किया गया, आज उसी के क़दमो पर आधी दुनिया सर झुकाती है। वह व्यक्ति, दुनिया जिसके ख़ून की प्यासी थी, आज संसार का हृदय-सम्राट् बना

हुआ है। सिवाय उन सङ्कीर्ण विचारों के लोगो के, जो किसी ऐसे व्यक्ति का चरित्र सुनना भी नहीं चाहते, जो उनके धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध पड़ता हो, दुनिया मे जिसने भी एक बार इस महापुरुष के दिव्य चरित्र का परायण कर लिया, उसके लिए यह सम्भव नहीं कि वह श्रद्धा और भक्ति के आवेश में इसके क़दमो पर सर न झुका दे। आज ईसा देश और जाति की सीमा को पार कर चुका है। उसका व्यक्तित्व और उसका महत्व अब किसी देश-विशेष तक ही सीमित नहीं, बल्कि अब ईसा संसार भर का ईसा बन चुका है। दुनिया में जहाँ भी होगा, उसका नाम श्रद्धा के साथ लिया जायगा। परन्तु यह सब होते हुए भी, आज भी उसके विरोधियों की संख्या कुछ कम नहीं है। एक ओर जहाँ महात्मा ईसा का चरित्र इतना ऊँचा है, दूसरी ओर वह उतना ही विवादास्पद भी है। आज यूरोपीय विद्वान् ईसा-चरित्र की छोटी से छोटी बात को लेकर बाल की खाल निकालने का यत्न कर रहे हैं, और उनकी इस खोज का परिणाम इतना भयङ्कर हुआ है कि आज ईसा का अस्तित्व भी सन्देह मे पड़ गया है। इस समय ईसा के चरित्र-लेखको और भक्तों के सामने एक यह भी विचारणीय विषय बन गया है कि महात्मा ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व था भी कि नहीं ?

अस्तित्व-सम्बन्धी विवाद का कारण

ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी इस प्रश्न की कुछ भी आलोचना करने से पूर्व अगर इस मतभेद के कारण पर विचार कर लिया जावे, तो इससे विषय के स्पष्टीकरण में भी सहायता मिलेगी और यह सरलता से हल भी हो जायगा।

ईसा के जन्म से पहले उसकी जन्म-भूमि में यहूदी-धर्म का बहुत ज़ोर था। बहुत दिन से वहाँ के धार्मिक इतिहास में किसी प्रकार की क्रान्ति न हुई थी। इसलिए जैसा कि प्रकृति का नियम है, यहूदी-धर्म का स्वरूप अत्यन्त गँदला हो गया था, और उसके संशोधन की आवश्यकता थी। इसी संशोधन के लिए गीता के सुप्रसिद्ध श्लोक के अनुसार महात्मा ईसा का जन्म हुआ था। हमारा विश्वास है कि संसार में कोई धर्म-संस्थापक किसी नवीन धर्म की सृष्टि करने के उद्देश से नहीं आता, बल्कि अपने ज़माने में प्रचलित धर्म के विकृत स्वरूप को परिष्कृत कर देना मात्र ही इन धर्म-संस्थापकों का प्रधान ध्येय होता है। ईसा के जीवन का ध्येय भी यहूदी धर्म के तात्कालिक विकारों को दूर कर देना मात्र ही था। ईसा ने स्वयं भी कई जगह इस आशय को व्यक्त किया है। गिरि-प्रवचन उनके जीवन के सारे उपदेशो में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश है। इस सारे उपदेश में यही भाव झलकता है कि यहूदी-धर्म के आदर्शों

को उज्ज्वलतर कर देना और उसमें आई हुई बुराइयो को दूर कर देना, यही ईसा का उद्देश था। उदाहरण के लिए हम इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते है। ईसा कहते हैं :—

"अब तक तुम्हे आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत का विधान सुनाया गया है। परन्तु मै तुमसे कहता हूँ कि बुराई का बदला मत लो, अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो उसके सामने बायाँ गाल भी कर दो।"

—मैथ्यू ५ । ३८, ३९

ईसा ने अपने इस गिरि-प्रवचन में अनेक बार इस प्रकार के भाव व्यक्त किए है। इसके अतिरिक्त उसने स्वयं भी स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है कि :—

"यह मत समझो कि मैं व्यवस्था या नबियो का उल्लङ्घन करने आया हूँ। मै उन्हे नष्ट करने नही, बल्कि पूर्ण करने आया हूँ।"

—लूक ५ । १७

फलतः ईसा का ध्येय तात्कालिक यहूदी-धर्म का संशोधन करना था और उसने अपने सारे जीवन मे इस लक्ष्य को अपने सामने रक्खा है। परन्तु उसके उज्ज्वल चरित्र ने लोगो पर इतना प्रभाव डाला कि उसके मरने के बाद उसे ईश्वर-पुत्र की उपाधि दे दी गई। और 'क्राइस्ट' या 'मसीह'

शव्द उसके लिए रूढ़ि हो गया। सम्भवतः अपने जीवन-काल में ही ईसा मसीहा के रूप में परिवर्तित हो गया था। ईसा के नाम के आगे जुड़ा हुआ यही मसीहा शब्द है, जिसने आज उसकी जान आफ़त में डाल रक्खी है और उसके अस्तित्व को डावाँडोल कर रक्खा है। अगर ईसा मसीहा न कहलाता, अगर जीसस के साथ क्राइस्ट न जुड़ता तो आज यह प्रश्न उठने की आवश्यकता ही न थी। जिस एक शब्द ने ईसा को 'ईश्वर-पुत्र' (Son of God) के पद तक पहुँचा दिया, आज उसी शब्द के कारण लोग उसकी हस्ती को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इसका मुख्य कारण यह है कि यहूदियों की धर्म-पुस्तक 'प्राचीन अहदनामा' मे कई स्थलो पर इस प्रकार की भविष्य-वाणी की गई है कि डेविड—दाऊद—के खानदान में एक मसीहा पैदा होगा, जो संसार को उसके पापों से छुड़ाएगा। यह भविष्य-वाणी उस समय लोगों के दिमाग़ में घूम रही थी। जब उनके सामने ईसा का विशुद्ध चरित्र आया और जब उन्होंने देखा कि वह रोगियो को अच्छा कर सकता है, और लोगों के पापों—दुःखों—को दूर कर सकता है, तो श्रद्धा और भक्ति के आवेश में लोगों ने उसे मसीहा कहना शुरू कर दिया। उस समय किसे मालूम था कि इसका परिणाम इतना घातक हो सकता है। ईसा के नाम के साथ मसीहा का विशेषण सिर्फ उसके भक्तों—शिष्यों—द्वारा लगाया गया

था। यहूदी लोग उस समय भी उसे मसीहा मानने को तैयार न थे और न आज ही हैं। ईसाई और यहूदी धर्म का सबसे मुख्य मतभेद-स्थल यही है। आज समय के प्रभाव से और प्रयोग होते-होते ईसा और मसीहा में कोई भेद नहीं रहा है, साधारणतः लोग ईसा-मसीह एक नाम समझते है। उन्हे स्वप्न मे भी इस बात का ध्यान नहीं आता कि ईसा नाम है और मसीह उसके साथ उपाधि जुड़ी हुई है। यहूदियों का कहना है कि उनकी धर्म-पुस्तकों के अनुसार कोई मसीहा आवेगा अवश्य, परन्तु यह ईसा जिसे कि लोग मसीहा कहते हैं, वह मसीहा नहीं है। अब अगर ईसा 'मसीह' की हस्ती सिद्ध हो जाता है तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे उनके धार्मिक विश्वास को ठेस पहुँचती है। इसीलिए यहूदी अपनी सारी शक्ति लगा कर इस बात के सिद्ध करने की चेष्टा में हैं कि मसीह, ईसा कोई नहीं हुआ। परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, ईसा-मसीह शब्दों का अब अभेदान्वय हो चुका है, उनका अब अलग-अलग कर सकना इस समय लगभग असम्भव है। इसीलिए मसीहा की हस्ती को मिटाने की धुन मे यहूदी लोग महात्मा ईसा के व्यक्तित्व को भी हड़प कर जाना चाहते है—'न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।' दरअसल ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी वाद-विवाद की आधार-शिला यही मतभेद है। इसीलिए यहूदी ईसा का नाम दुनिया से मिटा देने

के लिए इतने उत्सुक हो रहे हैं। यूरोप में आज जो विद्वान् इस मत का समर्थन कर रहे हैं, उनमें अधिकांश यहूदी विचार के लोग हैं। उनके दिल में धार्मिक पक्षपात जड़ पकड़े बैठा है। इसलिए इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह इस प्रश्न पर शान्त हृदय से विचार नहीं कर सकते, और यही कारण है कि उन प्रबल प्रमाणों का, जोकि ईसा के अस्तित्व के पक्ष में पाए जाते हैं, उनके पास इसके सिवा कोई उत्तर नहीं कि वह प्रक्षिप्त हैं। हमें इन विद्वानों की इस विचित्र मनोवृत्ति पर आश्चर्य होता है। वे अगर उस तथ्य को, जोकि एक ऐतिहासिक सचाई है, मान कर ईसा के व्यक्तित्व से इन्कार न करते, बल्कि उसकी मसीहत का खण्डन करते, तो उनका यह प्रयास स्तुत्य समझा जाता। परन्तु उनकी इस अद्भुत मनोवृत्ति का समर्थन कर सकने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। हमारी समझ में यूरोप के इतिहास से अगर ईसा का चरित्र या उसका प्रभाव निकाल डाला जाय तो उसका मूल्य आधा भी नहीं रहता। ईसा वह रत्न है, जिसके आलोक से यूरोप का मुख उज्ज्वल हो रहा है। उसके अस्तित्व को मिटा डालना और यूरोप के इतिहास की हत्या कर डालना एक ही बात है। ख़ास कर उदारता की हामी भरने वाली आज की इस २० वीं शताब्दी मे इस प्रकार के सङ्कीर्ण विचारों का परिणाम सिवाय उपहास के और क्या हो सकेगा? अस्तु—

अस्तित्व के विषय में चार भिन्न मत

इस समय तक के ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी इस सारे विवाद के विषय में साधारणतः ४ प्रकार की सम्मतियो का परिचय मिलता है। पहला विचार जो ईसा की सत्ता के विषय मे निषेधात्मक है, अपनी पुष्टि में निम्न युक्तियाँ पेश करता है :—

१—समकालीन लेखकों के लिखे लेखो अथवा इतिहासों मे ईसा का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। यही नहीं, बल्कि ईसा के कुछ काल बाद तक के लिखे गए ग्रन्थो में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। इस सिद्धान्त का समर्थन करने वाले अपनी इस युक्ति की पुष्टि में जिन ऐतिहासिको के नाम पेश करते हैं, वह ये है :—

(अ) फाइलो (Philo) एक यहूदी इतिहास-लेखक जो लगभग ईसा का समकालीन है।

(ब) सेनेका (Seneca) यह भी एक प्राचीन और ईसा का समकालीन इतिहास-लेखक समझा जाता है।

(स) प्लूटार्क और जूवेनल (Plutarch and Juvenal) ये दोनो लेखक उस समय से लगभग १०० वर्ष बाद के है, जो कि ईसा का काल समझा जाता है।

(द) लीवी और डॉनकेसिस (Livy and Doncassius)

(ल) वर्जिल, हॉरेस और ओविड (Virgil, Horace and Ovid) ये पहली शताब्दी के इतिहास-लेखक हैं।

इस प्रकार ईसा के समकालीन और उससे एक शताब्दी बाद तक के ऐतिहासिको ने भी, हम देखते हैं कि अपने किसी लेख या ग्रन्थ मे ईसा के जीवन का उल्लेख नहीं किया और न उनमे से किसी ने उनके नाम की ओर सङ्केत ही किया है। अगर सचमुच ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व होता तो यह असम्भव है कि इतने महान् व्यक्ति का उसके एक शताब्दी बाद तक के लिखे ग्रन्थो मे कोई उल्लेख भी न पाया जाय। फलतः एक निष्पक्ष विचारक विवश होकर इस परिणाम पर पहुँचता है कि ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं। वह केवल एक कल्पित व्यक्ति है और वह कल्पना भी उस समय के बाद की गई, जब तक के ऐतिहासिको के नाम हम पेश कर चुके है। अर्थात् उस समय से, जोकि आजकल ईसा का काल समझा जाता है, लगभग एक शताब्दी बाद ईसा—कल्पित ईसा—की सृष्टि की गई।

२—ईसा के जन्म-काल के नाम से आजकल ईसवी सन् प्रचलित है। परन्तु वास्तव मे यह नहीं कहा जा सकता कि वही ईसा का जन्म-काल है। इस बात के समर्थन के लिए निम्न-युक्तियाँ पेश की जा सकती है :—

(अ) चेम्बर की इन्साइक्लोपीडिया मे सिद्ध किया गया है कि ईसा का जन्म उस काल से, जोकि आजकल माना जाता है, कुछ पहले मानना पड़ेगा।

(ब) एप्लेटन की न्यू साइक्लोपीडिया (Appleton's new Cyclopedia) में यही काल ईसवी सन् से कम से कम ६ वर्ष पहले निर्धारित किया गया है।

(स) ट्रेज़री ऑफ़ बाइबिल-ज्ञान (The treasury of Bible knowledge p. p. 191) में परट महोदय ने इस जन्म-काल को ईसवी सन् से ७ वर्ष पहले स्थिर किया है।

३—ईसा की सत्ता का निराकरण करने वालो की ओर से तीसरी युक्ति यह पेश की जाती है कि उन चारों गॉस्पल मे, जिनके द्वारा ईसा का जीवन-वृत्तान्त हम तक पहुँच सकता है, आपस में घोर मतभेद है। एक लेखक किसी एक घटना को किसी रूप में वर्णन करता है, दूसरे लेखक के ग्रन्थ में वही घटना किसी दूसरे रूप में दिखाई देती है। तीसरे ने उस घटना को बिल्कुल उड़ा ही दिया है और चौथे ने उसकी जगह एक बिल्कुल नवीन घटना कल्पित करके रख दी है। उन लेखको के ग्रन्थो में, जिन्हें ईसा का शिष्य या दृष्ट-साक्षी समझा जाता है, इस प्रकार के तीव्र मतभेद का कोई मूल्य है और वह मूल्य यही है कि ईसा एक कल्पित व्यक्ति है। इसीलिए उसकी जीवन-सम्बन्धी घटनाओं में इतना अधिक मतभेद है।

ईसा की ऐतिहासिक सत्ता से सर्वथा इन्कार करने वाले लोगो की ओर से जो युक्तियाँ पेश की जा सकती हैं, उनमे अधिक से अधिक प्रबल और महत्वपूर्ण युक्तियाँ यही तीन

हैं। हम आगे की पंक्तियो मे इन तीनों युक्तियों की यथार्थता पर कुछ संक्षिप्त विचार करेंगे। परन्तु इसके पूर्व ईसा के सम्बन्ध में पाए जाने वाले अन्य मतो का भी उल्लेख कर देना चाहते है।

ईसा की सत्ता के सम्बन्ध में दूसरा विचार भी निषेधात्मक है, परन्तु वह ईसा की सृष्टि का उपपादन और तरह से करता है। उसकी दृष्टि में ईसा पश्चिम का मौलिक तत्व नहीं, बल्कि वह पश्चिम मे पूर्व का प्रतिविम्ब है। वह आदर्श और घटनाएँ, जो ईसा के चरित्र में पाई जाती हैं, पश्चिम के आदर्श या घटनाएँ नहीं, और न वह आधार, जिस पर कि ईसा की सृष्टि की गई है, पश्चिमीय आधार है, बल्कि वह अ से ह तक पूर्णतः पूर्वीय चरित्र है, जो आज क्राइस्ट के रूप में हमारे सामने उपस्थित किया जा रहा है। इस मत के समर्थको का कहना है कि जो यहूदी (यादव), ग्वाल (अहीर), इब्रानी (पुरुवंशी), और फरीशी (शूरसेनी) इत्यादि भारत से जाकर सीरिया मे बस गए, क्राइस्ट उन्हीं के दिमाग़ की कल्पित सृष्टि है। उन्होने अपने पूर्वज कृष्ण के आधार पर ही सीरिया में क्राइस्ट की सृष्टि कर डाली। वह कृष्ण से परिचित ही थे और उन्हें ईश्वर का अवतार भी मानते थे। और इसीलिए उनकी उपासना भी करते थे। यही लोग जिस समय सीरिया में पहुँचे और वहाँ इन कृष्ण-भक्तों ने जब कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को लोगो के सामने रक्खा

तो उन्हें भी कृष्ण पर श्रद्धा हो गई और उन्होने अपने यहाँ भी कृष्ण—जिसका कि अपभ्रंश क्राइस्ट है—की सृष्टि कर डाली। थोड़े ही समय मे होते-होते कृष्ण की लगभग वह सारी बाते, जो उस समय सीरिया में पहुँच सकी थी, उस देश-वासियो के कल्पित कृष्ण—क्राइस्ट—के नाम के साथ जुड़ गई, इसीलिए हम देखते है कि कृष्ण और क्राइस्ट की जीवन-घटनाओं में अत्यन्त समानता पाई जाती है। इन दोनों आदर्श चरित्रो का सामञ्जस्य दिखलाने का प्रयत्न विशेषत: 'कृष्ण के क्राइस्ट' नामक पुस्तक के लेखक ने किया है। उन्होने इस बात के सिद्ध करने के लिए बड़ा प्रबल प्रयास किया है कि दरअस्ल क्राइस्ट की कोई स्वतन्त्र सत्ता नही, बल्कि वह सिर्फ कृष्ण का विकृत स्वरूप है।

इसके अतिरिक्त ईसा की सत्ता के सम्बन्ध मे दो प्रकार के मत और पाए जाते है। यह दोनो मत पहले मतो की तरह खण्डनात्मक नहीं, बल्कि मण्डनात्मक हैं और वह दोनो ही ईसा के जीवन-सम्बन्धी अत्यन्त विवादास्पद विषयो पर गहरा प्रकाश डाल रहे हैं। इनमें पहला मत फ्रीमैनसरी सोसाइटी के एक इसीर द्वारा लिखे एक पत्र के आधार पर स्थित है। यह पत्र न केवल ईसा की सत्ता सिद्ध करने में ही सहायक है, बल्कि उसके जीवन की सबसे अधिक विवाद-ग्रस्त और सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना—मृतोत्थान् को भी बड़ी स्पष्टता के साथ हल कर रहा है। इसकी आलो-

चना यहाँ न करके मृतोत्थान के परिच्छेद में करेंगे, यहाँ सिर्फ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इसीर द्वारा लिखा गया यह पत्र ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व का साधक एक प्रबल प्रमाण है।

ईसा-चरित्र के सम्बन्ध में दूसरा मण्डनात्मक मत, जिसका कि उल्लेख हमने किया था, प्रसिद्ध रूसी यात्री निकोलस नोटोविच के अन्वेषण-कार्य पर निर्भर है। उन्होने तिब्बत में भ्रमण करते समय वहाँ के लामा द्वारा हिमिज़ के पुस्तकालय से पाली भाषा मे लिखित ईसा का एक जीवन-चरित्र प्राप्त किया। उनकी इस खोज ने ईसा के अज्ञात चरित्र पर गहरा प्रकाश डाला है, और ईसा का अस्तित्व-सम्बन्धी चौथा मत निकोलस नोटोविच की इसी पुस्तक पर निर्भर है।

प्राचीन इतिहास-लेखक और ईसा

पिछली पंक्तियो मे ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे पाए जाने वाले चार भिन्न-भिन्न मतो का उल्लेख हम कर चुके हैं। परन्तु इन सब मतो में से कौन मत अधिक युक्तिसङ्गत और मान्य है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आगे हम इसी समस्या को हल करने का यत्न करेंगे।

अभी हमने जिन चार मतो का उल्लेख किया, उन्हे दो भागो में विभक्त किया जा सकता है —

१—ईसा की ऐतिहासिक सत्ता स्वीकार करने वाले।

२—उससे इन्कार करने वाले।

इनमें से पहले मे अन्तिम दो मतो का और दूसरे में पहले दो मतो का अन्तर्भाव हो सकता है।

पिछली पंक्तियों मे यह दिखलाया जा चुका है कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले विद्वानो के इस प्रयास के भीतर जो स्प्रिट बहुत बड़े अंश तक काम कर रही है, वह सराहनीय नहीं है। उसके साथ धार्मिक पक्षपात कूट-कूट कर मिला हुआ है। इसलिए वह किसी सचाई पर निष्पक्ष हृदय से परीक्षा करने को तैयार नहीं। पक्षपात के एक आँख है, वह सम-दृष्टि से दोनों पक्षों पर विचार करके किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकता। उन्हीं के अनुयायियो में दूसरे प्रकार के वह लोग है जो स्वयं किसी बात का विशेष विचार करने की शक्ति नही रखते, केवल दूसरो की राय के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेते है। ऐसे ही लोगो के लिए महा-कवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में लिखा है :—

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।

फलतः उन विद्वानो ने, जो ईसा की ऐतिहासिक सत्ता से इन्कार करते हैं, जो परिणाम निकाला वह पक्षपात-रहित नहीं कहा जा सकता। इसीलिए हम देखते हैं कि उनकी युक्तियाँ भी सिर्फ लचर दलीलें हैं, उनके भीतर

कार्य की सामर्थ्य नहीं थी या वह जान-बूझ कर इस विषय को छोड़ देते, बल्कि उनकी परिस्थिति इस प्रकार की थी जिसमें उनकी क़लम से ईसा के चरित्र पर किसी भी प्रकार का प्रकाश पड़ सकना सर्वथा असम्भव था। हम इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अलग-अलग कारण पेश कर देना चाहते हैं। सबसे पहले इनमें से ओविड और लीवी (Ovid and Livy) को उठा लीजिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह दोनों व्यक्ति उस समय ही अपनी इहलीला समाप्त करके संसार से विदा हो चुके थे, जब कि ईसा ने अपना प्रचार-कार्य आरम्भ भी न किया था। ऐसी अवस्था में उन व्यक्तियों के लेखो से ईसा के जीवन-सम्बन्धी किसी भी विवरण के पाने की आशा करना कहाँ तक युक्तिसङ्गत होगा, यह बुद्धिमान् विचारक स्वयं सोच सकते हैं। इसी प्रकार के लेखको के बीच फाइलो (Philo) के नाम का भी उल्लेख किया गया है। ऐतिहासिक लोगो का कथन है कि वह अलेकज़ैण्ड्रिया का रहने वाला था और लगभग सन् ४० ईसवी में अत्यन्त वृद्धावस्था में इस संसार से चल बसा। जब हम फाइलो की इस परिस्थिति पर विचार करते है तो उसके लेखो में ईसा का उल्लेख न पाए जाने का कारण बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाता है। सबसे पहिली बात तो यह है कि ४० वर्ष के थोड़े से अवसर में ईसाई-धर्म की आवाज़ अलेक़-ज़ैण्डिया तक मुश्किल से ही पहुँच पाई थी। इस समय में

ईसा का नाम अलेकजैण्ड्रिया के घर-घर मे और फाइलो के कानो तक न पहुँच सका था, ऐसी अवस्था मे उसके लेखो मे ईसा के उल्लेख का न पाया जाना कोई आश्चर्यजनक बात नही। सेनेका, प्लूटार्क और जूवेनल का ध्यान अधिकतर ग्रीस और रोम की ओर ही था, सुदूरवर्ती पैलस्टाइन से न तो उनका कोई सरोकार ही था और न वे उस देश की घटनाओ में विशेष रुचि ही रखते थे, इसलिए यदि इन तीनो व्यक्तियो के लेखो में ईसा का कोई उल्लेख नही मिलता तो इसमे विशेष आश्चर्य की कोई बात प्रतीत नही होती। डॉनकेसिस का नाम भी ईसा का उल्लेख न करने वाले लेखको की लिस्ट में पेश किया गया है। इतिहास के विशेषज्ञो की दृष्टि मे उसका समय लगभग २३० ईसवी है। यह स्पष्ट है कि उस समय तक ईसाई धर्म पूर्ण रूप मे विस्तृत हो चुका था और २३० ई० तक उसकी शक्ति एक अच्छी शक्ति समझी जाने लगी थी, परन्तु फिर भी डॉनकेसिस ने उसका कुछ भी उल्लेख अपने लेखो मे नही किया, इसका कारण कुछ विशेष है। हम उसके लिए अपनी ओर से कुछ भी न लिख कर केवल प्रोफेसर जे० एन० फरूखहर (Prof J N. Faiquhar) के लेख से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं :—

"It was apparently a fashion and an affection among a certain class of Greek men of letters

about 160-240 to ignore the existence of Christians and to pretend to confuse them with the Jews"*

फलतः डॉनकेसिस के लेखों में ईसा के सम्बन्ध में किसी प्रकार के उल्लेख का न पाया जाना भी कोई आश्चर्यजनक एवं अनुचित बात नहीं है। इस प्रकार हमने देख लिया कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले विद्वानो की ओर से जिन ९ लेखकों के नाम इस विषय में पेश किए गए हैं, उनकी कलम से ईसा के सम्बन्ध में कुछ भी आशा करना व्यर्थ था। उनकी परिस्थितियों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इनकी ओर से ईसा की इस प्रकार की उपेक्षा सर्वथा स्वाभाविक और सङ्गत ही नहीं, बल्कि आवश्यक है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इतिहास महात्मा ईसा के सम्बन्ध में बिल्कुल मौन धारण किए है। इस प्रकार का निर्णय दे देना इतिहास के साथ अन्याय और लेखक के पक्ष में भारी भूल होगी। इतिहास स्पष्ट और सुन्दर शब्दों में महात्मा ईसा के सम्बन्ध में साक्षी देने को तैयार है। इन ज़ोरदार

---

* स्पष्ट रूप से ग्रीक विद्वानों के एक विशेष समुदाय में १६०-२४० वर्ष मे यह एक परिपाटी पड गई थी कि वे ईसाइयों के अस्तित्व को उडा देना चाहते थे और यहूदियों के साथ उनको मिला देने का भी प्रयास करते थे।

और सच्ची साक्षियो को केवल प्रक्षिप्त कह कर टाल देने से काम न चलेगा। इस प्रसङ्ग मे हम सिर्फ तीन इतिहास-लेखकों की साक्षी उद्धृत करेंगे—(१) जोसिफस (Josephus) (२) प्लीनी (Pliny) (३) टिसिटस (Tacitus) यह तीनो प्राचीन, प्रामाणिक और सिद्धहस्त लेखक हैं। अगर इनके लेखो में ईसा के सम्बन्ध मे ज़रा भी सङ्केत मिल जाय तो फिर वास्तव मे हमे अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए किसी भी दूसरे प्रमाण को पेश करने की आवश्यकता न रहेगी। इन तीनो लेखको की क़लम से निकले हुए शब्द प्रकृत विषय के लिए अकाट्य प्रमाण हो सकते हैं। इसलिए हम यहाँ इन तीनो की—सिर्फ इन्हीं तीन की—सम्मति लिखने का यत्न करते है।

जैसा कि हम कह चुके है जोसीफस (Josephus) अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक लेखक है। उन्होने अपनी एक पुस्तक मे ईसा के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखी, जिनके भीतर एक ऐतिहासिक सच्चाई के साथ ईसा के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा की भी एक झलक दिखाई देती है। लेखक के शब्द यह हैं :—

"Now there was about this time Jesus, a wise man, if it be lawful to call him a man, for he was a doer of wonderful works, a teacher of such men as receive the truth with pleasure

He drew ever to him both many of the Jews and many of the gentiles. He was (the) Christ; and when Pilate, at the suggessions of the principal men amongst us, had condemned him to the cross, those that loved him at the first did not forsake him, for he appeared to them alive again the third day, as the divine prophets foretold these and ten thousand other wonderful things concerning him ; and the tribe of Christians so named from him are not extinct at this day."

Historians' History of the World, Vol II, P 169.

---

* अब इस समय यीशू नामी एक बुद्धिमान् मनुष्य था, यदि उसको मनुष्य कहना उचित है। क्योंकि वह बड़े आश्चर्यजनक कार्यों का विधाता था। ऐसे मनुष्यों का धर्मोपदेशक था, जो सत्य को प्रसन्नता से ग्रहण कर लेते है। उसने अपने मत मे बहुत से यहूदी व काफ़िरों को मिला लिया था। उसको 'क्राइस्ट' कहते थे। और जब पाइलेट ने नगर के मुखियाओं के कहने से क्राइस्ट को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दे दी, तब उन मनुष्यों ने, जो उसके प्रथम अनुयायी थे, उसको नही छोडा। चूँकि क्राइस्ट उनको फिर तीसरे दिन ज़िन्दा दीख पडा, जैसे कि पहिले भविष्यद्वक्ता धर्म-नबियों ने यह और शतश. आश्चर्यजनक बातें उसके सम्बन्ध मे कही थीं।"

कितनी स्पष्ट और सुन्दर पंक्तियाँ हैं। क्या इससे भी बढ़ कर स्पष्ट प्रमाण की आवश्यकता है? इन पंक्तियों के भीतर जितना ही घुसते जाओ, ईसा के प्रति लेखक के अन्तस्तल की गहराई का रहस्य भी उतना ही स्पष्ट होता जाता है। लगभग इसी समय ईसा एक आदमी था, अगर उसे आदमी कहा जा सके। कितने सुन्दर और भक्ति-भरे भाव हैं। सचमुच ईसा आदमी नहीं, देवता था। वह क्षमता, वह शक्ति और वह दृढ़ता, जिन्होंने ईसा की सृष्टि की थी, इस लोक की नहीं थीं—स्वर्गीय थी। इसीलिए इस नारकीय संसार में उसका दर्शन दुर्लभ है। ईसा इस संसार के लौकिक मनुष्यों से परे था। वह स्वर्ग की विभूति था, पृथ्वी का सौन्दर्य था और ईश्वर का सच्चा आदर्श पुत्र था। ऐसे ही लोगों में दैवी अलौकिक शक्ति का दर्शन होता है। वह आचार्य था उनका, जो सचाई के उपासक—भूखे हैं। सचाई ही उसका जीवन थी, सचाई उसका ध्येय थी और सचाई उसका सर्वस्व थी। वह स्वयं सचाई का उपासक था और उसी सत्य का आचार्य—प्रचारक—था। यह जोसीफस के हृदय के उद्‌गार हैं। ईसा—अपने हत्यारों के

और उसके नाम के अनुसार कही जाने वाली ईसाई जाति अब तक मौजूद है।

(ससार के ऐतिहासिकों का इतिहास, जिल्द दोयम, पृ० सख्या-१६६)

लिए दुआ करने वाला ईसा—वह अमर आत्मा है, जिसके क़दमों पर हर एक निष्पक्ष हृदय का मस्तक श्रद्धा और भक्ति के आवेश मे झुक जावेगा। फिर चाहे वह किसी भी मत या धर्म का अनुयायी क्यो न हो। इसीलिए हम देखते हैं कि यहूदी जोसीफस (Josephus) के हृदय में ईसा ने इतना ऊँचा स्थान पाया है। इसके साथ ही यह शब्द जोसीफस की उदारता और सच्चे इतिहास-प्रेम का परिचय दे रहे हैं। कोई सच्चा ऐतिहासिक जिस समय इतिहास लिखने बैठता है, उस समय उसे उतना ही निष्पक्ष हो जाना चाहिए जितना कि किसी सच्चे समालोचक को। वह व्यक्ति, जिसके हृदय पर पक्षपात का पर्दा पड़ा हुआ है, न कभी सच्चा समालोचक हो सकता है और न सच्चा इतिहास-लेखक ही। हम जोसी-फ़स की तारीफ़ करते हैं, इसलिए कि उसने यहूदी होकर ईसा के विषय में उसी उदारता से काम लिया है जिसकी कि एक सच्चे इतिहास-लेखक से आशा की जा सकती है। जोसीफ़स ! ईसा के सम्बन्ध मे तुम्हारे इतने स्पष्ट और दृढ़ शब्दो के रहते हुए भी अगर कोई उसकी सत्ता मे सन्देह कर सकता है, तो इसमे तुम्हारा क्या दोष ? ऐसे ही लोगो के लिए तो अभियुक्तों ने लिखा है कि—

नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किंदूषणम्।

ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस दूसरे प्रबल प्रामाणिक ऐतिहासिक की साक्षी पेश करने का वादा हमने

किया था वह है जोसीफस। जोसीफस की योग्यता और प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वह तो वह जादू है, जो सर पर चढ़ कर बोलता है। एक बार पढ़िए, स्वयं उसका अनुभव हो जायगा। इसीलिए तो हम कहते हैं कि उसके सम्बन्ध मे हमे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं :—

> यद्यस्ति वस्तु किमपीह तथानवद्य,
> द्योतेत तत् स्वयमुदेष्यति चानुराग· ।

और अगर वह कोरी ढोल की पोल है, उसमे कोई भी सार नही है तो भी :—

> नो चेत् कृत कृतकवाग्भिरलं प्रपञ्चै ,
> निर्दोह धेनु महिमा नहि किंकिणीभि· ।

ऊपर हमने जोसीफस के शब्दो मे एक ऐतिहासिक तथ्य के साथ सम्मान और भक्ति का नमूना देखा था। अब की टिसिटस (Ticitus) की बारी है, देखो क्या देखने को मिलता है। टिसिटस के वह शब्द, जिन्हे हम उद्धृत करना चाहते है, निम्न है :—

"To put an end to these rumours, he sought for guilty persons, and inflicted the most cruel torture upon persons detested for their infamous practices, who were commonly called Christians This name they took from Christ who was

condemned to death under Tiberius by the procurator Pontius Pilate."

ईसा की सत्ता सिद्ध करने के लिए इससे अधिक पंक्तियों के उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं, इसके लिए 'यह नाम उन्होंने ईसा से लिया' (This name they took from Christ) इतने शब्द ही पर्याप्त थे। सम्भव है, अब भी किसी को उसके सम्बन्ध में सन्देह रह जाय, इसलिए लेखक उसे स्वयं और भी स्पष्ट करता है।

अगर अब भी सन्तोष न हुआ हो तो, उसके साथ ही ईसा—क्राइस्ट—की पूरी तारीफ भी सुन लो :—

"Who was condenmed to death (under Tiberius) by procurator Pontius Pilate."

अर्थात्—"जिसको पोन्टियस पाइलेट नामी मैजिस्ट्रेट से मृत्यु-दण्ड की आज्ञा मिली थी।" अब शायद दुनिया मे कोई ऐसा 'सुकुमार मति' न होगा, जो अब भी सन्देह मे

---

* इन मिथ्या गल्पों का अन्त करने के लिए उसने अपराधी मनुष्यों को ढुँढवाया और जो मनुष्य अपनी बुरी व गन्दी रस्मों के कारण घृणा किए जाते थे और साधारणतया ईसाई कहलाते थे, उन पर अति नृशंस अत्याचार किए। इन अपराधियों ने यह नाम ईसा से धारण किया था, जो टाइबेरियस के राज्य-काल मे मैजिस्ट्रेट पोन्टियस पाइलेट की आज्ञा से मृत्यु-दण्ड से दण्डित किया गया था।

रह जाय कि टिसिटस का क्राइस्ट और वाइबिल का क्राइस्ट एक नहीं है।

हमारा प्रकृत उद्देश यद्यपि इन पंक्तियों के साथ समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी हम लेखक की अगली पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहते है। उनके भीतर एक भाव है, जिसके अनुभव करने की आवश्यकता है उन लोगों के लिए, जो धार्मिक प्रचार के रहस्य को समझना चाहते है। टिसिटस ने लिखा है :—

"This pernicious superstition, suppressed for the moment, had since overflowed, not only in Judea where was source of the evil, but even in Rome where all crimes and shame meet together. These were first seized who confessed, and afterwords on their testimony, a great number of others, who were convicted less of having set fire to Rome than of hating the human race, mockery was added to torture, they were wrapped in the skins of the beasts to be cast to dogs to devour, they were crucified, they were set alight like torches to give light by night. Nero had offered his gardens for this spectacle, and he mingled with the people in the garb of a

charioteer, or driving a chariot. Thus these wretches though deserving of exemplary punishment inspired pity, for they were not sacrificed to the interests of the public, but to the cruelty of a single man."*

Historian's History of the World, Vol II, pp 176.

---

* यह नाशकारी मिथ्या-विश्वास यद्यपि कुछ समय के लिए शान्त हो गया था, तथापि न सिर्फ़ जूडिया मे ही यह फैल गया था, जोकि इस बुराई का घर था, परन्तु रोम मे भी फैल चुका था, जहाँ समस्त अन्याय व लज्जाजनक वार्ताएँ स्थान पा लेती हैं। सबसे प्रथम वे मनुष्य पकड़े गए, जिन्होंने ईसाई होना स्वीकार किया और अनन्तर इन अपराधियों के कथन पर और भी पकड़े गए कि जो मनुष्य जाति से घृणा करने के अपराध में अपेक्षाकृत रोम के नीरो द्वारा जलाने पर, दण्ड दिए गए। इस अत्याचार के साथ उपहास्यता का पुट भी दिया गया था। यह दण्डनीय अपराधी जानवरों की खाल में लपेटे जाकर कुत्तों के सामने खाए जाने के लिए फेंक दिए गए। उनको सूली हो गई। वे मशालों की तरह रात्रि को रोशनी देने के लिए जलाए गए। नीरो ने अपना उद्यान इस भीषण दृश्य को प्रदर्शित करने के लिए दे दिया था और वह स्वयं साधारण मनुष्यों के साथ एक रथ हाँकने वाले के रूप में मिला हुआ था। परन्तु इन हतभागी अपराधियों ने चाहे वे कठोर उदा-

हाँ, इन पंक्तियो के सम्बन्ध में एक खास बात है। ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले व्यक्ति भी इन पंक्तियो को उद्धृत करते है और उससे यह परिणाम निकालना चाहते हैं कि टिसिटस का क्राइस्ट ही बाइबिल का क्राइस्ट नहीं है, बल्कि वह एक बिल्कुल भिन्न व्यक्ति है। इस प्रकार टिसिटस के ग्रन्थ में ईसा का उल्लेख पाए जाने पर भी वह बाइबिल के ईसा को स्वीकार करना नहीं चाहते। परन्तु इस स्थल पर भी उनके दिल में वही निन्दनीय भाव काम कर रहा है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। धार्मिक पक्षपात उनके दिल में इतना गहरा घर किए हुए है कि वह उन्हे सच्चे विचारक, सच्चे समालोचक और सत्य के उपासक के आदरणीय पद से हटा कर सङ्कीर्णता के अँधेरे गढ़े मे ला पटकता है। उनका कहना है कि टिसिटस का ईसा टिबेरियस (Tiberious) के राज्य मे सूली पर चढ़ाया गया है और बाइबिल के ईसा को सूली देने वाले का नाम है पोन्टियस पाइलेट, इसलिए यह दोनो क्राइस्ट एक नहीं। विचित्र दलील है और अजीब तर्क है। लेखक कितने स्पष्ट शब्दो मे

हरणीय दण्ड पाने के अधिकारी हों, मनुष्यों के हृदय में दया का स्रोत उमडा दिया ; क्योंकि यह कठोर दण्ड-विधान आम जनता के हितार्थ उनको नहीं दिए गए थे, परन्तु एक मनुष्य के नृशंसता के कारण।

(संसार के ऐतिहासिकों का इतिहास, जिल्द २, पृष्ठ-संख्या १७६)

कह रहा है कि उसका ईसा ईसाई-धर्म का संस्थापक है; बाइबिल के ईसा की तारीफ भी यही है। टिसिटस कहता है कि सूली देकर उसकी हत्या की गई। बाइबिल का विवरण भी ऐसा ही है। टिसिटस के यहाँ सूली का हुक्म देने वाला पोन्टियस पाइलेट है और बाइबिल के ईसा को भी सूली पर चढ़ाने वाला यही व्यक्ति है। फिर हमारी समझ मे नहीं आता कि इस निर्मूल तर्क का आधार क्या है। इसी को पक्षपात की एक आँख कहते हैं।

तीसरा प्रसिद्ध और प्राचीन इतिहास-लेखक, जिसे हम प्रमाण रूप मे पेश करना चाहते हैं, प्लीनी है। प्लीनी का समय लगभग ११२ ई० है। और ऐतिहासिक जगत् मे उसका अच्छा मान है, इसीलिए प्रकृत विषय में उसकी सम्मति भी बहुत बड़ा मूल्य रखती है। प्लीनी के भाव को हम अपने शब्दो में नहीं एस्टिन कारपेन्टर (Estin Carpenter) के शब्दों में ही यहाँ दोहरा देना चाहते हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि फर्स्ट थ्री गॉस्पल्स' मे एक स्थल पर उस भाव को व्यक्त किया है, हम उसे यहाँ उद्धृत करते है :—

"Writing to the imperial master Tarjan the younger Pliny describes the progress of christianity in the distant region of Pontus and Bethynia. The temples had been deserted, and altars had been grown cold and silent with

neglect. The new faith was advancing rapidly and it was necessary to decide what treatment should be awarded to its professors. They seemed to be harmless folk enough, for all their fault (by their own account) consisted in this they were wont to meet together before sunrise on a fixed day, and sing a hymn to Christ as to a God, they pledged themselves to commit no crime, but to abstain from theft, robbery, adultery, perjury and dishonesty. They afterwords joined in a common meal, which was open to all, but had been discontinued since Tarjan's edicts prohibiting such club meetings."*

---

* अपने राजा टार्जन को लिखते हुए छोटा प्लीनी पोन्टस और वेथेनिया दूर-स्थित प्रदेशों मे ईसाई-धर्म की वृद्धि वतलाता है। उसका कहना है कि पुराने धर्म के मन्दिरों को लोगों ने छोड दिया व प्राचीन धर्म की वेदियाॅ अव मनुष्यों की उसके प्रति उदासीनता के कारण सुनसान पडी रहती थीं व नीरस मालूम होती थीं। नवीन ईसाई-धर्म वड़े ज़ोरों से फैल रहा था, अतः अव यह निश्चय करना आवश्यक था कि उसके अनुयायियों के साथ कैसा व्यवहार किया जावे। नवीन धर्मावलम्वी किसी के लिए हानिकर नहीं थे। उनके तो सारे दोष (उनके कथनानुसार ही) यही थे कि एक

इस प्रकार हमने देख लिया कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले लोगों की ओर से अपने सिद्धान्त की पुष्टि में पेश की गई पहली दलील में कोई तत्व नहीं, वह केवल भोले-भाले लोगों को चक्कर मे डालने वाला शब्द-जाल है। उन्होने जिन नौ ऐतिहासिको के नाम पेश किए है, उनमें से एक की भी परिस्थिति इस योग्य न थी कि वह उस समय में ईसा के सम्बन्ध मे कुछ लिख सकता। ईसा-चरित्र के प्रति उनकी यह उपेक्षा सर्वथा स्वाभाविक और उपयुक्त है। परन्तु इनके सिवाय कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ऐसे भी हैं, जिनके लेखो में महात्मा ईसा का उल्लेख पाया जाता है। उन्होने बड़े आदर भरे शब्दों में महात्मा ईसा को याद किया है। इस प्रकार के इतिहास-लेखकों में से तीन के लेख हम प्रमाण-रूप से उद्धृत कर चुके, इसलिए अब इस पहली दलील की आलोचना के लिए कुछ और लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

निश्चित दिवस पर सूर्योदय से पूर्व वे सब मिला करते और ईसा के प्रति, जो उनके लिए ईश्वर-सदृश था, वे अपना भजन गाते। उन्होंने प्रण किए थे कि कोई पाप नहीं करेंगे। चोरी, डकैती, पर-स्त्री-गमन, झूठी शपथ खाना व बेईमानी आदि से बचेंगे। अनन्तर वे एक सह-भोज करते थे। परन्तु उनकी यह सब धार्मिक विधियाँ टार्जन की ऐसी सभाओं का निषेध करने वाली आज्ञा से बन्द कर दी गई थीं।

काल एवं चरित्र-सम्बन्धी मतभेद

अब शेष दो दलीलें रह जाती हैं —

१—ईसा के जन्म-काल का कुछ निर्णय नहीं।

२—गॉस्पल्स में ईसा-चरित्र सम्बन्धी घटनाओं का मतभेद।

वस्तुतः पहली जटिल समस्या के हल हो जाने के बाद इन दोनों युक्तियों में कोई ज़ोर नहीं रह जाता। अपनी दूसरी युक्ति के समर्थन के लिए इन लोगों ने जो प्रमाण दिए हैं, उसमें सिर्फ़ तीन विद्वानों की, ईसा के जन्म-काल के विषय में सम्मति दी गई है। चैम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया की राय में ईसा का जन्म-काल ईसवी सन् से कम से कम चार वर्ष पहले होना चाहिए, अपल्टन की न्यू साइक्लो-पीडिया की दृष्टि में यह समय कम से कम ६ वर्ष पहले होना चाहिए, और प्रोफ़ेसर परट ने उसे एक साल और पीछे हटा कर ७ वर्ष तक पहुँचा दिया है। फलतः ईसा के जन्म-काल में विभिन्न विचारकों की दृष्टि से ५-७ वर्ष का अन्तर पड़ता है। किसी की राय में वह समय ५-७ वर्ष पहले होना चाहिए और किसी की राय में ५-७ वर्ष पीछे। बस इसी आधार पर हमारे सुयोग्य समालोचकों ने यह परिणाम निकाल लिया कि ईसा की कोई ऐतिहासिक सत्ता नहीं। धन्य है इस तर्क को और बलिहारी है ऐसे लोगों की बुद्धि को!

अजी साहब, बेचारे ईसा के ऊपर ही अपने इस अद्भुत तर्क की थैली क्यों खोल दी? थोड़ा और बढ़िए, इस सृष्टि का—जिसमें हम और आप बैठे हैं—समय भी तो निश्चित नहीं है, उसके विषय में भी विविध विद्वानों की विविध सम्मतियाँ हैं। कोई उसे उत्पन्न हुए अधिक से अधिक ५,००० वर्ष गुज़रे बताता है और किसी के मत से यह समय करोड़ो वर्ष तक पहुँच जाता है, और किसी की दृष्टि मे सृष्टि को उत्पन्न हुए एक अरब ९७ करोड़ वर्ष से भी अधिक समय बीत गया। कितना घोर मतभेद है!! कहाँ ५,००० और कहाँ एक अरब ९७ करोड़!! कुछ ठिकाना है! जब सिर्फ ५-७ वर्ष के अन्तर के कारण बेचारे ईसा की हस्ती दुनिया से मिट गई तो ज़रा गणित-शास्त्रियों से पूछना चाहिए कि इस सृष्टि की—दुनिया की—हस्ती कितनी बार मिट जानी चाहिए। इसीलिए तो हम इन विचित्र तर्कों की तारीफ़ करते हैं और उनके उपजाने वाले दिमाग़ो को दाद देते हैं। उस धार्मिक पक्षपात के अतिरिक्त इस प्रकार की असत्कल्पना की कीमत और क्या हो सकती है?

दूसरी युक्ति जो इस विषय मे दी गई है, उसकी आलोचना हम अगले परिच्छेद में करेंगे, यहाँ सिर्फ इतना कह देना चाहते हैं कि आज तक संसार में जितने महापुरुष हुए है, उनमें से अधिकांश के जीवन में इस तरह की घटनाएँ मिलेंगी, जिनके विषय मे उनके चरित्र-लेखकों में मतभेद

पाया जाता है। उदाहरण के लिए बहुत दूर की बात नहीं, स्वामी दयानन्द इसी नवीन युग की महान् आत्मा है। उनके सम्बन्ध मे इतिहास को अधिक से अधिक एक-मत होना चाहिए था, परन्तु वास्तविक तथ्य ऐसा नहीं है, उनके जन्म-काल और जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे लोगो में मतभेद हैं। इसके अतिरिक्त उनके जीवन-सम्बन्धी घटनाओ के विषय मे भी मतभेद पाया जाता है। परन्तु इसका यह परिणाम नही निकाला जा सकता कि स्वामी दयानन्द की ऐतिहासिक सत्ता ही मिटा दी जाय। इसी प्रकार ईसा के चरित्र-लेखको मे मतभेद रहते हुए भी उनकी ऐतिहासिक सत्ता से इन्कार करना भारी भूल होगी। सम्भव है कि उस मतभेद का कोई खास और अनिवार्य कारण हो।

इन तीनो युक्तियो की आलोचना के समय ही ईसा की सत्ता के सम्बन्ध मे पाए जाने वाले पहले सिद्धान्त की आलोचना समाप्त होती है।

कृष्ण के क्राइस्ट

ईसा के सम्बन्ध मे दूसरे सिद्धान्त का समर्थन, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, मुख्यत 'कृष्ण के क्राइस्ट' नामक पुस्तक मे किया गया है। उनके सारे कथनोपकथन का सारांश यह है कि ईसा और कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ एक दूसरे से मिलती हैं, इस लिए ईसा की कोई

अलग सत्ता नहीं, बल्कि यहाँ से गए यादवों के द्वारा कृष्ण का चरित्र सुन-सुन कर ही वहाँ के लोगों ने क्राइस्ट की सृष्टि कर डाली। हम इस प्रकार का विचार रखने वाले लोगों का ध्यान सबसे पहले इसी पुस्तक के एक उद्धरण की ओर आकृष्ट करेंगे। इस पुस्तक के लेखक ने स्वयं अपने को 'कलयुगी कृष्ण' और 'नकली क्राइस्ट' लिखा है। वह स्थल बड़ा मनोरञ्जक और हमारे विषय का अत्यन्त उपयोगी है, इसलिए उसे हम यहाँ उद्धृत किए देते हैं। इस प्रकरण का शीर्षक लेखक ने इस 'किताब के लिखे जाने का सबब' रक्खा है। अच्छा, अब ज़रा इस सबब का भी मुलाहिज़ा फरमा लीजिए। आप लिखते हैं :—

"इञ्जील के लिखने वालों की तरह मुझे भी एक दिन रात को सोते समय देवकी-नन्दन कृष्ण की तरफ़ से ख़्वाब में इलहाम हुआ कि मुझ से तेरी इतनी बातें मिलते हुए भी तू कृष्ण और क्राइस्ट के मामले पर विचार करके इस ईसाई-लीला की पोल क्यों नहीं खोलता, कि मेरी नकल में क्राइस्ट के नाम से दुनिया भर में इञ्जील वालों ने यह कैसा जाल फैला रक्खा है जिसमें लाखो लोग फँसे चले जाते हैं। उठ, और इस जाल को तोड़।

मैं उसी वक़्त हड़बड़ा कर उठ बैठा और लगा ख़्वाब की बातों को सोचने और अपनी बातों को विचारने कि कृष्ण से मेरी क्या-क्या बातें मिलती हैं, जो ख़्वाब में

मुझसे ऐसा कहा गया। लेकिन थोड़ी ही देर सोचने से जान पड़ा कि ख्वाब का कहा सच है, क्योंकि यह बातें मेरी कृष्ण से जरूर मिलती हैं :—

१—कृष्ण मथुरा में आधी रात को वृष लग्न और रोहिणी नक्षत्र में, जन्माष्टमी बुधवार को जन्मे।

मेरा भी जन्म मथुरा मे १० घड़ी रात गए, मेष लग्न और मृगशिरा नक्षत्र मे जन्माष्टमी, मङ्गलवार को हुआ। लग्न, नक्षत्र और वार में सिर्फ एक-एक का ही भेद है।

२—कृष्ण नन्द-महर-गोपालक-गुप्त-वैश्य के घर प्रकट हुए और पले।

मैं भी महर वैश्य जाति में ही उत्पन्न हुआ और पला।

३—उनका भी मशहूर नाम कृष्ण है, मेरा भी जन्म-नाम कृष्ण है।

४—कृष्ण आदि में ४ साल तक महावन रहे, मैं भी अपनी आदिम आयु मे चार साल तक महावन में नौकर रहा।

५—कृष्ण मथुरा से लगभग एक साल के लिए काशी पढ़ने गए, मैं भी एक साल के लिए मथुरा से आगरे पढ़ने गया।

६—कृष्ण लगभग ३० साल की उम्र तक व्रज में रहे, मै भी अपनी २७ साल की उम्र तक व्रज मे रहा।

७—कृष्ण मथुरा से जाकर—कुशस्थली—द्वारिका मे बसे, मैं भी मथुरा से नकली कुशस्थली (कोसी) जा कर रहा।

८—कृष्ण द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर आए, मैं कोसी से बुलन्दशहर चला गया, जो इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर से मिला हुआ है।

९—जैसे कृष्ण फिर मथुरा जाकर नहीं बसे, मैंने भी अपना मथुरा का वास छोड़ दिया।

बस दूसरे दिन सवेरे मैं इञ्जील लेकर पढ़ने लगा और सिर्फ़ मत्ती की इञ्जील को आधी ही पढ़ने से मुझे ख़्याल हो गया कि यह तो कृष्ण के हालात से बहुत-कुछ मिलती है।

बस फिर क्या था, यह ख़्याल होते ही फिर तो मैंने इञ्जील को बड़े ग़ौर से देखा और कृष्ण के हालात से मिलाने लगा, जिसके नतीजे मे यह किताब लिखी।

क्योंकि कंस का जन्म भी मथुरा और मृगशिरा नक्षत्र का ही था, जिसकी मौत कि क्राइस्ट मारे गए, इस हिसाब से मेरा इतना ताल्लुक कंस और क्राइस्ट से भी पाया जाता है; क्योकि जैसे क्राइस्ट मर कर तीसरे दिन जी उठे थे, वैसे ही मेरा भी मरना मेरे एक दोस्त के बजाय मशहूर हो गया और तीसरे रोज़ लोगो को मालूम हुआ कि मैं नहीं मरा। जो क्राइस्ट का ताल्लुक इन दोनों से है, वैसा ही मेरा भी है; इसलिए अगर कोई मुझे नकली क्राइस्ट और मेरी इस किताब को इलहाम कहे तो मैं बुरा न मानूँगा।"

—कलयुगी कृष्ण और नक़ली क्राइस्ट

इस उद्धरण को पढ़ने के बाद हमे आशा है कि पाठक लेखक की युक्तियो की गहराई और मनोवृत्ति के महत्व को समझ गए होगे। अगर आज थोड़ी देर के लिए हम भी इन्ही युक्तियो का आश्रय लेने लगे, जिनके आधार पर कि उक्त पुस्तक के लेखक ने महात्मा ईसा की सत्ता को दुनिया से मिटा देने का साहस किया है, तो उसका सबसे पहला प्रभाव स्वयं लेखक पर पड़ेगा और उनकी अपनी सत्ता कृष्ण की सत्ता मे विलीन हो जायगी। जिस प्रकार कृष्ण के जीवन के साथ क्राइस्ट के जीवन की दो-चार घटनाओ के मिलने के कारण क्राइस्ट की स्वतन्त्र सत्ता नही रही, इसी प्रकार पुस्तक के लेखक की भी बहुत सी बाते कृष्ण मे मिलती हैं, इसलिए उनकी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती। दूसरी चिन्ता, जो अब हमे सताने लगी, यह है कि हम इस पुस्तक के लेखक को कृष्ण या क्राइस्ट कहे अथवा कंस। अस्तु—

इन पंक्तियो के आधार पर क्राइस्ट की सत्ता से इन्कार वही तक किया जा सकता है, जहाँ तक कि इस पुस्तक के लेखक की सत्ता से। इससे बढ़ कर उन युक्तियों का रत्ती भर भी मूल्य नहीं है। हम इस पुस्तक के लेखक के प्रयत्न की सराहना करते हुए भी इस मनोवृत्ति का समर्थन नहीं कर सकते; और खास कर इस पुस्तक को देख कर खेद इसलिए हुआ कि वह एक विचारशील और ज़िम्मे-

दार समाज—आर्य-समाज—के एक सदस्य की क़लम से निकली है।

हाँ, एक बात और है, जैसी समानता कृष्ण और क्राइस्ट की जीवन-घटनाओ मे पाई जाती है इस प्रकार की समानता अन्यान्य महापुरुषो के जीवनो में भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए महात्मा बुद्धदेव और महात्मा ज़रदुश्त का जीवन लगभग एक ही साँचे में ढला हुआ है। महात्मा बुद्ध अगर जगद्विख्यात बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक हैं, तो महात्मा ज़रदुश्त भी उसी प्रकार पारसी-धर्म के प्रवर्तक हैं। महात्मा बुद्ध का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक जीवन 'ललित-विस्तर' समझा जाता है। उसमे उनके जन्म के समय पर होने वाली अनेक अलौकिक घटनाओ का उल्लेख किया गया है। अगर ज़रदुश्त के जीवन को उठा कर देखा जाय तो वहाँ भी उनके जन्म-समय इसी प्रकार की अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं। महात्मा बुद्ध ने अपने कार्य-क्षेत्र में उतरने से पहले ४० दिन घोर तपस्या की है, इसी प्रकार ज़रदुश्त भी प्रकृत कार्य-क्षेत्र में उतरने से पहले पक्के तपस्वी के रूप में विराज रहे हैं। अपनी चित्त-वृत्ति और देह को ४० दिन तक निरन्तर तपस्या की विकट भट्टी में तपा कर महात्मा बुद्ध 'बौद्ध-धर्म' के पवित्र सन्देश को संसार की अशान्त आत्माओ तक ला सके थे, ज़रदुश्त को असुर-धर्म (अहुर-धर्म) के उच्च सिद्धान्तों का ज्ञान भी इसी तपःकाल में हुआ

था। जिस समय बुद्ध अपने वास्तविक कार्य-क्षेत्र मे उतरे, उस समय उन्होंने सबसे पहले एक राजा को ही अपना शिष्य बनाया है, इसी प्रकार ज़रदुश्त का पहला शिष्य भी एक राजा ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध और ज़रदुश्त की जीवन-सम्बन्धी घटनाओ में बहुत सी घटनाएँ ऐसी हैं, जो एक दूसरे से बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं; परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें से बुद्ध या ज़रदुश्त किसी के अस्तित्व को दुनिया से उठा दिया जाय, और न आज तक किसी विचारशील विद्वान् ने ऐसा अनुचित साहस ही किया है। फलतः कृष्ण और क्राइस्ट के जीवन की मिलती-जुलती घटनाओं के आधार पर, क्राइस्ट की सत्ता मिटा देना भारी भूल है, घोर अन्याय है, और भद्दा साहस है।

इस प्रकार हम अपनी पिछली पंक्तियों मे ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध में उठने वाली दो जटिल समस्याओ को हल कर चुके। वह युक्तियाँ, जो ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले महानुभाव पेश किया करते हैं, केवल युक्त्याभास हैं—उनमें सारांश कुछ भी नहीं। साथ ही यह सिद्ध किया जा चुका है कि जोसीफस (Josephus) टिसीटस (Ticitus) और प्लीनी (Pliny) के प्रबल प्रमाणों के रहते हुए कोई विचार-शील व्यक्ति महात्मा ईसा की ऐतिहासिक सत्ता में ज़रा भी सन्देह कर सकने का साहस नहीं कर सकता। इन दोनों

बातों के साथ ही हमारे इस परिच्छेद का विषय और उद्देश भी लगभग पूरा हो चुका।

उपसंहार

अन्त में इस परिच्छेद को समाप्त करते हुए हम अपनी उस प्रार्थना को एक बार फिर दोहरा देना चाहते हैं, जोकि इस परिच्छेद के प्रारम्भ में श्लोक द्वारा की थी :—

क्रूराः ! कृतोऽञ्जलिरयं वलिरेष दत्तः,
कायो मया प्रहरतात्र यथाभिलाषम्।

अगर तुम्हें शौक़ है किसी पर प्रहार करने का, अगर तुम्हारी आदत पड़ गई है 'मुखमस्तीतिवक्तव्यं दश हस्ता हरीतिकी' की समालोचना करने की, तो लो उसके लिए मैं अपनी देह को—अपने आपको—अर्पण करता हूँ, खुशी से जितना चाहो 'प्रहरतात्र यथाभिलाषम्।' परन्तु 'अभ्यर्थये:' एक प्रार्थना है :—

वितथ वाङ्मय पांसु वर्षैः,
मा माविली कुरुत कीर्तिनदीः परेषाम्।

वह महान् आत्माएँ हैं, उनकी (ईसा की) कीर्ति संसार को प्रकाश दिखाने वाली है। वह संसार की विभूति है, हमारी पथ-प्रदर्शक है। आओ, उस पवित्र और स्वर्गीय मन्दाकिनी की विमल जल-धारा के स्पर्श से हम अपने इस जन्म को, इस देह को और इस आत्मा को पुनीत करें।

ईसा की उस कीर्ति-नदी की उस विमल जल-धारा को दोषों की मिथ्या धूल डाल कर—उस पर झूठ-मूठ का दोषारोपण करके—गँदला करने की कोशिश मत करो।
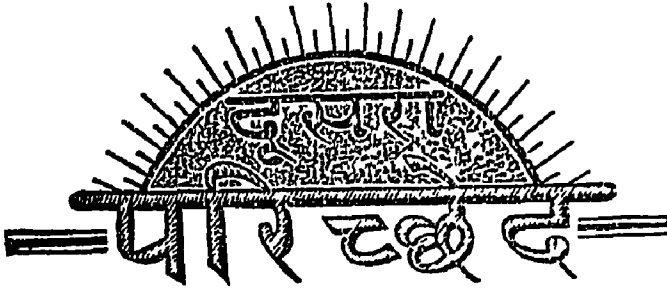
ईसा-चरित्र का स्रोत

श्रद्धा अन्ध-विश्वास की जननी है और यह अन्ध-विश्वास श्रद्धेय पुरुष को उस गहरे कुएँ में डाल देता है, जहाँ उसका अपना उज्ज्वल चरित्र भी साधारण लोगो की दृष्टि से ओझल हो जाता है। सन् २०-२१ की बात है, महात्मा गाँधी का ज़माना था, चारो ओर असहयोग का दौर-दौरा था, लोगो के दिल मे गाँधी का राज्य था। उस समय गाँधी मनुष्य नहीं, देवता बन गए थे। मनुष्य-देह में रहते हुए भी उनके नाम से वह चमत्कार होने लगे थे, जो देवताओ को भी दुर्लभ हैं। वह गाँधी, जो आज भी अपने को मनुष्य—साधारण मनुष्य—से अधिक नहीं समझते हैं, जिन्हे स्वप्न मे भी यह ख्याल न था कि वह अपने इस शरीर से, इससे ऊँची कोई कोटि प्राप्त कर सकेंगे, उस समय दैवी शक्ति से सम्पन्न हो गए थे। लोग कहते थे और रोज़ अख़बारो मे भी छपता

था कि आज अमुक गाँव मे भयानक आँधी आई और उसमें बड़े अच्छे-अच्छे पेड़ गिर गए। आँधी के बाद जब आकाश साफ हुआ तो लोगो ने देखा कि भगतराम चौधरी के खेत की मेंड़ पर जो आम का हरा-भरा पेड़ खड़ा था, वह जड़ से उखड़ा हुआ खेत मे पड़ा हुआ है। भगतू चौधरी ने पेड़ को अपने हाथो रोपा था और उसे पाल-पोस कर आज इतना बड़ा कर पाया था। उन्हें उस आम के पेड़ से उतना ही प्रेम था जितना किसी को अपने पुत्र से हो सकता है। आज पेड़ की यह दशा देख उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी। वह खेत मे खड़े उदास दृष्टि से उस पेड़ की ओर देख रहे थे, थोड़ी देर बाद उन्होने गाँधी का नाम लेकर पेड़ से खड़े हो जाने को कहा और लोग कहते है, पेड़ खड़ा हो गया। उस समय कुछ दिन के लिए गाँधी के नाम पर यह चमत्कार साधारण हो गए थे। हर चौथे-पाँचवे किसी न किसी जगह से इस प्रकार का अद्भुत समाचार मिल ही जाता था। इस प्रकार के अन्ध-विश्वासो की उत्पत्ति जहाँ कहीं हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि उनके पालन-पोषण और वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त वायु-मण्डल गाँवो का है। छुआछूत की बीमारी जिस शीघ्रता से एक गाँव से दूसरे गाँव में फैलती है, उसी शीघ्रता से गाँवो के अशिक्षित वायु-मण्डल मे अन्ध-विश्वास के समाचार फैलते चले जाते है। दुर्भाग्य-वश उस समय गाँधी को अपने आन्दोलन मे सफलता न

मिली। अगर कहीं उनकी आशा के अनुसार १ जनवरी, १९२२ को भारत स्वतन्त्र हो गया होता तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि गाँधी सच्चे देवता हो जाते, और कोः आश्चर्य नहीं कि थोड़े दिन बाद वह भी राम और कृष्ण की तरह अवतार मान कर पूजे जाने लगते। वह सब उस अन्ध-विश्वास की महिमा थी, जो गाँधी के प्रति उमड़ी हुई श्रद्धा से पैदा हुआ था। यह बात इस बीसवीं सदी की है, जब कि लोग अपने को अन्ध-विश्वासी नहीं, बल्कि विचारशील कहते हैं। जब रेल, तार, अखबार और प्रेसों का इतना ज़ोर है। तार और प्रेस के इस जमाने में भी जब कि श्रद्धा के भीतर इतना जोर है, तब उस ज़माने का कहना ही क्या, जिसमें कृष्ण और क्राइस्ट पैदा हुए थे। इसीलिए हम देखते हैं कि आज अगर हम कृष्ण के वास्तविक चरित्र का अध्ययन करना चाहें तो वह लगभग असम्भव हो गया है। कृष्ण-चरित्र की किसी छोटी से छोटी घटना को ले लें, उसके भीतर इतनी जटिल पहेलियाँ और उलझनें मिलेंगी जिनका सुलझना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव हो जायगा। इसी प्रकार की बातें राम या ईसा के सम्बन्ध में भी हैं।

जिन्होंने देखा है, वह जानते हैं कि गङ्गा की पवित्र, निर्मल और शीतल धारा जिस समय अपने उद्गम-स्थान से चली है, उस समय वह कितनी छोटी और पवित्र है। वहाँ वह दुरवगाह नहीं है; उस छोटी सी और पवित्र धारा

को देख कर भय नहीं, भक्ति उत्पन्न होती है। सरल मानव-हृदय उस सुन्दर और पवित्र दृश्य को देख आनन्द से नाचने लगता है और उस समय सचमुच अनुभव करता है कि भागीरथी, जाह्नवी, गङ्गा पाप-नाशिनी है। परन्तु वही पवित्र धारा ज्यो-ज्यो आगे बढ़ती जाती है, त्यों-त्यो उसका स्वरूप विस्तृत, भीषण, साथ ही गँदला होता जाता है और अन्त तक—हुगली तक पहुँचते पहुँचते वह असह्य हो उठता है। वह भावनाएँ, जो गङ्गोत्तरी की गङ्गा या अलखनन्दा को देख कर पैदा हुई थीं, काफूर हो जाती हैं। उस पवित्र और निर्मल गङ्गा के नाम पर इस गँदली और भयानक नदी को देख कर हृदय मे श्रद्धा, भक्ति और शान्ति नहीं, बल्कि एक प्रकार का उद्वेग होता है। ठीक यही हाल हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा के चरित्र का है। उनका अपना चरित्र बहुत उज्ज्वल, थोड़ा सा और आदर्श है। परन्तु उसके साथ इसी भाँति विभिन्न प्रकार की विचार-धाराओं ने मिल कर उसे इतना गहन और दुर्ज्ञेय बना दिया है कि उसमे से उसके विशुद्ध स्वरूप को निकाल लेना प्रायः असम्भव हो गया है। किसी महापुरुष के चरित्र को दुर्ज्ञेय बनाने के लिए श्रद्धा, अशिक्षा, किम्वदन्ती और ऐतिहासिक अज्ञता, इनमे कोई से एक ही पर्याप्त है, परन्तु महात्मा ईसा के चरित्र में इन चारों बातो ने मिल कर बड़ा गहरा रङ्ग दे दिया है।

एक बात और है। ईसा ने जो कुछ भी कार्य किया, सब

मौखिक ही किया है। वह अपने पीछे अपनी कोई लिखित स्मृति नहीं छोड़ गए, जिसके आधार पर उनके सम्बन्ध में किसी विशेष बात का पता लग सके। इसके अतिरिक्त उनके शिष्यों में से प्राय: सभी अशिक्षित थे। उदाहरण के लिए ईसा के चार प्रधान शिष्यों का हाल और उनकी योग्यता का पता देने के लिए हम यहाँ मैथ्यू की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किए देते हैं। ईसा के प्रधान शिष्यों में पीटर, एण्ड्रू, जोन्स और जॉन के नाम विशेष आदरणीय और उल्लेख योग्य हैं। इन चारों के लिए मैथ्यू ने लिखा है :—

"And Jesus walking by the sea of Gelilee saw two brothren Simon called Peter, and Andrew his brother, casting a net into the sea for they were fishers. And he saith unto them, follow me, and I will make you fishers of men. And they straight way left their nets and followed him.

"And going from thence, he saw other two brothren, James the son of Zebedee and John his brother, in a ship with Zebedee their father, mending their nets, and he called them. And they immediately left the ship and their father and followed him."

Matthew IV. 18–22.

"गलील के समुद्र-तट पर भ्रमण करते हुए ईसा ने, दो भाइयो अर्थात् पीटर नाम से विख्यात साइमन और उसके भाई एण्ड्रू को समुद्र मे जाल डालते देखा, क्योंकि वह मछुए थे। ईसा ने उनसे कहा कि आओ, तुम मेरे पीछे चलो, मैं तुम्हे मनुष्यों का मछुआ बनाऊँगा। वे जाल छोड़ कर तत्काल उसके साथ हो लिए।

"वहाँ से आगे बढ़ कर उसने और दो भाइयो अर्थात् ज़बदी के पुत्र जेम्स और उसके भाई जान्द को अपने पिता ज़बदी के साथ नाव पर जाल सुधारते देखा और उन्हे बुलाया। वह नाव और अपने पिता को छोड़ कर तुरन्त उसके पीछे हो लिए।"

—मैथ्यू, पर्व ४, १८-२२

इस प्रकार मैथ्यू के लेखानुसार यह स्पष्ट है कि वे व्यक्ति, जिन्हे ईसा के अधिक से अधिक सहवास का अवसर प्राप्त हुआ है, जन्म के मछुए थे, जो समुद्र के किनारे मछली मार कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे। यह ठीक है कि शिक्षित-जगत् से एकदम दूर रहने वाले इन मछुओ के भीतर ईसा ने कोई ख़ास विशेषता देख कर ही उन्हे अपना शिष्य चुना होगा, परन्तु फिर भी इसमे सन्देह नही कि वह सब नितान्त अशिक्षित थे। इसलिए ईसा के मुँह से समय-समय पर जो महत्वपूर्ण वाक्य निकले, वह इस अनन्त आकाश मे विलीन हो गए, और अगर बहुत

हुआ तो उनकी एक अस्पष्ट छाया इन शिष्यों के अपरिमार्जित हृदय-पटल पर पड़ी रह गई।

हम देखते हैं कि स्वयं महात्मा ईसा को भी अपने पीछे किसी लिखित कार्य को छोड़ने की अभिलाषा नहीं है। उन्हें जहाँ देखो उपदेश देते है, प्रचार करते हैं, परन्तु सब मौखिक। सुकरात की तरह महात्मा ईसा भी अपने मौखिक प्रचार-कार्य से ही सन्तुष्ट हैं। मानो उन्हे अपने पीछे कुछ लिखित कार्य छोड़ जाने की आवश्यकता का कभी अनुभव ही न हुआ। इसके अतिरिक्त ईसा के उन शिष्यों ने भी, जो कुछ लिख-पढ़ सकते थे, अपने आचार्य—महात्मा ईसा—के जीवन-काल में कुछ लिखने का यत्न किया हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। यही नहीं, ईसा के बाद भी उनके शिष्यों ने वही ढङ्ग पकड़ा है, जो उनके आचार्य का था। हाँ, इस समय उनके अन्य उद्देशों के साथ ईसा को मसीहा सिद्ध करने का उद्देश और शामिल हो गया है, परन्तु उनके मौखिक प्रचार के ढङ्ग में कोई अन्तर न हुआ। इसलिए ईसा का जीवन-वृत्तान्त जो कुछ इस समय हम तक पहुँच रहा है, वह ईसा के जीवन-काल का लिखा नहीं, और न उसकी नींव ईसा के स्वर्गवास के कुछ दिन बाद तक ही पड़ी थी।

इस समय महात्मा ईसा के जीवन-वृत्तान्त को हम तक पहुँचाने वाली पुस्तकें मुख्यतः ४ गॉस्पल हैं, जोकि न्यूटेस्टा-

मैण्ट के नाम से कहे जाते हैं। यह चारों गॉस्पल, अगर हम यथार्थ दृष्टि से देखें तो वस्तुतः चार भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए महात्मा ईसा के चार जीवन-वृत्तान्त हैं, जिनके लेखक क्रमशः मैथ्यू, मार्क, लूक और जॉन हैं। साधारणतः ईसाइयों और आम लोगों का विचार है कि यह गॉस्पल्स या तो ईसा-चरित्र के दृष्ट साक्षियों द्वारा स्वयं लिखे गए हैं अथवा उन दृष्ट साक्षियों ने दूसरे लेखकों द्वारा लिखवा दिए हैं। दोनों अवस्था में ही प्रामाणिकता की दृष्टि से वह बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। ईसा-चरित्र के लिखे जाने के दो प्रकार, जिनका कि उल्लेख हमने अभी किया है, उसके वर्तमान संग्रह-क्रम से भी पुष्ट होते हैं। न्यूटेस्टामैण्ट के वर्तमान संग्रह में पहला स्थान मैथ्यू, दूसरा मार्क, तीसरा लूक और चौथा जॉन का है। यद्यपि अनेक पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में प्राचीनता के लिहाज़ से मार्क का गॉस्पल सबसे पहला है, परन्तु फिर भी वर्तमान संग्रह में सबसे पहला स्थान मैथ्यू को दिया गया है। इसका कारण यह समझा जाता है कि मैथ्यू ईसा-चरित्र का दृष्ट साक्षी था और उसने जो कुछ लिखा है, अपनी आँखों देखा हाल लिखा है। इसके विरुद्ध मार्क ने जिन बातों को अपने गॉस्पल में लिखा है, उनका प्रत्यक्ष उसने स्वयं न किया था, बल्कि उसने जो कुछ लिखा है वह ईसा के प्रधान शिष्य पीटर के कथन के आधार पर लिखा है, क्योंकि

मार्क को पीटर के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस मत के समर्थक मुख्यत. पेपियास (Papias) और इरेनियस (Irenaeus) समझे जाते है। न्यूटेस्टामेण्ट मे पीटर के साथ वर्नवास (Barnabas), पाल (Paul), और मार्क के नाम पाए जाते हैं—कुछ तो इसलिए, और कुछ चर्च की प्रसिद्धियों के आधार पर उपर्युक्त दोनों इतिहास-लेखकों ने मार्क को पीटर का साथी करार दिया है। उनके इस निर्णय के आधार पर ही यह सिद्धान्त बनाया गया कि मार्क ने ईसा के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह पीटर से सुन कर ही लिखा है। इस प्रकार चूँकि मैथ्यू दृष्ट ईसा-चरित्र का साक्षी था, इसलिए उसका महत्व सबसे अधिक था और इसीलिए उसे गॉस्पल संग्रह मे पहला स्थान दिया गया; और मार्क ने ईसा का जो जीवन-वृत्तान्त लिखा वह दृष्ट साक्षी—पीटर—के कथन के आधार पर लिखा था, इसलिए उसे दूसरा स्थान दिया गया।

यद्यपि जैसा कि हम लिख चुके है, साधारण लोगों का विश्वास है कि चारो गॉस्पल दृष्ट साक्षियो द्वारा लिखे गए, परन्तु अगर वाइबिल को उठा कर हम ध्यानपूर्वक उसका पारायण करें तो देखेंगे कि वह स्वयं इस बात का समर्थन नही, बल्कि खण्डन करते हैं। उन ग्रन्थो मे इस प्रकार के बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जो हमें इस बात पर विवश करते है कि यह दृष्ट साक्षियो द्वारा नहीं लिखे गए। उदाहरण

के लिए हम इस समय मैथ्यू के गॉस्पल को लेकर उसे इस कसौटी पर कसने का यत्न करेंगे कि वह किसी दृष्ट साक्षी द्वारा लिखा गया सिद्ध हो सकता है या नहीं ?

ईसा-चरित्र के दृष्ट-साक्षी

मैथ्यू के नाम से इस समय जो गॉस्पल मिलता है, वह वास्तव में मैथ्यू का ही लिखा है, इस विषय में पुस्तक निजी रूप से कोई प्रमाण नहीं रखती। हाँ, चर्च की परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार आज वह मैथ्यू की लिखी बतलाई अवश्य जाती है। इस बात का उल्लेख चर्च के अनेकानेक उच्च अधिकारियों के लेखो मे मिलता है। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए हम—

3. Epiphanius (368 A. D.)
4 Jerome (392 A. D.)
1 Irenaeus (178 A. D.)
2 Origen (230 A. D.)

के नाम पेश कर सकते हैं। लगभग इन सबने यह स्वीकार किया है कि ६८ ए० डी० के करीब मैथ्यू ने एक गॉस्पल लिखा था। इस गॉस्पल के सम्बन्ध मे और आगे लिखते हुए यह भी सबने एकमत से स्वीकार किया है कि वह गॉस्पल, जोकि मैथ्यू ने लिखा था, हिब्रू भाषा में लिखा गया था। हम इस गॉस्पल को, जोकि वर्तमान समय मे

मैथ्यू के नाम से लिखा हुआ माना जाता है, उसका लिखा स्वीकार करने में किसी प्रकार का सङ्कोच न करते, यदि उन्होंने यह न लिख दिया होता कि मैथ्यू का गॉस्पल हिब्रू भाषा में लिखा गया था। मैथ्यू के नाम के साथ हिब्रू का पुछल्ला जोड़ कर उन्होंने सचमुच विषय को और भी सन्दिग्ध बना दिया है। क्योंकि वर्त्तमान समय में जो गॉस्पल मैथ्यू के नाम से पाया जाता है, वह हिब्रू के बजाय ग्रीक भाषा में लिखा है। ख़ैर, अगर इतना ही होता तो उसकी भी कुछ फ़िकर कर ली जाती, हम उसे मूल हिब्रू पुस्तक का अनुवाद कह कर सारी शङ्काओं का समाधान कर देते, परन्तु भाषा-शास्त्र के विशेषज्ञों ने उसके साथ एक पुछल्ला और जोड़ दिया है :—

"But Learned men are satisfied from internal evidences that it is not a translation at all, but must have been originally written in Greek."

उन्हें इस बात का विश्वास है कि ग्रीक भाषा में मैथ्यू के नाम से पाया जाने वाला यह गॉस्पल किसी दूसरी पुस्तक का अनुवाद नहीं, बल्कि उसके वाक्य-विन्यास और लेखन-शैली से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मूल रूप से ही ग्रीक भाषा में लिखा गया है। इन विद्वानों के इस पुछल्ले ने रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया और हमसे उस अस्त्र को भी, जो अन्तिम समय में हमारा सहारा होता, छीन

लिया। यह सारा काण्ड अगर अब भी यहीं समाप्त हो जाता तो भी ख़ैरियत थी, शायद कोई रास्ता निकल आता, परन्तु आपत्ति आती है तो अकेली नहीं आती, उसके साथ भी न जाने कितने पुछल्ले जुड़े रहते हैं।

अभी हम इन दो समस्याओ को हल भी न कर पाए थे कि एब्योनाइट्स और नेज़रीन नाम की दो जातियाँ न जाने कहाँ से टूट पड़ीं। इन दोनों जातियो के पास हिब्रू भाषा में लिखा एक गॉस्पल पाया जाता है और वह उसे मैथ्यू का लिखा बतलाती हैं। जब पहले-पहल यह खबर इस विचार के समर्थकों को मिली तो बेचारे बड़ी आशा से उनके पास पहुँचे कि अब क्या है, अब तो मैदान मार लिया। परन्तु जब उनके गॉस्पल को उठा कर अपने गॉस्पल के साथ मिलान किया, तो आशा की लहलहाती लता को पाला मार गया। अपने विषय के विशेषज्ञों का कहना है कि उस हिब्रू और इस ग्रीक भाषा के गॉस्पल में आकाश-पाताल का अन्तर है। उनमें से एक को किसी दूसरे का अनुवाद करने की हिम्मत कभी स्वप्न में भी न करनी चाहिए। फलतः अनेकानेक प्रामाणिक लोगो के द्वारा इस बात के स्वीकार किए जाने पर भी कि मैथ्यू ने एक गॉस्पल लिखा, हम विवश हैं इस निर्णय के लिए कि वह गॉस्पल यह नहीं है, जोकि वर्तमान समय में साधारणतः मैथ्यू के नाम से उपलब्ध होता है। बहुत सम्भव है कि वह गॉस्पल,

जोकि हिब्रू भाषा में है, दृष्ट साक्षी—ईसा के शिष्य मैथ्यू—द्वारा लिखा गया हो। परन्तु उपरोक्त विवरण को देख कर हम इस गॉस्पल को किसी दृष्ट साक्षी द्वारा लिखा गया बतलाने मे सर्वथा असमर्थ है। इसके सिवाय और भी अनेक युक्तियाँ इस सम्बन्ध मे पाई जाती हैं, जिनमे से कुछ का उल्लेख हम यहाँ कर देना चाहते हैं।

ईसा के जीवन मे बहुत सी ऐसी घटनाएं हैं, जिनके विषय मे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय किसी अन्य व्यक्ति का उपस्थित हो सकना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सो घटनाएँ ऐसी भो हैं जिनके विषय मे निश्चित तौर से ज्ञात है कि उन पर लेखक (मैथ्यू) स्वय उपस्थित था। एक दृष्ट साक्षी द्वारा लिखे जाने पर यह स्वाभाविक और आवश्यक है कि उक्त दोनो प्रकार की घटनाओ के विवरण मे, उनकी लेखन शैली मे और उनकी विस्तृत आलोचना के ढङ्ग मे काफी अन्तर हो, परन्तु मैथ्यू-लिखित ईसा के प्रकृत जीवन-वृत्तान्त मे इस प्रकार का कोई विशेष भेद लक्षित नहीं होता। दोनो प्रकार की घटनाओ का वर्णन बिल्कुल एक ही ढङ्ग से किया गया है। दृष्ट घटनाओ के वर्णन मे जो विशेषता और अदृष्ट घटनाओ के वर्णन में जो कमी पाई जानी आवश्यक थी, वह कहीं नाम को भी दिखाई नहीं देती। इसके विरुद्ध कहीं-कही ऐसी घटनाएँ, जिनमें लेखक के उपस्थित रहने का कोई उल्लेख नहीं मिलता,

विशेष विस्तृत रूप से लिखी गई हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में इन घटनाओं के नाम उद्धृत किए जा सकते हैं :—

(१) ईसावतरण (The incarnation) पर्व १

(२) ज्योतिषियों का उपाख्यान (Magis tail) पर्व २

(३) प्रलोभन (Temptation) पर्व ४

(४) स्वरूप निर्वाणम् (Transfiguration) पर्व १७

(५) जैथस्मैनी (Gethsemane) पर्व २६

(६) पीटर का प्रतिषेध

यह घटनाएँ ऐसी है, जिनके समय मैथ्यू उपस्थित न था, यह बड़ी दृढ़ता के साथ, स्पष्ट और विश्वस्त रूप से कहा जा सकता है। इसलिए इस गॉस्पल के लेखक से इन घटनाओं के सम्बन्ध मे किसी विस्तृत विवरण की आशा नहीं की जा सकती। परन्तु इनमे से किसी घटना को उठा कर देखिए, इतनी विस्तृत मिलेगी कि देखने वाला हैरान हो जायगा। इसके विरुद्ध उन यात्रादि के विषय के विस्तृत विवरण, जिनमें मैथ्यू ईसा के साथ था और जिनकी एक साथी की हैसियत से मैथ्यू से आशा की जा सकती थी, बिलकुल नदारद हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गॉस्पल किसी दृष्ट साक्षी द्वारा नहीं लिखा गया।

इसके अतिरिक्त मैथ्यू के सिवाय अन्यान्य गॉस्पल का लिखा जाना भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय भी लोगो की दृष्टि मे मैथ्यू का लेख प्रामाणिक नहीं समझा

जाता था। अगर मैथ्यू सचमुच दृष्ट साक्षी होता तो इसमे सन्देह नहीं कि उन लेखको को, जिन्होंने उसके पीछे ईसा के जीवन-वृत्तान्त पर कलम उठाई है, मैथ्यू के सामने सर झुकाना ही पड़ता। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके विरुद्ध है। इसीलिए हम देखते है कि अन्य लेखको और मैथ्यू मे स्थल-स्थल पर घोर मतभेद है। फलतः जब कि उन लेखको के ज़माने मे, जिनमे कि अधिक से अधिक ४०-५० वर्ष का अन्तर है, मैथ्यू प्रामाणिक नहीं समझा जाता था तो अब उसे दृष्ट साक्षी कैसे क़रार दिया जा सकता है ?

इसके अतिरिक्त लूक के लेख की प्रारम्भिक पंक्तियाँ बहुत स्पष्ट शब्दो में इस विषय पर प्रकाश डाल रही हैं कि ईसा के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा गया, वह सुने-सुनाए कथानको और उपाख्यानों के आधार पर लिखा गया है।

लूक के निजी शब्द इस तरह हैं :—

"For as much as many have taken in hand to set forth in order a declaration of those things which are most surely believed among us.

"It seemed good to me also having had perfect understanding of all things from the very first to write unto thee in order, most excellent theophilus."

Luke IV 1-3

इस प्रकार लूक के शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मैथ्यू या लूक में से कोई भी दृष्ट साक्षी नहीं है। रहा मार्क, सो उसके सम्बन्ध मे स्वयं पेपियास का भी यही मत है कि वह दृष्ट साक्षी नहीं। शेष चौथे और अन्तिम गॉस्पल के सम्बन्ध मे तो यही गहरा मतभेद है कि वह जॉन का लिखा है भी या नहीं? कुछ विद्वान् बड़ी दृढ़ता से इस बात का खण्डन करते हैं कि वह जॉन का लिखा है, दूसरे विद्वान् भी अगर उतनी दृढ़ता से खण्डन नहीं करते तो भी उसे जॉन का लिखा स्वीकार करने मे कुछ सकुचाते अवश्य है। इस विषय में विभिन्न आलोचक विद्वानो की सम्मति संक्षेप मे नीचे दी जा रही है :—

(१) ब्रेट्स स्नीडर (Brets Chneıder) के विचारानुसार यह गॉस्पल जॉन का लिखा नहीं।

(२) डी वेटी (De Wette) का कथन है कि यह सचमुच जॉन का लिखा है, इसका निर्णय कर सकना कठिन कार्य है।

(३) स्ट्रास (Strauss) भी इस विषय को विवादास्पद और सन्दिग्ध छोड़ कर चल दिए हैं।

(४) रेनन (Renan) ईसा के जीवन के सम्बन्ध मे बड़े प्रामाणिक लेखक समझे जाते हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध 'वाई डी जिसस' (Vıe de Jesus) नामक पुस्तक के प्रथम संस्करण में उसे असली जॉन का लिखा बतलाया था, परन्तु

इसी पुस्तक के १३ वे संस्करण मे उन्हे अपना मत परिवर्तित करना पड़ा, और अन्त मे विवश होकर उन्होने स्वीकार कर लिया कि यह जॉन का लिखा नहीं है।

इस विषय को सिद्ध करने के लिए जिन युक्तियो का आश्रय लिया जाता है, इसमे सन्देह नहीं कि वह युक्तियाँ अत्यन्त प्रबल है। तभी तो रेनन जैसे विद्वान् को, जो १२ संस्करण तक निरन्तर उसी सिद्धान्त पर डटा रहा, अन्त को १३ वें संस्करण मे पहुँच कर इस मत को स्वीकार करना ही पड़ा। इन युक्तियो मे से हम अपने पाठको के परिचय के लिए सिर्फ एक युक्ति को लिख कर आगे बढ़ेंगे।

पीटर, जेम्स और जॉन, जैसा कि हम पहले लिख चुके है, ईसा के प्रधान शिष्यो मे से है। अन्य गॉस्पल-लेखको ने कई ऐसी घटनाओ का उल्लेख किया है, जिनके होते समय उनके कथनानुसार केवल यह तीन शिष्य ही उपस्थित थे। फलतः सब गॉस्पल-लेखको में से सिर्फ जॉन ही ऐसे व्यक्ति है, जो इस प्रकार की घटनाओ के सम्बन्ध मे दृष्ट साक्षी कहे जा सकते है। और इस दृष्टि से जॉन के गॉस्पल मे उन घटनाओ का विशेष रूप से जिक्र पाए जाने की हमे आशा थी, परन्तु परिणाम उससे बिल्कुल उल्टा ही है। जहाँ अन्य लेखको ने उन घटनाओ का थोड़ा-बहुत जिक्र भी कर दिया है, वहाँ जॉन ने उनका विशेष वर्णन; जिसकी कि उनसे आशा थी, तो दूर रहा, उस साधारण

ज़िक्र को भी उड़ा दिया है, यहाँ तक कि उनके गॉस्पल मे वह घटनाएँ जड़-मूल से बिल्कुल नदारद हैं। इस प्रकार की घटनाओ में जैक्स की लड़की का उठाना (ट्रान्स-फिगरेशन) और जैथस्मैनी का ज़िक्र मुख्य हैं।

फलतः इस परिच्छेद की ऊपर लिखी सारी पंक्तियों का आशय यह है कि यह चारों गॉस्पल किन्हीं दृष्ट साक्षियो द्वारा न लिखे गए और न लिखाए गए। अब एक प्रश्न हल करने को और रह जाता है कि फिर इनका उद्गम कहाँ से है? इस प्रश्न के उत्तर में ही यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा का चरित्र, जो आज हमें उपलब्ध होता है, कहाँ से आया, कैसे आया और कहाँ तक प्रामाणिक समझा जा सकता है?

ईसा-चरित्र को वर्त्तमान रूप कैसे मिला?

ऐसी अवस्था में, जब कि इन चारों गॉस्पल्स मे से किसी का लेखक दृष्ट साक्षी नहीं, तब उनकी सृष्टि कैसे हुई, यह समस्या अनेक विचारशील विद्वानों के सामने उपस्थित हुई है और सबने भिन्न-भिन्न प्रकार से उसको हल करने का प्रयत्न किया है। इसलिए हमारे इस प्रश्न के उत्तर भी अनेक हो सकते हैं, परन्तु उन सबका अन्तर्भाव इन तीन मुख्य सिद्धान्तों के भीतर हो जाता है, इसलिए हम यहाँ इन तीनो का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं।

(१) प्रकृत विषय मे पहला सिद्धान्त यह है कि ईसा के यह चारो जीवन-वृत्तान्त किसी एक पाँचवें जीवन-वृत्तान्त के आधार पर लिखे गए। परन्तु इनके लेखको ने अपने-अपने विचार के अनुसार कहीं-कहीं उसके कथाश मे हेर-फेर कर दिया है, इसीलिए उनमे आपस मे मतभेद पाया जाता है।

यह थ्योरी आज से बहुत दिन पहले स्थापित की गई थी, परन्तु आज के विद्वानो की दृष्टि मे वह कोई विशेष मूल्य नहीं रखती। उसका काफी से ज्यादा खण्डन किया जा चुका है।

(२) इस विषय मे दूसरी थ्योरी यह है कि इन चारो इवेंजिलिस्टो मे से किसी एक ने अपना गॉस्पल पहले लिखा. शेष तीनो ने उसे देख कर और कहीं-कहीं परिवर्तन करके अपने-अपने गॉस्पल की सृष्टि की। हाँ, इस विषय में भी जैसा कि हम पहले लिख चुके है, मतभेद है कि इनमे से पहला लेखक कौन है। मि० केनरिक (Mr. Kenrick) प्रभृति कतिपय विद्वानो का मत है कि मार्क ही सबसे पहला लेखक है और शेष सबने उसी के आधार पर अपने-अपने गॉस्पल को सृष्टि की, परन्तु अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नहीं और उनकी दृष्टि मे पहला लेखक मार्क नहीं, बल्कि मैथ्यू है।

यद्यपि यह सिद्धान्त आज भी कुछ लोग मानते हैं,

परन्तु अगर इस पर ज़रा गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यह रीति समस्या को पूरी तरह से हल नहीं कर सकती। प्रकृत समस्या के, जिसको कि हम हल करना चाहते हैं, मुख्य तीन अंश है :—

(१) गॉस्पल में परस्पर भेद क्यों है ?

(२) गॉस्पल मे एकता क्यो है ?

वस्तुतः जो उपाय प्रश्न के इन दोनो पहलुओ पर प्रकाश डाल सकता है, वही इस समस्या का सीधा, सरल और मान्य हल समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय समस्या को हल नहीं कर सकता। प्रकृत युक्ति समस्या के सिर्फ एक पहलू पर प्रकाश डाल रही है कि गॉस्पल मे एकता क्यों है ? मगर इस रीति से प्रश्न का दूसरा पहलू कि गॉस्पल में परस्पर भेद क्यों है ? बिल्कुल अछूता रह जाता है। तीनों गॉस्पल एक गॉस्पल के आधार पर लिखे गए, इसलिए उनकी घटनाएँ एक सी हैं, यहाँ तक तो ठीक है। यह रीति इस पहलू पर पूरा प्रकाश डाल रही है, परन्तु समस्या इतने ही से हल नहीं हो जाती, यह तो सिर्फ उसका एक ही अंश है। दूसरे अंश को हल करने की यह युक्ति कि उन्होंने अपनी इच्छा से उसमें परिवर्तन कर दिए, इस कारण उनमें परस्पर भेद पाया जाता है, यह एक लचर दलील है। बिना किसी विशेष कारण के उन्होंने फेर-फार क्यों किया, यह कुछ ठीक तरह समझ में नहीं आता।

फलतः इस युक्ति को स्वीकार करने से प्रश्न किसी हद तक हल अवश्य हो जाता है, परन्तु वह हल सिर्फ आंशिक रह जाता है, इसलिए हमें इसके लिए कोई और उपाय तलाश करना चाहिए।

(३) उन विद्वानो की, जिन्होंने इस समस्या को हल करने में अपना दिमाग खपाया है, एक और श्रेणी है, जिसने इस प्रश्न को अच्छे रूप में हल करने का यत्न किया है; और इसमे सन्देह नहीं कि उन्हे अपने यत्न में सफलता भी मिली है। उन लोगो का विचार है कि, जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है, ईसा के जीवन-काल में या उसके बहुत दिन बाद तक उनके जीवन-चरित्रादि के सम्बन्ध में कोई लिखित कार्यवाही नहीं की गई। इसके साथ ही महात्मा के उस अलौकिक बलिदान के बाद अगर धार्मिक नेता की दृष्टि से न सही, तो भी उनका अपना व्यक्तित्व और उज्ज्वल चरित्र लोगो के दिल में घर कर चुका था। शत्रु और मित्र, भक्त और उदासीन, हर एक की जबान पर किसी न किसी रूप में उनका नाम था। परिणाम-स्वरूप हर जगह उनके चरित्र की आलोचना हुआ करती थी। कोई उनके बलिदान पर मुग्ध है, तो कोई उनके अलौकिक चरित्र पर मोहित है; किसी के दिल में उनका कोई आदर्श घर किए बैठा है तो कोई उनके किसी दूसरे गुण पर फिदा हुआ जाता है। बहुधा ऐसा भी सम्भव है कि

कोई एक ही घटना किसी को किसी दृष्टि से सुन्दर और आकर्षक मालूम होती हो, तो दूसरा उसी घटना को किसी दूसरे रूप मे श्रद्धेय समझता हो और तीसरे की राय मे वही घटना किसी तीसरी दृष्टि से महत्वपूर्ण हो। इस प्रकार ईसा-चरित्र की प्रत्येक घटना के सम्बन्ध मे उन्हीं लोगो मे, जिन्होने उसको अपनी आँखो देखा है, साम्य और वैषम्य पाया जा सकता है। परन्तु हम कह चुके हैं कि ईसा-चरित्र का यह घटना-क्रम यहीं समाप्त नही हो जाता। यह साम्य और वैषम्य तो पहली सीढ़ी और पहली पीढ़ी का है। अब उसके आगे परम्परा प्रारम्भ होती है। एक ने दूसरे से कहा, दूसरे ने तीसरे से और तीसरे ने चौथे से। इस प्रकार एक-एक घटना भिन्न-भिन्न लोगो में फैलना शुरू हुई, और जैसी कि लोकोक्ति प्रसिद्ध है, प्रत्येक घटना जितने मुँह उतनी बात के रूप मे लोगो के सामने आना शुरू हुई, पर उन सबके भीतर विभिन्नता रहते हुए भी कुछ अंश समानता का भी अवश्य रहता था। इस प्रकार काल-चक्र के परिवर्तन के साथ घटना-चक्र मे भी परिवर्तन होता चला गया, एक ही घटना नाना रूपो में तमाम देश में फैल गई। कुछ समय के बाद ईसा के भक्तों को इन घटनाओ का लिखित-संग्रह करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उस समय जिसके दिमाग़ मे यह स्कीम उठी, फिर वह चाहे मैथ्यू हो या मार्क, लूक हो या जॉन,

उसे अपने आस-पास जहाँ तक 'प्रभु' ईसा के चरित्र के सम्बन्ध मे किम्बदन्ती और उपाख्यान मिल सके, उनका संग्रह उसने कर दिया। इस तरह ईसा-चरित्र की पहली पुस्तक तैयार हो गई। परन्तु वह ज़माना रेल, तार और अख़बारो का नहीं था, इसलिए किसी को क्या मालूम कि कहाँ किसने और किस रूप में 'प्रभु' ईसा के चरित्र का संग्रह किया है। कुछ काल बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने इस आवश्यकता का अनुभव किया और उसने अपने आस-पास के वायु-मण्डल मे से 'मसीहा'-चरित्र का संग्रह प्रारम्भ किया। अपने इस संग्रह मे उसे बहुत सी ऐसी बातें भी मिलीं, जिनका संग्रह पहला लेखक कर चुका था, कुछ बाते बिलकुल नई मिलीं और कुछ बातें ऐसी भी मिलीं जो पहले संग्रहकर्ता ने किसी और रूप में सुनी थीं। परन्तु इस समय के और इस स्थान के वायु-मण्डल में, जहाँ कि संग्रहकर्ता की गति सम्भव है, उसी 'जितने मुँह उतनी बात' प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार कुछ और ही स्वरूप पाया जाता था। फलतः इस दूसरे संग्रहकर्ता के संग्रह मे कुछ घटनाएँ पहले से मिलती-जुलती, कुछ सर्वथा नई और कुछ परिवर्तित रूप में आईं। दूसरे संग्रहकर्ता की दृष्टि में यह ईसा का सर्वाङ्गपूर्ण जीवन संगृहीत हो गया। इसी प्रकार क्रमशः तीसरे और चौथे जीवन-वृत्तान्त की सृष्टि हुई। इस प्रकार चारो गॉस्पल्स की समानता और विषमता दोनो—पहलुओ पर अच्छा प्रकाश

डालता हुआ तीसरे विद्वानों का यह तरीक़ा प्रश्न को सरलता से और सुन्दर रूप से हल कर रहा है।

इस उपाय की पोषक एक युक्ति और भी है। इस प्रकार के संग्रह में यह भी सम्भव है कि कभी-कभी एक ही घटना एक ही संगृहीता को भिन्न-भिन्न रूप में सुनने को मिले। यह हमारी कोरी कल्पना ही नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक तथ्य है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि गॉस्पल्स के लेखकों के सामने ईसा-चरित्र की एक ही घटना अनेकों श्रावयिता द्वारा अनेक रूप में पहुँची, और संगृहीता महोदय यह निश्चय न कर सके कि इनमें से कौन सी सत्य और कौन सी मिथ्या है। सचमुच ऐसी अवस्था में जब दोनों सुनाने वाले अपनी-अपनी घटना को सत्य कह रहे हैं और किसी एक पक्ष का भी समर्थक प्रबल तर्क संगृहीता के पास नहीं तो किसी एक पक्ष मे निर्णय देना बड़ा कठिन कार्य हो जाता है। ऐसे समय में सबसे अच्छा, सरल और युक्तिसङ्गत मार्ग यही है कि दोनों प्रकार के विवरणों को पुस्तक में संगृहीत कर दिया जावे। वस्तुतः हम देखते भी यही हैं। चारों गॉस्पल्स के संगृहीताओं ने अपने-अपने गॉस्पल में इसी शैली का अवलम्बन किया है। इस समय सब गॉस्पल्स से इस विषय के उदाहरण दिखला सकना असम्भव है, फिर भी मैथ्यू के गॉस्पल से इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिखा कर हम इस परिच्छेद को समाप्त करेंगे।

अनियमित घटनाएँ

(१) आठवें परिच्छेद की बात है। मैथ्यू ने एक चमत्कार के रूप में एक घटना का उल्लेख किया है :—

"जब वह उस पार गहरेनियो के देश में पहुँचा तो दो मनुष्य जिनमें दुष्टात्मा थे, क़बरो से निकलते हुए उसे मिले, वह इतने भयानक थे कि उनके मारे वह रास्ता बन्द था, और देखो, उन्होने चिल्ला कर कहा कि हे परमेश्वर के पुत्र! हमारा तुझसे क्या काम, क्या तू समय से पहले हमे तङ्ग करने आया है? उनसे कुछ दूर बहुत से सुअरो का एक झुण्ड चर रहा था। दुष्टात्माओ ने उससे यह कह कर विनती की कि यदि हमें निकालता है तो सुअरो के झुण्ड में भेज दे। ईसा ने उनसे कहा जाओ, और वह निकल कर सुअरों मे प्रविष्ट हो गए और देखो सारा झुण्ड करार पर से दौड़ कर पानी में जा गिरा और डूब मरा।"

—मैथ्यू ८। २८-३२

मैथ्यू ने इस जगह दो दुष्टात्माओ का उल्लेख किया है, परन्तु एक बात यह है कि इस प्रकार के दो पागल आदमी एक जगह बिना किसी झगड़े-बखेड़े के रह जायँ, यह कुछ कठिन और असम्भव सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी इस घटना का उल्लेख किया है, परन्तु उनके यहाँ दो के बजाय दुष्टात्माओ की संख्या सिर्फ

एक है। देखो मार्क प० ५। १,१३। लूक ८। २६ यह दोनो वर्णन लगभग एक ही प्रकार के हैं, परन्तु फिर भी लूक का लेख कुछ अच्छा है, वह लिखते हैं :—

"फिर वह गिरासेनियों के देश में पहुँचे, जो गलील के सामने उस पार था। जब वह किनारे पर उतरा तो उस नगर का एक मनुष्य उसे मिला जिसमें दुष्टात्मा थे, और बहुत दिनों से न कपड़े पहिनता था और न घर में रहता था, बल्कि क़बरों में रहा करता था। वह ईसा को देख कर चिल्लाया और सामने गिर कर ऊँचे स्वर से बोला—हे परम प्रधान परमेश्वर के पुत्र, मुझे तुझसे क्या काम, मैं तेरी विनती करता हूँ, मुझे पीड़ा न दे; क्योंकि वह अशुद्धात्मा को उसमें से निकलने की आज्ञा दे रहा था, क्योंकि वह बार-बार उस पर प्रबल होता था और यद्यपि लोग उसे बेड़ियो से बाँधते थे, फिर भी वह साँकलो को तोड़ डालता था, और दुष्टात्मा उसे जङ्गल में भगाए फिरता था। ईसा ने उससे पूछा कि तेरा नाम क्या है ? उसने कहा 'सेना' क्योकि उसमें बहुत से दुष्टात्मा प्रविष्ट हो रहे थे और ईसा से विनती की कि हमे अथाह गढ़े मे जाने की आज्ञा न दे। वहाँ पहाड़ पर एक बहुत बड़ा सुअरों का झुण्ड चर रहा था, उन्होने विनती की कि हमे उसमे जाने दे, और उसने आज्ञा दे दी, तब वह दुष्टात्मा उस मनुष्य से निकल कर सुअरों मे प्रविष्ट हो गए और वह झुण्ड करार पर से समुद्र मे जा घुसा और डूब मरा।"

लूक की इस घटना मे कुछ सौन्दर्य भी है और भूत-प्रेतो पर विश्वास रखने वालो के लिए कुछ स्वाभाविकता भी है, परन्तु मैथ्यू के वर्णन मे सिर्फ चमत्कार ही चमत्कार है, उसमे न तो सौन्दर्य है, न सरलता है और न स्वाभाविकता है।

इसी प्रकार की एक घटना मैथ्यू के २० वे परिच्छेद मे भी पाई जाती है, परिच्छेद का अन्तिम भाग इस प्रकार है —

"जब वह यरीहो से निकल रहे थे, तब बड़ी भारी भीड़ उसके पीछे होली और देखो, दो अन्धे जो सड़क के किनारे बैठे हुए थे, यह सुन कर कि ईसा जा रहा है, चिल्ला कर कहने लगे कि हे प्रभु दाऊद के सन्तान, हम पर दया कर।"

—मैथ्यू २। २६-३४

मार्क १०। ४६ लूक २८। ३५ ने भी अपने-अपने लेख में इस घटना का उल्लेख किया है, परन्तु उनके विवरणो मे अन्धो की संख्या दो के बजाय सिर्फ एक ही है।

स्वयं मैथ्यू भी इससे पहिले एक बार इस घटना का और उल्लेख कर चुके हैं। प० ९। २७ ऐसी अवस्था मे दुबारा फिर उसी घटना को उठा कर रख देना हमे इस परिणाम पर पहुँचाता है कि मैथ्यू ने दो भिन्न-भिन्न लोगो द्वारा दो विवरण सुने और दोनो को अपने गॉस्पल मे जोड़ दिया।

प्रकृत विषय का सबसे अच्छा और मुख्य उदाहरण

ईसा का चामत्कारिक भोज है। मैथ्यू ने १४ वें परिच्छेद में इसका विवरण लिखा है :—

"जब ईसा ने यह सुना तो वह वहाँ से नाव पर चढ़ कर एकान्त सुनसान जगह पर चला गया, और लोग यह सुन कर नगर से पैदल उसके पीछे हो लिए। उसने बाहर निकल कर उस बड़ी भारी भीड़ को देखा तो उस पर दया आई और उसने भीड़ के बीमारों को चङ्गा किया। जब सन्ध्या-समय समीप आया तो ईसा के शिष्यों ने उससे कहा कि यह तो सुनसान जगह और अबेर हो रही है, इस-लिए इन लोगों को विदा करो कि वह नगर जाकर अपने भोजनादि का इन्तज़ाम करें। ईसा ने उनसे कहा कि उनके जाने की ज़रूरत नहीं, तुम्हीं उन्हे खिलाओ-पिलाओ। यह सुन कर शिष्यो ने कहा कि यहाँ हमारे पास पाँच मछली और दो रोटी छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। ईसा ने कहा, उन्हे मेरे पास ले आओ, और लोगो को घास पर बैठने को कहा। रोटी और मछली हाथ में ले, ईसा ने आकाश की ओर देख कर धन्यवाद दिया और रोटियाँ तोड़-तोड़ कर शिष्यो को दीं और शिष्यो ने लोगो को। इन्ही रोटियो को खाकर सब तृप्त हो गए और आखिर को १२ टोकरी सामान बच रहा। स्त्रियो और बालको को छोड़ कर खाने वाले पुरुषो की संख्या करीबन ५ हजार थी।"

इस स्थल पर ईसा ने ५ मछली और २ रोटियो से पाँच

हज़ार से अधिक आदमियो को तृप्त कर दिया है। और उनके खाने के बाद भी १२ टोकरी सामान बच रहा है। घटना-स्थल एक निर्जन पार्वत्य प्रदेश है। इसी प्रकार का एक विवरण मैथ्यू के लेख मे और पाया जाता है। यह विवरण १४ वे परिच्छेद का है, इससे अगले ही परिच्छेद मे ऐसी ही एक दूसरी घटना का उल्लेख है। मैथ्यू लिखते हैं :—

"ईसा वहाँ से चल कर गलील की झील के पास आया और पहाड़ पर चढ़ कर बैठ गया। तमाम लोगो की भीड़ अन्धो, लूलो, गूँगो, टुण्डो और बहुत से और लोगो को लेकर उसके पास आई और उन्हे उसके पाँवो पर डाला और उसने उन्हे चङ्गा किया। सो जब शिष्य लोगो ने देखा कि गूँगे बोलते, टुण्डे चङ्गे होते, लँगड़े चलते और अन्धे देखते हैं, तो आश्चर्यान्वित होकर उन्होने इजराइल के परमेश्वर की स्तुति की।

"ईसा ने अपने शिष्यो को बुला कर कहा कि मुझे इस भीड़ पर तरस आता है, क्योकि वह तीन दिन से मेरे पास है, उनके पास कुछ खाने को नही है, और मै उन्हे भूखा विदा करना नही चाहता। ऐसा न हो कि वह मार्ग में थक कर रह जायँ। उसके शिष्यो ने कहा कि हमे इस जङ्गल में इतनी रोटी कहाँ मिलगी कि हम इतनी बड़ी भीड़ को तृप्त कर सकें। ईसा ने उनसे पूछा, तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं? शिष्यों ने उत्तर दिया कि सात रोटियाँ और थोड़ी सी

मछलियाँ है। तब उसने लोगो को पृथ्वी पर बैठने का आदेश किया और उन सात रोटी और मछलियो को लेकर धन्यवाद करके तोड़ा, और अपने शिष्यो को देता गया और शिष्यो ने उन्हे लोगो तक पहुँचाया। इस प्रकार सब लोग खाकर तृप्त हो गए और बचे हुए टुकड़ो से भरे हुए ७ टोकरे उठाए। खाने वाले स्त्रियो और बालकों को छोड़ कर ४ हज़ार पुरुष थे।"

—मैथ्यू १४-२८

दोनो स्थलो पर घटना लगभग एक ही है। उसके विवरण में भी बहुत ही साधारण-सा भेद है। पहली जगह खाने वालो की संख्या ५,००० है और दूसरी जगह ४,०००। पहली जगह २ रोटी और ५ मछली हैं, परन्तु दूसरी जगह मछलियो की तादाद भी अधिक है और रोटियाँ भी। ऐसी अवस्था में यदि दोनो ही घटनाओं को बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से स्वीकार कर लिया जाय तो एक प्रश्न यह बड़ा टेढ़ा पड़ता है कि जब ईसा के वही शिष्य एक बार ईसा का ऐसा चमत्कार देख चुके थे, उसने सिर्फ २ रोटी और ५ मछलियो से पाँच हज़ार की भीड़ को भोजन करा दिया था तो फिर दुबारा उसी प्रकार का प्रसङ्ग उपस्थित होने से उनके भीतर फिर वही व्यग्रता क्यों दिखाई देती है? "हमें इस जङ्गल मे इतनी रोटियाँ कहाँ मिलेंगी" की पुनरावृत्ति द्वितीय स्थल पर भी की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके

शिष्यों को ईसा के पहले चमत्कार का कुछ पता ही नहीं। इस दूसरे प्रसङ्ग मे रोटियो की संख्या भी अधिक है और मछलियों की तादाद में भी अन्तर है, परन्तु फिर भी शिष्यों की व्यग्रता पर उसका कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। इससे हम बड़ी सरलता से यह परिणाम निकाल सकते है कि वस्तुतः मैथ्यू को दो स्वतन्त्र वक्ताओ द्वारा एक ही घटना संख्या आदि के भेद से दो भिन्न रूपो मे सुनने को मिली और मैथ्यू ने स्वयं किसी प्रकार का निर्णय न कर सकने के कारण दोनों ही घटनाओ को अपने संग्रह मे स्थान दे दिया। इस सिद्धान्त के समर्थन मे एक और भी युक्ति है और वह यह कि मैथ्यू को छोड़ कर अन्य दो लेखको ने भी इस चमत्कार का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने घटना-आवृत्ति नहीं की, वह घटना के एक ही बात के वर्णन से सन्तुष्ट हो गए हैं।

दूसरा खण्ड
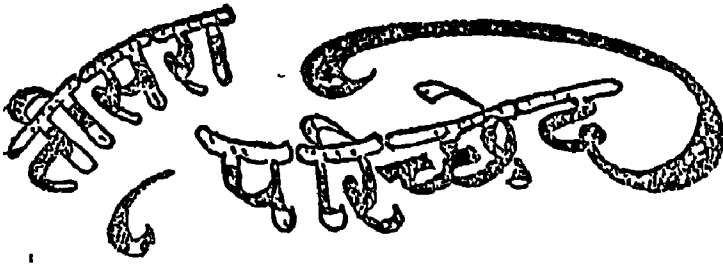
पूर्व-परिस्थिति

भक्त की भावना ही भगवान् का चित्र है। जिस प्रकार कवि कल्पना-जगत् में अपने हृदय की सृष्टि करता है, जिस प्रकार चतुर चितेरा चित्र के बहाने अपने दिल को कागज़ पर निकाल कर रख देता है, उसी प्रकार भक्त जब अपने भगवान्—आराध्य, श्रद्धेय—की मूर्त्ति चित्रित करने बैठता है, उस समय उसका अपना स्वरूप अधिकांश में लुप्त हो जाता है, और उसका स्थान ले लेती है भक्त की भावना। इस चित्र में अगर भगवान् का असली स्वरूप देखना चाहे तो वह सिर्फ चित्र की बाह्य रेखाओं मे ही समाप्त हो जाता है, उसके आगे चित्र मे जो कुछ सौन्दर्य या रङ्ग दिखलाया गया है, उसकी जननी केवल भक्त की भावना है :—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन देखी तैसी॥

लोग कहते हैं, मालूम नहीं कहाँ तक सच है, इसी ब्रज-भूमि की बात है। ब्रज-भूमि बालगोपाल श्रीकृष्ण की लीला-भूमि है, यहाँ के मन्दिरों मे सिर्फ कृष्ण की उपासना होती है, मुश्किल से ढूँढ़े भी शायद कोई ऐसा मन्दिर न मिलेगा जहाँ कृष्ण की उपासना न होती हो। एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी को इस ब्रज-भूमि में आने का मौका पड़ा। गोस्वामी जी स्वभावतः राम के उपासक थे, वह कृष्ण की उपासना नहीं करते थे। परन्तु यहाँ आकर जब वह एक मन्दिर में पहुँचे, तो उन्होंने हाथ मे मुरली लिए कृष्ण की मूर्ति देखी। उनके हृदय मे राम का राज्य था, उनका सर राम के आगे झुक चुका था, इसलिए वह कृष्ण की नहीं, राम की मूर्ति देखना चाहते थे, परन्तु यहाँ उनकी आशा—अभिलाषा—के विरुद्ध मुरलीधर कृष्ण की मूर्ति दिखाई दी, इसलिए वह अपनी आदत के विरुद्ध उस कृष्ण-मूर्ति के आगे सर न झुका सके। वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे। परन्तु भक्त की भावना बड़ी प्रबल थी, वह राम का स्वरूप देखने के लिए उत्सुक थी। तुलसीदास जी ने कुछ आगे बढ़ कर एक दोहा पढ़ा :—

तुलसी मस्तक तब झुके, धनुष बाण लेहु हाथ।

एक भक्त—सच्चे भक्त—की भावना थी, उसके शब्दों मे ज़ोर था, उसकी भावना में वेग था, मूर्ति में वस्तुतः कोई परिवर्तन हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु तुलसीदास के लिए

अब वहाँ मुरलीधर कृष्ण नहीं, बल्कि धनुर्धर राम थे। भक्त की भावना ने विजय पाई, तुलसीदास के लिए कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में परिवर्त्तित हो गई। इस समय भगवान् की मूर्ति भक्त को (तुलसीदास को) अपने (कृष्ण के) असली रूप में नहीं, बल्कि भक्त की भावना के रूप में दिखाई दे रही थी। इसीलिए हम कह रहे थे कि भक्त जब अपने भगवान् का चित्र खींचने बैठता है तो वह भूल जाता है कि मैं किसका चित्र खींच रहा हूँ। वह केवल बाह्य रेखाओं को खींच कर उसमें अपनी भावना का रङ्ग दे देता है। ठीक यही बात हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा के चरित्र-चित्रण में दिखाई देती है। ईसा के चरित्र-लेखक उनके भक्त थे। उनके दिल मे एक ही भावना काम कर रही थी, और वह यह कि ईसा वास्तव में मसीहा है। उन्हें सच्चे रूप से ईसा की मसीहत पर विश्वास था, और वह दूसरों में भी इस बात का प्रचार करना चाहते थे। इस भावना की स्पष्ट झलक उनके द्वारा लिखे गए चरित्रो मे दिखाई देती है। खास कर मैथ्यू की पंक्तियो मे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसके यहाँ यही—सिर्फ यही—भाव काम कर रहा है। उसने ईसा-चरित्र की जिस घटना का भी उल्लेख किया है, हर एक को मसीहाई भविष्य-वाणी से मिलाने की चेष्टा की है और अपनी इस चेष्टा में उन्होंने महात्मा ईसा के असली स्वरूप को भी छिपाने की चेष्टा की है। परन्तु इस यत्न में वह

असफल और इतने अधिक असफल हुए हैं कि उसे देख कर हँसी आ जाती है। इसके साथ ही इस मसीहाई धुन में उन्होंने वास्तविक तथ्य की कुछ भी पर्वाह न करके घटना को इस बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा है कि जिसने ईसा-चरित्र और इतिहास दोनो के कलेजे पर जहरीली छुरी फेर दी है। हम आगे की पंक्तियो मे मैथ्यू की इस प्रवृत्ति का निदर्शन कराते चलेंगे।

इस परिच्छेद मे हम महात्मा ईसा के चरित्र-चित्रण की आलोचना करना चाहते थे, परन्तु वास्तव मे इन लेखको ने उनका चरित्र इतना अस्पष्ट कर दिया है कि हम उसके असली स्वरूप को पहिचान भी नहीं सकते। जिस प्रकार पौराणिक साहित्य की कपोल-कल्पनाओ मे कृष्ण का चरित्र छिप गया है, उसी प्रकार मसीहाई कल्पनाओ की धारा में ईसा का चरित्र बह गया है। इस समय हमे जो कुछ भी दीख पड़ता है, उसके अनुसार ईसा का जन्म भी अलौकिक है, उसकी मृत्यु भी अलौकिक है और उसके बीच का जीवन भी अलौकिक है। इसीलिए उनके जीवन का हर एक अंश एक रहस्यमय पहेली बना हुआ है, जिसका सुलझाना बहुत दुष्कर कार्य है। हमारा ही नहीं, संसार के गण्य-मान्य विद्वानो का सिद्धान्त है कि संसार मे ईसा, दयानन्द और बुद्ध जैसी आत्माओं का आविर्भाव उस समय हुआ करता है, जब देश को उनकी आवश्यकता होती है। यही बात इति-

हास के पृष्ठों को उलटने से भी मिलती है। जब-जब किसी ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया है, उससे पहले देश में धर्म और आचार का ह्रास था, उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी और श्रीकृष्ण के कथनानुसार उस दुष्कृत के नाश के लिए इस प्रकार के महापुरुषों को जन्म लेने की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए इन महात्माओं के चरित्र-लेखन के साथ देश की पूर्व-परिस्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है; और आज तक संसार में जितने इस प्रकार के चरित्र लिखे गए उनमें यह अंश अवश्य चित्रित किया गया है, परन्तु ईसा के चरित्र पढ़ने के साथ ही यह कमी सबसे पहिले खटकती है। ऐसा मालूम होता है कि उसके लेखकों ने इसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया। इसीलिए ईसा के चारों जीवन-वृत्तान्तों में उनके जन्म के पहले देश की क्या परिस्थिति थी, इस विषय पर बिल्कुल भी प्रकाश नहीं डाला गया। हाँ, निकोलस नोटोविच ने तिब्बत के पुस्तकालय से ईसा का जो जीवन-चरित्र खोज कर निकाला है, उसमे थोड़ा सा प्रकाश इस विषय पर भी डाला गया है। इस विवरण को देख कर ईसा के कार्य का महत्व समझने में कुछ सरलता होगी, इसलिए हम उसे यहाँ उद्धृत कर देना चाहते हैं :—

7. Strangers invaded Israel devastated the land, destroyed the villages, and carried their inhabitants away into captivity.

8. At last came the Pagans from over the sea, from the land of Romeles. These made themselves masters of the Hebrews, and placed over them their army chiefs, who governed in the name of Ceasar.

9. They defiled the temples, forced the inhabitants to cease the worship of the indivisible God, and compelled them to sacrifice to the heathen gods.

11. The children were slain, and soon, in the whole land, there was naught heard but weeping and lamentation.

12. In this extreme distress, the Israelites once more remembered their great God, implored his mercy and prayed for his forgiveness. Our Father, in his inexhaustible clemency, heard their prayer.

The unknown life of Jesus Christ, III.

७—विदेशी लोग इस्राइलों के देश पर चढ़ आए और उसको लूट-खसोट कर गाँवों को उजाड़ दिया और रहने वालों को क़ैद कर ले गए।

८—एक बार समुद्र पार रूम देश के मूर्ति-पूजक आए

और उन्होंने इस्राइलों पर विजय प्राप्ति करके अपने सेना-पति उन पर नियुक्त किए, जो सैकर राजा के नाम पर राज्य करते थे।

९—उन्होंने तमाम मन्दिरों को तोड़ डाला और इस्राइलों को निराकार की पूजा से रोका, और अपने देवताओं पर बलि चढ़ाने के लिए मजबूर किया।

११—अब शेष रहे बच्चे, उनको मार डाला और थोड़े ही समय में इस्राइलों के देश में सिवाय रोने-पीटने के कुछ न सुनाई दिया।

१२—इस कठिन समय मे लोगों ने अपने परमात्मा को याद किया, और उसके दया और करुणा के प्रार्थी हुए। उस सच्चे बाप ने प्यार की दृष्टि से उनकी प्रर्थना को स्वीकार कर लिया। परमात्मा ने इस्राइल लोगों की प्रार्थना सुनी और उसने स्वयं अपने पुत्र को ईसा के रूप में उन्हे इस परिस्थिति से छुड़ाने के लिए भेजा।

ईसा का जन्म

महात्मा ईसा का जन्म और उनकी मृत्यु दोनों ही जटिल समस्याएँ हैं। उनके सुलझाने मे बड़े-बड़े दिमाग लगे हैं, परन्तु अब तक कोई निश्चित हल निकलता नहीं दिखाई देता। चर्च की प्रसिद्धियो और जीवन-वृत्तान्तों के अनुसार महात्मा ईसा का जन्म एक क्वॉरी के गर्भ से

हुआ है। उनकी माता का नाम मरियम था। माता अभी क्वाँरी ही थी, परन्तु उसकी मॅगनी यूसुफ के साथ हो चुकी थी। यूसुफ जात का बढ़ई था और उसकी माली हालत भी कुछ अच्छी न थी। जब शादी का समय नज़दीक आया तो यूसुफ को मालूम हुआ कि मरियम तो पहले ही से गर्भवती है। ऐसी अवस्था मे कोई भी मनस्वी पुरुष उस स्त्री को स्वीकार करने को तैयार न होगा और यूसुफ ने भी वही किया, जो ऐसी स्थिति मे कोई दूसरा व्यक्ति करता। मैथ्यू ने लिखा है :—

"तब उसके स्वामी ने, जोकि एक धर्मात्मा पुरुष था, और मरियम को प्रकट रूप से कलङ्कित न करना चाहता था, उसे चुपचाप त्याग देने का निश्चय किया।"

—मैथ्यू १-१६

इसके आगे मैथ्यू का कहना है कि रात को स्वप्न मे ख़ुदा के फरिश्ते ने यूसुफ को दर्शन दिए और उसे समझाया कि—

"हे दाऊद के वंशज यूसुफ, तू अपनी स्त्री मरियम को अपने यहाँ लाने में सङ्कोच मत कर; क्योकि वह, जो उसके गर्भ में आया है, लौकिक नही, पवित्र आत्मा का अंश है—मरियम पवित्रात्मा द्वारा गर्भवती हुई है।"

—मैथ्यू १-२१

दैवी वाणी थी, यूसुफ उस पर सन्देह न कर सका।

उसने देवदूत की आज्ञा के आगे सर झुका दिया। मरियम और यूसुफ अब दम्पति के रूप में रहने लगे। कुछ दिन बाद समय पाकर मरियम का गर्भ पूरा हुआ, और उससे एक सुन्दर लड़का पैदा हुआ। यूसुफ ने देवदूत के आदेश के अनुसार ही बच्चे का नाम ईसा (Jesus) रक्खा। ईसा का जन्म-स्थान मैथ्यू के अनुसार बैतलहम (Bathlehem) नगर था।

दूसरे परिच्छेद में मैथ्यू ने लिखा है कि जिस समय ईसा पैदा हुआ, उस समय पूर्व में एक उज्ज्वल तारा चमका और पूर्वीय ज्योतिषियों ने उसका अर्थ यह लगाया कि यह यहूदियों के राजा के पैदा होने का चिह्न है। यही सोच कर बहुत से ज्योतिषियो का मण्डल उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हिरोद (जोकि उस समय बादशाह था) के यहाँ आए। जब बादशाह को सारी घटना मालूम हुई, तो उसे बड़ी चिन्ता हुई—यह नया यहूदियो का राजा कहाँ से पैदा हो गया? उसने मन में क्राइस्ट को खत्म कर देने की ठानी और ज्योतिषियों से कहा कि उसे ढूँढ़ कर मुझे भी बतलाना, ताकि मैं भी उसके दर्शन कर सकूँ।

इधर देवदूत ने यूसुफ को स्वप्न मे बैतलहम नगर छोड़ कर मिश्र भाग जाने का आदेश दिया, ताकि ईसा की प्राण-रक्षा हो सके, और इधर स्वप्न मे ही इन ज्योतिपियो से कहा कि तुम हिरोद के पास न जाकर किसी दूसरे रास्ते से अपने

देश लौट जाओ। यूसुफ और ज्योतिषियों दोनो ने दैवी आदेश का पालन बड़ी प्रसन्नता से किया।

जब हिरोद ने देखा कि ज्योतिपियो ने मेरे साथ धोखे-बाजी की है, तो उसने ईसा के जन्म से अब तक जितना समय हुआ था, उतनी उम्र के देश भर के सारे बच्चे मरवा डाले, परन्तु ईसा वहाँ न था, उसकी तो स्वयं परमात्मा—देवदूत—रक्षा कर रहे थे, फिर हिरोद कहाँ तक पार पा सकता था।

अन्त में हिरोद की मृत्यु के बाद उसी देवदूत ने स्वप्न मे यूसुफ को अपने देश लौट जाने की अनुमति दे दी। परन्तु यूसुफ बैतलहम न जाकर नैजरथ नामक नगर मे चला गया।

मैथ्यू-लिखित महात्मा ईसा के चरित्र के प्रथम तीन परिच्छेदो का कथांश इतना ही है। अगर इस विवरण मे से मुख्य-मुख्य घटनाओ को चुना जाय, तो वह संख्या मे चार होगी :—

(१) क्वाँरी मरियम के गर्भ से डेविड के वंश में, बैतलहम नगर में ईसा का पैदा होना।

(२) ज्योतिषियों को तारा दीखना।

(३) हिरोद का अत्याचार।

(४) यूसुफ का बैतलहम से भाग कर मिश्र और मिश्र से लौट कर नैजरथ में रहना।

देखने में बातें छोटी और साधारण सी प्रतीत होती है, मगर इनमें एक-एक के भीतर बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। इनमें एक-एक के ऊपर दर्जनों पृष्ठ लिखे जा सकते हैं। परन्तु हम यहाँ संक्षेप में ही उनकी कुछ आलोचना करने का यत्न करेंगे।

कुमारी मरियम और ईसा

ऊपर लिखे गए चारो विभागो मे से पहले विभाग को तीन भाग मे विभक्त किया जा सकता है :—

(क) ईसा का बैतलहम नगर में पैदा होना।

(ख) ईसा का क्वाँरी के गर्भ से पैदा होना।

(ग) ईसा का डेविड के वंश मे पैदा होना।

(ख) मैथ्यू ने ईसा-जन्म के इस भवन को जिस नीव पर खड़ा किया है, वह इतनी अधिक कमज़ोर है कि समालोचना के एक साधारण से धक्के को भी सहन नही कर सकती। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते हैं कि मैथ्यू ने अपनी इस चेष्टा के सहारे सचमुच इतिहास की हत्या कर डाली है। ईसा का बैतलहम नगर में और डेविड के खान्दान में पैदा होना ऐतिहासिक सचाई नहीं, वह केवल मैथ्यू के दिमाग में घूमने वाले मसीहाई भूत के करिश्मे हैं। हमने लिखा था कि मैथ्यू-लिखित ईसा के जीवन-वृत्तान्त मे आदि से अन्त तक एक ही भावना काम करती नज़र आती है,

और वह है ईसा को मसीहा सिद्ध करने की धुन। मैथ्यू के प्रथम परिच्छेद से ही उनके इस विचार की झलक दिखाई देने लगती है।

क्वाँरी मरियम के गर्भ से ईसा की पैदाइश का समर्थन करते हुए वह लिखते हैं :—

"यह सब इसलिए हुआ कि परमात्मा ने भविष्य-वक्ता के द्वारा जो भविष्य-वाणी की, वह पूरी होवे कि देखो क्वाँरी गर्भवती होगी, और वह पुत्र पैदा करेगी, जिसका कि नाम ईमानुअल रक्खा जावेगा। ईमानुअल का अर्थ है—ईश्वर हमारे साथ।"

—मैथ्यू १।२२-२३

इन पंक्तियों को लिखते हुए मैथ्यू प्राचीन अहदनामे की एक भविष्य-वाणी की ओर इशारा कर रहे हैं, जोकि 'इशाह' नामक पुस्तक के ७ वें परिच्छेद में १० से १६ तक आई है। उनका अपना ख़्याल है कि यह एक भविष्य-वाणी थी, जिसका सम्बन्ध मसीहा के साथ था, और वह ईसा के जन्म के साथ पूरी हुई, इसलिए ईसा मसीहा था। लेकिन अगर हम उन पंक्तियों की, जिनकी तरफ़ कि मैथ्यू इशारा कर रहे हैं, भली-भाँति परीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनका मसीहा या ईसा के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। उस प्रकरण में लिखे हुए असली शब्द यह हैं :—

"इसलिए परमात्मा ने एहाज़ से कहा, देखो क्वाँरी गर्भ-

वती होगी, उसके लड़का होगा और उसका नाम ईमानुअल रक्खा जावेगा। पूर्व इसके कि बच्चा कुछ भले-बुरे की पहिचान कर सके, उस देश को जिससे कि तुम घृणा करते हो, दोनों राजा छोड़ देंगे।"

—यशायाह ७।१०-१६

इस भविष्य-वाणी का ईसा या मसीहा के साथ कहाँ तक सम्बन्ध है। इसके लिए हम ग्रेग महाशय की सम्मति उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं। उन्होंने लिखा है:—

"प्रकृत भविष्यद्वाणी सिर्फ अविश्वासी एहाज़ को इस बात का विश्वास दिला रही है कि पूर्व इसके कि यशायाह की स्त्री से पैदा हुआ बच्चा बड़ा होकर बोलने और समझने लायक हो, जूडिया के राजा के विरुद्ध सीरिया और ईफ्रे का षड्यन्त्र खुल जायगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ईसा के साथ इसका इतना ही सम्बन्ध कहा जा सकता है, जितना कि नैपलियन के साथ।"

—क्रीड ऑफ़ क्रिश्चियनडम, पृ० ७४

अर्थात् इस प्रकरण का ईसा या मसीहा के साथ कोई सम्पर्क नहीं। फलतः ऐसा प्रतीत होता है कि मैथ्यू ने इस बात को देखते समय पूर्वापर प्रसङ्ग को विचारने का ज़रा भी कष्ट नहीं उठाया है। यह प्रकरण आवश्यकता से अधिक स्पष्ट है। साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि उसका ईसा के साथ सम्बन्ध करना कहाँ तक उचित

है, मगर मैथ्यू की आँखो पर मसीहाई रङ्ग का चश्मा लगा हुआ था, उन्हें हर जगह मसीहा ही नजर आता था, इसीलिए जबरदस्ती खींचातानी करके उन्होंने 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाला हिसाब पूरा कर दिया। न जाने किस प्रकरण के शब्द उठा कर और उन्हे मसीहाई रङ्ग में रँग कर बेचारे ईसा के मत्थे मढ़ दिए हैं। उन्हे तो सिर्फ इतना ही मिलना चाहिए था कि ईसा काँरी के गर्भ से पैदा हुआ है, और प्राचीन अहदनामे की पंक्तियो मे लिखा भी था—"काँरी गर्भवती होगी और उसके लड़का पैदा होगा!" बस फिर क्या था, मैथ्यू महाशय को अपना मनोरथ पूरा करने का मौका हाथ लग गया। उन्होंने अपने मनोरथ के साथ ही भविष्य-वाणी को भी पूरा कर डाला, और ईसा के मत्थे मसीहा की मुहर भी ठोंक दी।

इसी प्रसङ्ग में हम एक बात और लिख देना चाहते है। ईसा के कट्टर द्वेषी और मजहबी पक्षपात वाले सङ्कीर्ण विचार के लोग, ईसा-जैसे उच्च चरित्र के व्यक्ति को, केवल उनकी इस जन्म-घटना के कारण, जिसमे उनका कोई वश न था, जिन बुरे शब्दो में याद करते हैं उनको सुन कर दुःख होता है। ईसा का चरित्र श्रद्धेय है, उसके ऊपर सुदूरवर्ती घटना—जन्म—जिसका उनके व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं, के कारण दोष लगाना सिर्फ मजहबी तआस्सुब का नमूना है। इस प्रकार के सङ्कीर्ण विचार, उदार और शिक्षित शिक्षा-

सूत्रधारी लोगों से सुन कर आश्चर्य होता है। हमारा समझ में इस प्रकार के उज्ज्वल चरित्रों पर विचार करते हुए हमें अङ्गरेज़ी भाषा के कवि की इस प्रसिद्ध सूक्ति को सदैव अपनी दृष्टि में रखना चाहिए :—

"If pure is the stream it matters not from whence it floweth."

गङ्गा की निर्मल जल-धारा सामने बह रही है, एक प्यासे व्यक्ति को पानी की आवश्यकता है, मगर वह यह सोच कर कि यह धारा न जाने कहाँ-कहाँ से बह कर आई है, उसका पानी नहीं पीता। ऐसे आदमी को सिवाय 'सुकुमार-मति' के और क्या कहा जा सकता है? ठीक यही अवस्था ईसा के उज्ज्वल चरित्र को कलङ्कित करने वाले लोगों की है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में भी इस प्रकार के उदाहरण मिल जावेंगे। महाभारत के कर्ण और बाइबिल के ईसा की पैदाइश मे कोई अन्तर नहीं है। भारत-सम्राट्, धर्मराज युधिष्ठिर की माता महारानी कुन्ती के ऊपर भी वही दोष ज्यों का त्यों लगाया जा सकता है, जो महात्मा ईसा की माता मरियम पर लगाया जाता है। सम्भव है, युधिष्ठिर, कर्ण और कुन्ती को इस दोष से बचाने के लिए उनके समर्थक लोग सूर्यदेवता का आश्रय लेने की चेष्टा करें, परन्तु हमारी समझ मे इस प्रकार दैवी दुहाई की कल्पना पीछे से सिर्फ दोष छिपाने

के लिए की जाती है। 'महाभारत' के लेखक ने भी इसी प्रकार की कल्पना करके ही कुन्ती को इस दोष से बचाने की चेष्टा की है और बाइबिल के लेखक की 'पवित्रात्मा' की कल्पना का उद्देश भी सिर्फ इतना ही है कि मरियम और ईसा को इस दोष से बचा लिया जाय। परन्तु हमारी समझ से इस प्रकार की चेष्टा के बजाय इसका सबसे अच्छा समाधान वह है, जोकि 'श्रीभट्टनारायण' के कर्ण ने किया है। 'भट्टनारायण' संस्कृत के गिन-चुने कवियों में से हैं, 'वेणीसंहार नाट्य' उनकी क़लम से निकला हुआ एक प्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक के तीसरे अङ्क की बात है, द्रोण का बध हो जाने के बाद दुर्योधन के सामने अश्वत्थामा और कर्ण में विवाद हो रहा है। बातों ही बातों में मामला आवश्यकता से अधिक बढ़ गया। अश्वत्थामा ने कर्ण के जन्म के सम्बध में एक ताना मारा—

जातोऽहं स्तुतिवंश कीर्तनविदां किं सारथीनां कुले,
"क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत् ?

"क्या मैं तेरी तरह स्तुति, वंश-कीर्तन करने वालों के वंश में पैदा हुआ हूँ, जो क्षुद्र शत्रु के किए अपकार का प्रतिकार आँसुओं से करूँ ?"

यह उलाहना-मात्र ही न था, इसके भीतर बड़ा गहरा व्यङ्ग छिपा था। अश्वत्थामा का आघात बड़ा मार्मिक था।

कर्ण वस्तुतः महारानी कुन्ती का पुत्र था, परन्तु उसका

जन्म कुन्ती के विवाह से पहले हुआ था। अपने को लोकापवाद से बचाने के लिए कुन्ती ने उसी समय उसका परित्याग कर दिया था। शैशवावस्था से ही मातृ-परित्यक्त कर्ण का पालन-पोषण एक सूत—सारथी—ने किया था, इसलिए कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते थे। आज अश्वत्थामा ने कर्ण को उसी सूत-वंश के रूप में उलाहना दिया था। इस धार्मिक आघात से कर्ण का हृदय व्यथित हो उठा। अश्वत्थामा की इस उक्ति का कर्ण ने जो उत्तर दिया है, वह स्मरणीय है। कर्ण कहता है :—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तन्तु पौरुषम्॥

अर्थात्—"मैं सूत हूँ या सूत-पुत्र हूँ, जो कुछ हूँ सो हूँ, उसमें मेरा क्या वश? जन्म देना तो परमात्मा के हाथ था, जहाँ उसने चाहा, पैदा हो गया। परन्तु हाँ, अब पुरुषार्थ मेरे हाथ में है।"

ठीक यही बात महात्मा ईसा के चरित्र के सम्बन्ध में है। उनकी पैदायश किस ढङ्ग से हुई, इस बात की विशेष चिन्ता न करके हमें उनके उज्ज्वल चरित्र का अनुकरण करना चाहिए।

दाऊद और ईसा

ईसा के चरित्र-चित्रण में मैथ्यू ने दूसरा कार्य यह किया है कि उसे ले जाकर डेविड के ख़ान्दान से जोड़ा है। अपने

इस कार्य को पुष्ट करने के लिए उन्होंने प्रथम परिच्छेद के १७ चरण (Verses) ख़राब किए हैं। इनमे मैथ्यू ने डेविड से लेकर ईसा तक की सारी पीढ़ियो का उल्लेख किया है, लेकिन हमारी समझ में इन १७ चरणो को ख़राब करने के बाद भी मैथ्यू अपने प्रयत्न में पूर्णतया असफल रहे हैं। इसमें सन्देह नही, इस प्रकार ४२ पीढ़ियो की वशावली गिना कर उन्होंने यूसुफ को डेविड के खान्दान से मिला दिया है। परन्तु उनका ध्येय तो ईसा को डेविड का वंशज सिद्ध करना था। हाँ, अगर ईसा यूसुफ का आत्मज होता, तब तो सम्भव था कि उनका यह सारा प्रयत्न कुछ कारगर हो जाता, परन्तु इस बात को मानने के लिए स्वय वह भी तैयार नहीं। वह स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि मरियम के यूसुफ से गर्भ नहीं रहा, बल्कि उस गर्भ का कारण कुछ और ही है, जिस पर मुलम्मा चढ़ाने के लिए मैथ्यू लिखते हैं :—

"That which is conceived in her is of the holy ghost."

फलतः ईसा का डेविड के खान्दान के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह जाता, और मैथ्यू ने जिसके लिए इतना प्रयत्न किया, वह सारी बनी-बनाई बात बिगड़ गई।

सम्भवतः पाठकों के दिल हमारी इस उक्ति के प्रति, कि मैथ्यू ने जबरदस्ती ईसा को ले जाकर डेविड के खान्दान

से जोड़ा है, कुछ सन्देह करें कि मैथ्यू को क्या ग़रज़ थी जो अपने दिमाग़ को इस प्रकार की फ़िज़ूल की कल्पनाओं में ख़र्च करते। इसका उत्तर हम दे चुके हैं। मैथ्यू के दिमाग़ में मसीहाई भूत घूम रहा था, इस प्रकार की सारी कल्पनाएँ उसी की उपस्थिति के परिणाम हैं।

ईसा वास्तव मे डेविड के ख़ान्दान का नहीं है, इसमें दो हेतु उसके अतिरिक्त, जोकि हम पहले लिख आए हैं, और दिए जा सकते हैं, और यह दोनो गॉस्पलस के लेखों में ही पाए जाते हैं। नवीन अहदनामे की चौथी पुस्तक सेण्ट जॉन की लिखी समझी जाती है। इस पुस्तक के सातवें परिच्छेद की बात है, ईसा अपने पास इकट्ठी हुई जनता से कहता है :—

"शास्त्रीय विधान के अनुसार जो कोई मेरे ऊपर विश्वास करेगा, उसके भीतर से जीवन-रस की धारा फूट पड़ेगी।"

पैग़म्बरी ज़माने की उस जद्दो-जहद में इस प्रकार की उक्ति को सुन कर साधारण मनुष्यो का ध्यान मामूली तौर पर नबियों की ओर झुक जाना एक साधारण बात थी। इसलिए जब जनता ने ईसा के मुँह से यह शब्द सुने तो उसने ईसा को सचमुच नबी—मसीहा समझ लिया। मगर ईसा के उन श्रोताओं में कुछ पढ़े-लिखे और समझदार आदमी भी थे। उन्होंने पुराने अहदनामे को ध्यानपूर्वक पढ़ा था, और उन्हें इस समय भी अच्छी तरह याद था कि मसीहा

तो डेविड के ख़ान्दान में होगा। इसके साथ ही वह यह भी जानते थे कि ईसा डेविड के ख़ान्दान में नहीं है, इसीलिए उन्होने कहा—"क्या शास्त्रो में नहीं लिखा है कि क्राइस्ट डेविड के वंश में पैदा होगा? जब शास्त्रकार ऐसा लिख गए हैं, तब तुम लोग ईसा को मसीहा या पैग़म्बर समझ कर धोखे में क्यों पड़ते हो?"

इस प्रसङ्ग के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसा डेविड के वंश में उत्पन्न नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त स्वयं ईसा इस बात को स्वीकार करता है, और वह इस बात की आवश्यकता भी नहीं समझता कि मसीहा डेविड के ख़ान्दान में ही हो। हमें ईसा के मन का यह भाव तीनों ही (सिनाप्टिकल) गॉस्पल में देखने को मिलता है। देखो मैथ्यू २२-४१, मार्क १२-३५, ल्यूक २०-४५। तीनों ही लेखको ने भिन्न-भिन्न स्थलो पर इस घटना का उल्लेख किया है। हम मैथ्यू के परिच्छेद से सारे प्रसङ्ग को ज्यो का त्यों उद्धृत कर देना चाहते हैं :—

४१—जब फ़रीशी इकट्ठे हो रहे थे तो महात्मा ईसा ने उनसे पूछा।

४२—क्राइस्ट के विषय में तुम क्या समझते हो? वह किसका पुत्र है? उन्होंने जवाब दिया कि दाऊद का।

४३—उसने कहा कि तब डेविड की आत्मा ने उसे प्रभु कह कर क्यो सम्बोधित किया है?

४४—परमात्मा ने मेरे प्रभु से कहा कि मैं जब तक तेरे शत्रुओं को तेरे पैरों की पीढ़ी न बनाऊँ, तब तक तू मेरी दाहिनी ओर बैठ।

४५—अगर दाऊद उसे अपना प्रभु कहता है तो वह उस दाऊद का पुत्र कैसे हो सकता है ?

४६—इसके उत्तर में किसी के मुख से एक शब्द भी न निकल सका।

—मैथ्यू ४४ से ४६ तक

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि अगर ईसा डेविड का वंशज होता तो इस स्थल पर इतनी सफ़ाई देने का यत्न न करता। हम इन दोनों घटनाओं को देख कर इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि ईसा डेविड के ख़ान्दान में पैदा नहीं हुआ। मगर मैथ्यू फिर भी उसे जबरदस्ती खींच-तान कर डेविड के ख़ान्दान से मिलाने से बाज़ न आए। अन्त में परिणाम क्या निकला ? उनके अपने ही शब्दों ने उनके करे-धरे पर चौका फेर दिया।

हम कह चुके हैं कि मैथ्यू अपनी मसीहाई मसलहत के लिए इतिहास की हत्या करने पर कमर कस चुके हैं। उन्होंने ईसा को डेविड के ख़ान्दान से जोड़ कर उस पर गहरा वार किया है। मगर इससे भी पहले उनके उन सत्रह चरणों (Verses) में, जिन्हें उन्होने वंशावलि गिनाने में ख़राब किया है, उनकी इस मनोवृत्ति का परिचय दिखाई

देता है। हम नहीं कह सकते कि जान में या अनजान में, परन्तु यह एक सचाई अवश्य है कि मैथ्यू ने जो वंशावलि गिनाई है, उसमें भी वह भारी भूल कर बैठे हैं। लेख के अन्त में इस सारी वंशावलि का उपसंहार करते हुए वह लिखते हैं :—

"इस प्रकार इब्राहीम से दाऊद तक कुल १४ पीढ़ी और दाऊद से बैबलोन जाने तक १४ पीढ़ी और बैबलोन-गमन से ईसा तक १४ पीढ़ी है। इस प्रकार इब्राहीम से ईसा तक कुल ४२ पीढ़ी हुई। लेकिन अगर हम इसमें से बीच वाली श्रेणी का और लेखों से मिलान करें, तो हम देखेंगे कि उसमें से चार नाम बिलकुल साफ उड़ा दिए गए हैं। तीन नाम तो जैरोम और अजिया के बीच में छूट गए हैं, और चौथा जोसिआह और जैकोनिआह के बीच रह गया है। इसके अतिरिक्त ल्यूक ने भी अपनी पुस्तक में यह वंशावलि दिखाने का यत्न किया है। अगर मैथ्यू की वंशावलि को उससे मिलाया जाय तो उनमें आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई देगा। उदाहरण के लिए मैथ्यू ने डेविड और यूसुफ के बीच २६ पीढ़ियाँ दी हैं, मगर ल्यूक के अनुसार इन दोनों के बीच ४१ पीढ़ियाँ हो गई हैं। इस मोटे भेद के साथ अगर हम उनको नामवार मिलावें तो उसमें और भी भयानक अन्तर दिखलाई देगा। इस प्रकार की घटनाओं से सिवाय इसके और क्या परिणाम निकाला जा

सकता है कि मैथ्यू ने अपनी मसीहाई धुन के चक्कर में पड़ कर इतिहास के साथ घोर अन्याय किया है।

बैतलहम समस्या

ईसा के बाल-चरित्र में बैतलहम समस्या भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है। बड़े बड़े विद्वान् इसे हल करने का प्रयत्न कर चुके हैं, फिर भी इस विषय में सन्तोषजनक रीति से अब तक कोई निर्णय न हो सका। मैथ्यू-लिखित जीवन-वृत्तान्त के अनुसार ईसा के माता-पिता बैतलहम नगर के रहने वाले थे। वहीं उनके लड़का ईसा हुआ और देवदूत के आदेश के अनुसार वह पहले बैतलहम छोड़ कर मिश्र गए और फिर वहाँ से लौट कर नैज़रथ में रहे। परन्तु लूक के अनुसार ईसा के माता-पिता नैज़रथ में ही रहते थे। मैथ्यू ने लिखा है :—

"अब, जब कि हिरोद बादशाह के राज्य मे जूड़िया के बैतलहम नगर में ईसा पैदा हुआ...... ।"

—मैथ्यू २-१

लूक का कहना है :—

"छठे महीने परमेश्वर की ओर से जिबराईल स्वर्गदूत गैलील के नैज़रथ नगर मे एक क्वाँरी के पास भेजा गया, जिसकी मँगनी यूसुफ़ नामक दाऊद के वंशज से हुई थी। उस क्वाँरी का नाम मरियम था।"

—लूक २६-२७

जो कुछ भी हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मैथ्यू के पास अपने सिद्धान्त के समर्थन के लिए कोई युक्ति नही। इसके विरुद्ध उनके विपक्ष में स्वयं गॉस्पल से ही अनेक युक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है। फिर भी मैथ्यू के इस बात के लिखने का विशेष हेतु है, और वह हेतु वही है जिसका उल्लेख कि हम पहले भी कर आए है। पुराने अहद-नामे की पुस्तको में मैथ्यू ने निम्न पंक्तिश्राँ पढ़ीं, जिनके अनुसार मसीहा का वैतलहम नगर में पैदा होना सिद्ध होता है। इन पंक्तियों और ईसा पर मैथ्यू का मसीहाई विश्वास, इन्हीं दोनो ने मिल कर मैथ्यू के दिमाग़ में इस प्रकार की कल्पनाओ की सृष्टि की :—

"हे बैतलहम, एफ्राता, तू ऐसा छोटा है कि जूडिया के हज़ारो में भी नहीं गिना जाता, तो भी तुझमे से मेरे लिए एक पुरुप निकलेगा, जो इस्राइलों में प्रभुता करने वाला होगा।"

—मीका ५२

सिवाय इन पंक्तियों के हमें और कोई बात मैथ्यू के मत की समर्थक दिखाई नहीं देती। मगर एक निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से हम मैथ्यू की पंक्तियों पर विश्वास करने को तैयार नहीं, क्योंकि वह ईसा का नहीं, बल्कि ईसा के रूप मे मसीहा का चरित्र लिखने बैठे हैं। उनकी आँखो पर मसीहाई चश्मा चढ़ा हुआ था, जिसने महात्मा ईसा के

असली चरित्र को मैथ्यू की दृष्टि से ओझल कर दिया है। वस्तुतः जिस समय जॉन ने अपना गॉस्पल लिखा, उस समय भी लोगों का विश्वास यही था कि ईसा बैतलहम में पैदा नहीं हुआ। जनता के इस विश्वास का पता जॉन के गॉस्पल की इन पंक्तियों से लगता है :—

"इसलिए भीड़ में से बहुत से आदमियों ने इन बातों को सुन कर कहा कि यह सचमुच नबी है। औरों ने कहा कि यह मसीह है, परन्तु कुछ लोग बोले कि मसीह क्या गलीली से आवेगा ?"

—जॉन ७। ४०-४१

क्या मसीहा गलीली में पैदा होगा, नहीं कभी नहीं :—

"क्या शास्त्रों में ऐसा नहीं लिखा है कि मसीहा डेविड के वंश में और बैतलहम नगर में, जहाँ कि डेविड रहता था, पैदा होगा ?"

—जॉन ४२

जॉन के गॉस्पल में इस विवाद को देख कर हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि उस समय भी लोगो का यही विश्वास था। ईसा बैतलहम में पैदा नहीं हुआ, बल्कि उसका जन्म-स्थान गलीली है। जॉन के कथन की पुष्टि लूक के गॉस्पल से भी होती है। भेद केवल इतना है कि जॉन ने सिर्फ गलीली का उल्लेख किया है, परन्तु लूक ने गलीली प्रदेश के स्थान-विशेष का भी निर्देश कर दिया है। फलतः

ईसा के माँ-बाप नैज़रथ या गलीली के रहने वाले थे, इसका समर्थन दो गॉस्पल-लेखक कर रहे हैं और मैथ्यू की कल्पना का खण्डन भी उन्हीं गॉस्पल के विवरणों से दिखाई देता है। साथ ही पुराने अहदनामे के देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मैथ्यू की कल्पना सिर्फ मसीहाई भूत का करिश्मा है। उन्हे अपनी बात रखने के लिए, अपनी इस कल्पना के कारण और भी कल्पनाएँ करनी पड़ी हैं। मैथ्यू अपने ईसा को फिर लौटा कर नैज़रथ लाए हैं। उनकी इस चेष्टा का कारण अगर हम ढूँढें तो किसी न किसी रूप मे पुराने अहद-नामे में देखने को मिल जावेगा। जिस समय मैथ्यू लिख रहे थे 'वह आया और नैज़रथ नाम से प्रसिद्ध स्थान पर बस गया" उस समय उनकी दृष्टि मे 'न्याय-पुस्तक' के परिच्छेद ५-१२ की यह पंक्ति घूम रही थी—"The child shall be Nazarite." अर्थात् लड़का नैज़रथ मे होगा।

उनका अपना ख्याल था कि यह पंक्तियाँ मसीहाई विशेषता की द्योतक थीं। उनके इस भ्रम ने ही यूसुफ और ईसा को दौड़-धूप में परेशान कर रक्खा है। कभी बैतलहम से भगा कर मिश्र पहुँचाया और फिर मिश्र से भगा कर नैज़रथ में ला पटका। वास्तव में इन पंक्तियों मे कोई भविष्य-वाणी है ही नहीं। 'क्रीड ऑफ क्रिश्चियएडम' नामक पुस्तक के लेखक ने इस प्रसङ्ग की आलोचना करते हुए लिखा है :—

A still more unfortunate instance is found at the 23rd verse, where we are told that Joseph abandoned his intention of returning into Judea, and turned aside into Galilee and came and dwelt at Nazareth. "That it might be fulfilled which was spoken by the prophets, he shall be called a Nazarene." Now in the first place, the name Nazarene was not in use till long afterwards; secondly, there is no such prophecy in the Old Testament. The evangelist, perhaps, had in his mind the words that were spoken to the mother of Samson (*Judges XIII 5*) respecting her son. "The child shall be a Nazarite (*i.e.* one bound by a vow whoso hair was forbidden to be cut, which never was the case with Jesus) to God from the womb."

Creed of Christendom, pp 75.

इससे भी अधिक कमज़ोर उक्ति लेखक के २३ वें चरण में पाई जाती है, जिसमें लिखा है कि यूसुफ़ ने जूडिया लौटने का अपना विचार छोड़ दिया और गलीली में जाकर नैजरथ में रहने लगा, जिससे भविष्य-वक्ता द्वारा की गई वह भविष्य-वाणी पूर्ण हो कि बच्चा नाज़री कहलाएगा।

इसमें सबसे पहली बात तो यह है कि ईसा का नाज़री नाम बहुत दिन तक नहीं कहलाया, दूसरे पुराने अहदनामे मे इस प्रकार की कोई भविष्य-वाणी नहीं पाई जाती। सम्भवतः इस समय लेखक की दृष्टि मे वह शब्द बैठे हुए हैं, जोकि न्यायियों की पुस्तक जजज़ (Judges) के १३ वे परिच्छेद मे आए हैं और सैमसन की माता से उसके पुत्र के सम्बन्ध मे कहे गए हैं कि वह जन्म से ही परमेश्वर का नाजरी होगा। लेखक के इस कथन की पुष्टि इस प्रकरण का पूर्वापर देखने से बड़ी सुन्दरता के साथ होती है। बालक नाज़री कहलाएगा, इसका कारण भी बाइबिल स्वयं बतलाती है :—

"देख, तू गर्भवती होकर एक पुत्र पैदा करेगी, उसके सर पर कभी उस्तरा न फिरे, क्योकि बालक जन्म से ही नाज़री कहलाएगा।"

—जजज़ १३-५

उपरोक्त पंक्तियो के देखने से मालूम पड़ता है कि वह व्यक्ति, जिसके सर पर उस्तरा न फिरे, नाजरी कहलाता है, न कि नैज़रथ में रहने वाले का नाम नाज़री हो। परन्तु मैथ्यू ने इतनी स्पष्ट पंक्तियों को देखते हुए भी न जाने किस धुन में ईसा को मिश्र से नैज़रथ में ला पटका। एक निर्मूल मसीहाई कल्पना के समर्थन के लिए मैथ्यू को इस प्रकार की न जाने कितनी मिथ्या कल्पनाओं की सृष्टि करनी पड़ी है।

अभी पिछली पंक्तियों मे मैथ्यू-लिखित ईसा-वृत्तान्त के प्रथम तीन परिच्छेदों की ४ मुख्य घटनाओं का उल्लेख हम कर चुके हैं। इनमें से पहली और चौथी की आलोचना ऊपर की पंक्तियो में हो चुकी है, शेष दूसरे और तीसरे प्रश्न भी उसी प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, उनके सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ आगे लिखेंगे।

तारा-दर्शन

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, इस प्रकार की सारी घटनाओ की अवतारणा करते समय मैथ्यू के दिल में मसीहाई भूत का राज्य है। मैथ्यू लिखते हैं कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ, उस समय पूर्व से बहुत से ज्योतिषी जरूसलम आए और उन्होंने कहा कि यहूदियों का बादशाह, जोकि अभी पैदा हुआ, कहाँ है? क्योकि पूर्व में हमने उसका सितारा देखा था और हम उसके दर्शन करने के लिए आए हैं।

लेखक ने अपनी दृष्टि में इस घटना की अवतारणा किसी खास उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर की है। मगर अपने प्रयास के द्वारा वह जिस समस्या का हल करना चाहते थे, वह इस झञ्झट में पड़ कर और उलझ गई है। मैथ्यू की यह घटना विचारकों के सामने स्वयं एक जटिल समस्या बन गई है।

जिस समय ईसा पैदा हुआ, उस समय हिरोद नाम का एक अत्यन्त अत्याचारी राजा राज्य करता था। भारतीय इतिहास में इसकी तुलना मथुरा के राजा कंस के साथ की जा सकती है। मैथ्यू के अनुसार ईसा के जन्म से पहले जूडिया एक अत्याचारी राजा द्वारा शासित होता है, उसी प्रकार कृष्ण के जन्म से पहले मथुरा एक अत्याचारी राजा द्वारा शासित होता है। फिर भी दोनों जगह की प्रजा की मनोवत्ति में भेद मालूम पड़ता है। कृष्ण के जन्म के समय तमाम प्रजा सुखी हुई है, मगर जरूसलम मे ज्योतिषियो द्वारा ईसा का जन्म-वृत्तान्त जिस समय पहुँचा, उस समय मैथ्यू लिखता है कि हिरोद बड़ा दुःखी हुआ और उसके साथ ही सारा जरूसलम दुःखी हुआ। यह विवरण बड़ा ही विचित्र मालूम होता है। पहली जगह हिरोद दुःखी हुआ, यह ठीक है, उसके दुःखी होने की बात थी। उसकी बादशाहत पर हमला हो रहा था, उसके लिए उसे क्रोध, चिन्ता और दुःख, जो कुछ भी हो सब सङ्गत, उपयुक्त और स्वाभाविक है। यद्यपि हिरोद अत्याचारी राजा था, परन्तु शास्त्रीय बातो पर उसका एकदम अविश्वास न था। इसीलिए वह ज्योतिषियों की बात को हँसी में न टाल सका। उसने उस पर गम्भीरता के साथ विचार किया और उसी विचार एवं विश्वास के परिणाम में वह दुःखी हुआ। यहाँ तक तो बात ठीक है, उसके समझने में कोई अड़चन नहीं

पड़ती, मगर इसके आगे क़दम उठाते झिझक मालूम पड़ती है। जरूसलम के निवासियों को दुःखी होने की कौन सी बात थी ? उनको तो प्रसन्न होना चाहिए था, क्योंकि उनका क्राइस्ट मसीहा पैदा हुआ था। उनका तो वह बादशाह पैदा हुआ था, जिसकी Worship (पूजा) करने के लिए पूर्व के बड़े-बड़े ज्योतिषी, विद्वान् आए थे, जिसकी शुभ जन्म-सूचना के लिए स्वयं परमात्मा ने एक उज्ज्वल सितारा चमकाया था। फिर यह असमय में वृष्टि कैसी ? हँसने की जगह रोना क्यो ? कुछ समझ में नहीं आता। मालूम पड़ता है कि इस जगह मैथ्यू कुछ गड़बड़ा गए हैं।

दूसरी विचित्र बात जो इस प्रकरण में दिखाई देती है, वह इससे भी अधिक मजेदार है। वह तारा, जोकि पूर्व से चलते समय ज्योतिषियो ने देखा था, जरूसलम पहुँचते-पहुँचते छिप चुका था। इसीलिए बेचारे उन ज्योतिपियो को जरूसलम में इतनी दिक़्क़तें उठानी पड़ीं। इसलिए वहाँ रुक कर उन्हे पूछना पड़ा :—

"वह कहाँ है, जो यहूदी नरेश के रूप में पैदा हुआ है ?"

इसी पूछ-ताछ के बीच हिरोद से उनकी बातचीत हुई है, और बादशाह—अत्याचारी हिरोद—के साथ बातचीत करने के बाद वह बिदा हुए तब—

"वह सितारा, जोकि उन्होंने पूर्व में देखा था, उनके आगे-आगे चल दिया है।"

"आखिरकार वह उस घर के ऊपर, जिसमें कि ईसा था, आकर खड़ा हो गया।"

यह सब परमात्मा की महिमा थी। जब स्वयं परमात्मा सितारा के रूप में उन्हें गाइड कर रहा था, तब जरूसलम मे उनके रुकने की क्या ज़रूरत थी ? इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो उस जगह आकर सितारा दीखना बन्द हो गया और या फिर वह वहीं खड़ा हो गया। दोनों ही अवस्थाएँ हमारे जिज्ञासु हृदय में एक प्रकार की उत्सुकता पैदा कर देती हैं। जबकि सितारे का उद्देश्य केवल ईसा के जन्म-स्थान को सूचित करना था तो वह असमय में क्यो रुका या क्यों दीखना बन्द हो गया ? इस घटना का एक स्पष्ट प्रभाव हमें दिखाई देता है, जो ईसा-चरित्र के साथ मिल कर उसे और भी उलझा देता है। प्रकृत कथांश पर इस घटना का असर स्पष्ट रूप से इतना ही पड़ता है कि ज्योतिषियों को हिरोद बादशाह से बातचीत करने का मौक़ा मिल जाता है, जो कि चलते-चलते हिरोद के दिल में एक प्रकार की आशङ्का और प्रतिहिंसा का बीज बो जाते हैं। इसका एक भयानक और अनिवार्य परिणाम यह निकला जिसका कि उल्लेख मैथ्यू के दूसरे परिच्छेद की १६ वीं आयत में करते हैं। हमारा विश्वास है कि अगर ज्योतिषियों को यहाँ जरूसलम में रोक कर बातचीत करने का मौक़ा न दिया जाता, तो वह भयानक हत्याकाण्ड बड़ी सरलता

के साथ रुक जाता। मगर मैथ्यू इतनी उदारता कैसे दिखा सकते थे। अगर वह ऐसा कर बैठते तो उनका सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता। उनकी 'राहेल' वाली भविष्य-वाणी कैसे पूरी होती ? ईसा-चरित्र को मसीहाई भविष्य-वाणियों के साथ जोड़ने की सनक मे आकर मैथ्यू ने इस प्रकार की न जाने कितनी निराधार कल्पनाओ की सृष्टि कर डाली है।

एक बात और है, जिसका उल्लेख हमे इस प्रकरण मे कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, वह है सितारे की निश्चिति। बहुत से पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार A conjunction of three stais Jupiter Saturn and Mars ही यह सितारा है, जोकि ल भग ६ या ७ बी० सी० में जरूसलम मे दिखाई दिया था। दूसरे विद्वानो के अनुसार यह सितारा वह है, जिसका कि उल्लेख चीनी ऐतिहासिको ने किया है, और जिसका समय लगभग ४ बी० सी० पड़ता है, लेकिन अगर गहरी दृष्टि से देखा जाय तो यह दोनों ही सितारे मैथ्यू के सितारे के प्रतिनिधि नहीं समझे जा सकते। इसका कारण मैथ्यू के सितारे की वह विशेषता है जिसका निर्देश हम पहले कर चुके हैं। मैथ्यू का सितारा बैतलहम पहुँचने के पहले ही रास्ते में दिखाई देना बन्द हो जाता है और जरूसलम से रवाना होने के साथ ही फिर दिखाई देने लगता है। यह एक ऐसी शर्त है, जो उस विशेप सितारे को छोड़ कर और

किसी सितारे में नहीं पाई जाती, दूसरी बात यह है कि दोनों ही सितारे ईसा के जन्म से पहले प्रकट हुए हैं। बहुत से विद्वान्, जो इस मत के समर्थक हैं, इसी असमञ्जस में पड़ कर ईसा के जन्मकाल को भी छै-सात वर्ष पीछे हटा ले जाते हैं।

हिरोद का अत्याचार

मैथ्यू लिखित ईसा के जीवन-वृत्तान्त में हिरोद का अत्याचार भी एक विचारणीय विषय है। लेखक ने इसकी पेशबन्दी बहुत पहले से शुरू की है। पूर्व से आए हुए ज्योतिषियों को जरूसलम में रोकना और हिरोद के साथ उनका वार्तालाप—इन सबकी अवतारणा का उद्देश्य हिरोद का अत्याचार ही है। अगर सितारे वाली कल्पना किसी हद तक सही मान ली जाय तो भी स्वाभाविकता और सरसता की दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि नजूमी जरूसलम न रोके जाकर सीधे बैतलहम पहुँचाए जाते। क्योंकि जो सितारा उनका पथ-प्रदर्शन कर रहा था, उसके अस्त होने, छिप जाने अथवा जरूसलम में रुक जाने का कोई हेतु दिखाई नहीं देता। परन्तु फिर भी मैथ्यू ने सरसता की हत्या करके नजूमियों को ज़रूसलम में ज़बरदस्ती रोका है और उनके द्वारा हिरोद को ईसा—यहूदियों के राजा—की उत्पत्ति का समाचार सुनाया है। इसका कारण वही मसी-

हुई भाव है। हिरोद ने इस खबर के सुनने के साथ ही दिल में ईसा को मिटा डालने की ठान ली। लेकिन यह वह समुद्र था, जिसकी गहराई का पता साधारण आदमी नहीं पा सकते थे। उसने नजूमियों से कहा कि—

"जाकर सावधानी के साथ उस बालक की खोज करो, और जब तुम उसे पा लो तो मुझे भी समाचार देना, ताकि मैं भी जाकर उसे प्रणाम कर सकूँ।"

यह भक्ति के भाव नहीं, बल्कि मधुरता के आवरण में छिपे हुए कपट के शब्द थे; उनके ऊपर मिठास था, मगर भीतर ज़हर भरा हुआ था। 'विष कुम्भं पयो मुखम्' का एक ही नमूना था। हिरोद ने अपने हार्दिक भावों के ऊपर ऐसा मुलम्मा चढ़ाया था कि मजाल क्या, जो कोई पहचान सके। मगर होनहार तो कुछ और ही थी, ईसा की रक्षा तो स्वयं परमात्मा कर रहे थे।

जाको राखै साइयाँ, मारि न सकिहै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

मानवीय बुद्धि ईश्वरीय शक्ति के आगे पार न पा सकी। ईसा साफ बच कर निकल गए। परमात्मा ने स्वप्न में नजूमियों को दूसरे रास्ते से अपने देश लौट जाने का आदेश दिया और इधर बेचारा हिरोद उनके लौटने की प्रतीक्षा में बैठा रहा। निराशा अन्तिम सीमा पर पहुँच कर क्रोध का रूप धारण कर लेती है। हिरोद के हृदय में क्रोध की

भयानक अग्नि भभक उठी। उसे ईसा के जन्म का लगभग ठीक समय मालूम था, बस फिर क्या था, शाही दरबार से एकदम नादिरशाही फ़रमान जारी हुआ—"बैतलहम के भीतर और आस-पास रहने वाले इतनी उमर के सारे बच्चों का कत्लआम कर दिया जावे।"

"हिरोद यह देख कर कि ज्योतिषियो ने मुझसे हँसी की है, अत्यन्त क्रोध में भर गया, और लोगो को भेज कर ज्योतिषियों से ठीक पूछे हुए समय के अनुसार बैतलहम और उसके आस-पास के सारे लड़कों को, जो दो वर्ष या उससे छोटे थे, मरवा डाला।"

—मैथ्यू २-१२

मैथ्यू की इस दुधारी तलवार ने इधर उन मासूम बच्चों की हत्या की और उधर इतिहास का कलेजा चाक कर डाला। अगर उस समय हिरोद ज़िन्दा होता और आजकल का अङ्गरेज़ी क़ानून जारी होता, तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि मैथ्यू को इस मानहानि के लिए सज़ा भुगतनी पड़ती। हिरोद राजा था, उसके हाथ में शक्ति थी, उसकी प्रकृति कठोर थी, यह सब कुछ सम्भव है। मगर फिर भी वह इतना निर्दय और अत्याचारी न था कि सिर्फ एक कल्पना—जिसकी सचाई का विशेष भरोसा नहीं—के आधार पर हज़ारों मासूम बच्चों को बुरी तरह हलाल करवा डालता।

मैथ्यू द्वारा लिखी गई इस घटना में सचाई का अंश ज़रा भी नहीं है। मैथ्यू के अतिरिक्त और बहुत इतिहास-लेखक ऐसे हुए हैं, जिनकी बात का लोहा आज भी संसार मान रहा है। उन्होंने हिरोद के राज्य का उल्लेख भी किया है और उसके वर्णन में काफी समय और स्थान भी व्यय किया है, मगर फिर भी उनके लिखे हिरोद के इतिहास में इस प्रकार की किसी अमानुषिक घटना का उल्लेख नहीं मिलता। इस कोटि के इतिहास-लेखकों में जोसीफस का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। उसने अपने इतिहास में हिरोद का वर्णन लिखने का काफी प्रयास किया है, और उसके लिए अपना समय, शक्ति और स्थान भी पर्याप्त रूप में व्यय किए है। मगर उसके लेख में इस घटना की बू नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त मैथ्यू के साथी तीन और भी 'इवेञ्जिलिस्ट' हैं। उनके विवरणों से भी यह घटना ग़ायब है, और न किसी इतिहास-लेखक ने इस विषय पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। ऐसी अवस्था में सिर्फ़ मैथ्यू के लेख के आधार पर इस प्रकार की अमानुषिक नर-हत्या का समर्थन करना इतिहास के साथ घोर अन्याय करना है। हम इस विचार की पुष्टि के लिए कुछ प्रसिद्ध आलोचकों की सम्मति उद्धृत कर देना भी आवश्यक समझते हैं :—

"Neander argues very ably that such a deed is precisely what we should expect from

the Herod's character. But Sir W. Jones gives reasons for believing that the whole story may be of Hindu origin

"The story is at least highly improbable, for had Herod wished to secure the death of Jesus so cunning a prince would have sent his messenger along with the Magi, not awaited their doubtful return."

Creed of Christendom

"नेन्दर ने बड़ी योग्यता के साथ इस बात का प्रतिवादन किया है कि हम हिरोद के चरित्र से जिस बात की आशा कर सकते हैं, यह घटना उसके सर्वथा अनुरूप है। परन्तु सर डब्ल्यू जोन्स ने घटना की हिन्दू उत्पत्ति के सम्बन्ध में युक्तियाँ उपस्थित की हैं।

"कम से कम यह उपाख्यान बिलकुल असङ्गत और असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हिरोद जैसा चतुर राजा ईसा को मारना ही चाहता तो वह उनके साथ अपने सन्देश-वाहक भेजता और उनके सन्दिग्ध प्रत्यागमन की प्रतीक्षा मात्र न करता।"

साथ ही इस घटना की अगर ज़रा गम्भीरता के साथ आलोचना की जाय तो हम देखेंगे कि इसकी अवतारणा करते समय भी मैथ्यू के दिल में वही भाव काम कर रहा है,

जिसके आवेग में वह पहले भी इस प्रकार की अनर्गल कल्पना कर चुके हैं। इस जगह भी उन्होंने अपने शब्दो को लिखने के साथ ही उन्हें भविष्य-वाणी के साथ मिलाने की चेष्टा की, और स्पष्ट लिखा है :—

"तब वह भविष्य-वाणी, जो जरमियाह नबी द्वारा की गई थी, पूरी हुई कि—

"रामा में एक शब्द सुनाई दिया—रोना और महान् विलाप। राहेल अपने बालकों के लिए रो रही थी और शान्त होना न चाहती थी, क्योंकि वह मिलते नहीं।"

—मैथ्यू २। १७-१८

अपनी इन पंक्तियों में मैथ्यू ने जिस भविष्य-वाणी की ओर निर्देश किया है, वह जरमियाह ३१-१५ में पाई जाती है, मगर उसके पूर्वापर प्रकरण की सङ्गति और मैथ्यू की लगाई सङ्गति बिलकुल टक्कर नहीं खाती। मैथ्यू इन पंक्तियों को अपनी ओर खींचने का प्रबल प्रयास कर रहे है। मगर वह चाहे कितने ही पेचो-ताव खायँ, इन पंक्तियों का एक भी शब्द उनकी गवाही देने को तैयार नहीं। हम इस प्रकरण का अर्थ करने मे अपनी कल्पना से काम न लेकर सिद्धहस्त व्याख्याताओं और बाइबिल के विशेषज्ञों के शब्दो को उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं :—

"Here again the adduced prophecy was quite irrelevant being simply a description of the grief

of Judea for the captivity of her children, accompanied with a promise of their return."

इस स्थल पर प्रस्तुत की गई भविष्य-वाणी भी एकदम अप्रासङ्गिक चीज़ है। वह तो जूडिया-निवासियों की परतन्त्रता के कारण उनके दुःख और उसके साथ उनकी मुक्ति का विश्वास दिलाने वाला एक वर्णन मात्र है।

फलतः हम देखते हैं कि वस्तुतः इस प्रकार की किसी भविष्य-वाणी के न होते हुए भी, बिना समझने का यत्न किए, शब्दों की खींचातानी करके उन्हें भविष्य-वाणी बनाना मैथ्यू की पहली कल्पना है, और फिर उस कल्पना की पूर्ति के लिए हिरोद के मत्थे उस अमानुषिक हत्याकाण्ड को मढ़ देना इसी प्रकार की दूसरी निराधार कल्पना है। इन दोनों मिथ्या और अनर्गल कल्पनाओं को करके मैथ्यू ने इतिहास के साथ और ख़ास कर हिरोद के साथ घोर अन्याय किया है। हम क्या, कोई भी सहृदय व्यक्ति मसीहाई मसलहत की धुन में की गई इन मिथ्या कल्पनाओं का समर्थन करने को तैयार न होगा।

मसीहाई मसलहत

मैथ्यू जिस समय ईसा-चरित्र लिखने बैठे, उससे पहले ही उनके दिल में मसीहाई भाव घर कर चुके थे, इसलिए उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह एक सच्चे ऐतिहासिक या

चरित्र-लेखक की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक अन्धविश्वासी भक्त के रूप में। इसका एक आवश्यक और अनिवार्य परिणाम यह होना था कि भक्ति के आवेश में आकर घटनाओं को तोड़ा-मरोड़ा जावे, अथवा जैसे बने तैसे ईसा के चरित्र पर मुलम्मा चढ़ा कर उन्हें एक मसीहा के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत किया जावे। अन्ततः हम देखते भी यही हैं। मैथ्यू ने अपने इस उद्देश की सिद्धि के लिए अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा है। इसके लिए उनसे जहाँ तक बना, उन्होंने घटनाओं को तोड़ा-मरोड़ा और साथ ही अनेक काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि भी कर डाली। हम इस प्रकार के अनेक उदाहरण इस परिच्छेद में दे आए हैं। अन्त में इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले मैथ्यू की इस प्रवृत्ति का एक और नमूना दिखला देना चाहते हैं।

ईसा-चरित्र के अन्तिम भाग का ज़िक्र है। जिस समय ईसा जरूसलम में प्रविष्ट होने वाला था, उसने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि शहर में चले जाओ। सामने एक जानवर बिना मालिक का मिलेगा उसे खोल लाओ। मैथ्यू ने अपने विवरण में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"अपने सामने के गाँव में चले जाओ, वहाँ पहुँचते ही एक बँधी हुई गधी और उसके साथ एक बच्चा तुम्हें मिलेगा, उन्हें खोल कर मेरे पास ले आओ।"

—मैथ्यू २१-२

मैथ्यू के अनुसार इस स्थल पर दो जानवर पाए जाते है और उनका ईसा दो जानवरों पर चढ़ कर जरूसलम मे प्रविष्ट हुआ है। परन्तु मार्क और लूक में जानवर की संख्या दो नहीं, सिर्फ एक है। मार्क ने लिखा है :—

"अपने सामने के गाँव में जाओ, उसमे पहुँचते ही सामने एक गधी का बच्चा, जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा, तुम्हें बँधा हुआ मिलेगा, उसे खोल लाओ।"

—मार्क ११-२

इस विषय में लूक का बयान यह है :—

"सामने के गाँव में जाओ, उसमें पहुँचते ही तुम्हें एक गधी का बच्चा, जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा, बँधा हुआ मिलेगा, उसे खोल लाओ, और यदि कोई तुमसे पूछे कि क्यों खोलते हो तो यो कह देना, कि प्रभु को इसकी आवश्यकता है।"

—लूक १९-३०

इस प्रकार तीनो गॉस्पल से इस घटना का मिलान करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मैथ्यू ने अन्यों की अपेक्षा कुछ विशेषता रक्खी है। साथ ही उन्होने अपनी इस विशेषता का समर्थन करने का यत्न भी किया है।

"यह सब इसलिए हुआ कि वह भविष्य-वाणी, जोकि नबी के द्वारा की गई थी, पूरी हो कि—सियोन की बेटी से

कहो, देख तेरा राजा तेरे पास आता है, यह नम्र है और गधे पर एवं एक लादू के बच्चे पर बैठा है।"

—मैथ्यू २१ । ४-५

मैथ्यू के पास 'हर मर्ज़ का नुस्ख़ा अमलतास' वही एक मसीहाई भाव है। 'यह सार्थक हो सकता है' (It might be fulfilled) उनका तकियाकलाम हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ उन्हें कोई न कोई भविष्य-वाणी सूझ जाती है और उस भविष्य-वाणी का ईसा-चरित्र के साथ डाइरेक्ट सम्बन्ध जोड़ देना मैथ्यू महाशय के बाएँ हाथ का खेल है। इस जगह भी उन्होने वही यत्न, वही चेष्टा और वही तरकीब निकाली है, मगर इतने फूहड़पन से कि पाश्चात्य समालोचको का सिर भी लज्जा से झुक जाता है। कारपेण्टर महोदय ने लिखा है :—

"The method of Hebrew poetry is to repeat, with a kind of rhythm, in the second part of the verse or clause that has been already said in the first."

"हिब्रू भाषा में पद्य के पूर्वार्द्ध के अन्तिम भाग को उत्तरार्द्ध में दुहराना कविता की शैली है।"

मगर मैथ्यू महोदय का मस्तिष्क मसीहाई मसलहत में मग्न था। उन्हे किसी चीज़ के क़ानूनो-क़वायद से क्या सरोकार ? उपर्युक्त भविष्य-वाणी में इसी प्रकार की आवृत्ति

की गई है। परन्तु इसे समझने का कष्ट मैथ्यू महाशय क्यों करने लगे:—

"The evangelist misunderstanding the parallel style, supposed that the prophecy really referred to two animals He accordingly put them into his story and actually represented Jesus as riding into the city upon both"

"चरित्र-लेखक इस शैली से अनभिज्ञ होने के कारण यह समझ लिया कि भविष्य-वाणी दो पशुओं की बात कह रही है, इसलिए उसने उन दोनों को अपने उपाख्यान में स्थान दिया और ईसा को दोनों के ऊपर चढ़ाया है।"

इस प्रकार मसीहाई भूत ने मैथ्यू के दिमाग़ से न जाने कितनी अनर्गल कल्पनाओं की सृष्टि करा डाली है। उन सबका विवेचन कर सकना इस समय हमारी शक्ति के बाहर है। मगर उससे हम एक परिणाम यह निकाल सकते हैं कि मैथ्यू द्वारा चित्रित ईसा का चरित्र विशुद्ध और वास्तविक ईसा का चरित्र नहीं है, बल्कि उसके ऊपर मसीहाई मुलम्मा चढ़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में वह ईसा का नहीं, बल्कि भक्त की भावना द्वारा एक कल्पित ईसा का चरित्र है। फिर भी उसमें सचाई का अंश अवश्य है, चाहे वह बाह्य रेखाओं में ही समाप्त हो गया हो।

बपतिस्मा

मैथ्यू-लिखित ईसा-चरित्र के प्रथम दो परिच्छेद आलोचना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पिछले परिच्छेद में यद्यपि हमने उनमें से कुछ घटनाओं पर प्रकाश डालने का यत्न किया है, फिर भी उसमें अभी बहुत-कुछ विचारणीय विषय रह जाता है, लेकिन इस समय हम उस आलोचना को यहीं समाप्त करके अगले तृतीय और चतुर्थ परिच्छेद को उठाना चाहते हैं। यह दोनों परिच्छेद भी आलोचना के लिए कुछ अच्छा और वजनी मसाला पेश करते हैं। साधारणतः अगर हम इन दोनों परिच्छेदों का संक्षिप्त विषय लिखना चाहे, तो वह सिर्फ तीन बातों में समाप्त हो जायगा। तृतीय परिच्छेद मे बपतिस्मा का विषय है, और चतुर्थ परिच्छेद में परीक्षा एवं शिष्य-संग्रह दो विषय हैं। इस प्रकार इन दोनों परिच्छेदों की मुख्य बाते यह तीन हैं—(१) बपतिस्मा (२) परीक्षा (३) शिष्य-संग्रह। इस परिच्छेद में हम क्रमशः इन तीनों पर विचार करेंगे। पहले हम बपतिस्मा को ही प्रारम्भ करते हैं।

बपतिस्मा ईसाई धर्म में दीक्षित होने का एक संस्कार विशेष है। ईसाई धर्म के प्रत्येक अनुयायी का यह संस्कार होता है, फिर चाहे वह जन्म से ईसाई हो या किसी धर्मान्तर से ईसाई धर्म मे दीक्षित हो रहा हो। इस संस्कार का कार्यक्रम मुख्यत. दो अंशों में विभक्त है। एक अभिषेक और दूसरी त्रित्व प्रतिज्ञा। जिस समय कोई व्यक्ति ईसाई धर्म मे दीक्षित होता है, उस समय उसे स्नान द्वारा पवित्र होकर पिता-पुत्र और पवित्रात्मा की शरण मे आत्म समर्पण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, इसी प्रतिज्ञा को हमने 'त्रित्व प्रतिज्ञा' शब्द से निर्देश किया है।

ठीक इसी प्रकार का एक संस्कार बौद्ध धर्म मे भी पाया जाता है, जिसे उस धर्म के अनुयायी 'अभिषेक' कहते हैं। जिस प्रकार स्नान और 'त्रित्व प्रतिज्ञा' बपतिस्मा के दो मुख्य अंश हैं, उसी प्रकार बौद्ध धर्म के अभिषेक-संस्कार में भी अभिषेक और त्रित्व प्रतिज्ञा दो अंश हैं। ईसाई धर्म मे प्रविष्ट होते समय पिता-पुत्र और पवित्रात्मा पर विश्वास लाना होता है तो बौद्ध धर्म मे प्रविष्ट होते समय भी बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में आत्म-समर्पण करना पड़ता है :—

१—बुद्धं शरणं गच्छामि

२—धर्म शरणं गच्छामि

३—सङ्घं शरणं गच्छामि

श्रद्धेय पं० गङ्गाप्रसाद जी ने इस विषय पर अच्छी आलोचना की है। हम उस परिणाम को, जिस पर कि वह अपनी आलोचना के बाद पहुँचे हैं, उन्हीं के शब्दो मे उद्धृत कर देना चाहते हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'धर्म का आदि स्रोत' के द्वितीय परिच्छेद में लिखा है :—

"Baptism which is already included in the above list is common to Buddhism and Xnty. Indeed, it was originally a Buddhist ceremony, called *Abhishek* and was probably borrowed by John the Baptist from the Essènes or Buddhists of Palestine."

"बपतिस्मा, जोकि ऊपर की सूची में आ चुका है, बौद्ध और ईसाई दोनो धर्म में समान है। वस्तुतः यह पहले बौद्धों का ही अभिषेक नामक संस्कार था, और ऐसा प्रतीत होता है कि बपतिस्मा देने वाले यूहन्ना ने पैलस्टाइन के बौद्ध या इसेन (Essenes) लोगो से इसे ग्रहण किया।"

श्रद्धेय पण्डित जी की सम्मति मे अभिषेक-संस्कार वस्तुतः बौद्ध संस्कार है और पैलस्टाइन के बौद्धों से यूहन्ना द्वारा ईसाई धर्म में पहुँचा, इसीलिए दोनों धर्म के इस संस्कार में इतनी अधिक समानता पाई जाती है। बपतिस्मा और अभिषेक की समानता के सम्बन्ध में श्री० आर० सी० दत्त ने लिखा है :—

"So strong is the resemblence that the first christian Missionaries who travelled in Tibet and China believed and recorded their impression that the Buddhist Church had borrowed their rites and forms from Roman Catholic Church."

अर्थात्—"बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म के भीतर अधिक समानता है। जिन आदिम ईसाई प्रचारकों ने तिब्बत और चीन में परिभ्रमण किया, उन्हे यह विश्वास था कि बौद्ध विधियाँ ईसाई धर्म की विधियों से ली गई हैं। अपने इस विश्वास का उन्होंने उल्लेख भी किया है।"

मगर इस समानता को स्वीकार करते हुए रमेशचन्द्र दत्त ईसाई मिश्नरियों के इस विचार से सहमत नहीं कि बौद्धों ने इस संस्कार को ईसाई धर्म या रोमन कैथोलिक चर्च से लिया। इस विषय मे भी स्पष्ट रूप से उन्होंने अपने विचार प्रकट कर दिए हैं। वह लिखते हैं :—

"हम अपनी अगली पुस्तक मे यह सिद्ध करेंगे कि बौद्ध लोग ईसा के जन्म से पूर्व ही पर्वतों को फोड़ कर अपने विशाल मन्दिरों का निर्माण कर चुके थे। पटना के निकट नालन्द नामक स्थान पर एक बहुत बड़ा बौद्ध भिक्षुओं का विहार, धन-सम्पन्न प्रचारक समूह और विद्वत्पूर्ण विश्व-विद्यालय उस समय उपस्थित थे, जब कि यूरोप मे कहीं इस

प्रकार की बातो का प्रादुर्भाव भी न हुआ था। बौद्ध धर्म की भारत में अवनति होते हुए उसकी उच्च रीति-नीति और संस्थाओ का तिब्बत, चीन एवं दूर देश के निवासियों ने नालन्द तथा अन्य स्थानो से उस समय अनुकरण कर लिया था, जब यूरोप असभ्य जातियो के आक्रमण से उभरने भी न पाया था, अपनी जागीरदारी, सभ्यता व व्यवस्था और रीति-नीतियो को स्थिर भी न कर सका था।"

कुछ आगे बढ़ कर वह फिर लिखते हैं :—

"जहाँ तक दोनो मतो के भीतर समानता स्थिर होती है, वहाँ तक सम्पूर्ण धर्म-सम्बन्धी शासन और धार्मिक संस्थाओ की नक़ल पश्चिम ने पूर्व से की है, न कि पूर्व ने पश्चिम से।"

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जॉन दि बैपटिस्ट ने बौद्धो से अभिषेक संस्कार अपने यहाँ लिया, और उन्ही के संसर्ग से ईसाई-धर्म में बपतिस्मा का प्रवेश हुआ। श्री० गङ्गाप्रसाद जी लिखते हैं :—

"When Christ came in contact with John the Baptist he adopted this rite, which has since become a fundamental rite of the Christian religion."

"जब हज़रत ईसा का बपतिस्मा देने वाले यूहन्ना से सङ्ग हुआ तो उन्होने उस कृत्य को उनसे ग्रहण कर लिया, और तभी से वह ईसाई-धर्म का प्रधान संस्कार बन गया।"

बौद्ध-धर्म मे अभिषेक और ईसाई धर्म में वपतिस्मा का जो स्थान है, ठीक उतना ही वल्कि किसी अंश में उससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान वैदिक धर्म में उपनयन संस्कार का होता है। सरसरी दृष्टि से इन तीनों सस्कारो मे कुछ न कुछ भेद अवश्य दिखाई देगा, मगर फिर भी उनके भीतर गहरी समानता है। वैदिक प्रथा के अनुसार वे लोग, जिनका कि उपनयन संस्कार होता है, द्विज कहलाते हैं। द्विज का अर्थ है दो बार पैदा हुआ। इसीलिए संस्कृत साहित्य मे द्विज शब्द पक्षी का वाचक भी है। पक्षियों का पहला जन्म अण्डे के रूप में माता के गर्भ से होता है, उसके बाद अण्डा फूटने पर जब उससे बच्चा निकलता है, तब वह उसका दूसरा जन्म कहलाता है। फलतः इन दो जन्मो के कारण ही पक्षी द्विज कहलाते हैं। यही द्विज शब्द उपनीत लोगो के लिए प्रयुक्त होता है, उसके भीतर भी वही भाव काम कर रहा है। जिसका उपनयन होता है वह भी द्विज है, उसके भी दो जन्म हैं। पहला जन्म माता के गर्भ से होता है, और उपनयन संस्कार के बाद बच्चे का दूसरा जन्म होता है। माता का गर्भ केवल बच्चे के भौतिक अस्तित्व का कारण है। वह पञ्चभूत-निर्मित इस शरीर को केवल पैदा कर सकता है, मगर उसके आत्मिक अस्तित्व का कारण कुछ और ही है। उपनयन संस्कार बालक की शिक्षा-दीक्षा का मुख-द्वार है, उसकी आत्मिक उन्नति का विधायक है।

इसीलिए वह बालक के आत्मिक जन्म का कारण है, और इसीलिए वह लोग, जिनका उपनयन संस्कार होता है, द्विज कहलाते हैं। महर्षि मनु ने अपने धर्म-शास्त्र में इस द्विजत्व धर्म की अच्छी विवेचना की है, द्विज शब्द का सौन्दर्य वहाँ अपने पूर्ण रूप मे विकसित हुआ है। मनु लिखते है :—

मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौंजिबन्धने।

बच्चे का पहला जन्म माता से होता है और 'द्वितीयं मौंजि बन्धने'—दूसरा जन्म मौंजि-बन्धन—पर होता है। इन दोनो जन्मो मे भेद है। पहला जन्म केवल भौतिक देह का कारण है, मगर दूसरे जन्म का सम्बन्ध ब्रह्म से—आत्मा से—है इसीलिए वह ब्रह्म-जन्म है। और मौंजि-बन्धन ? वह सिर्फ उसका चिन्ह है। मौंजि-बन्धन संस्कार बालक को एकजन्मा की कोटि से द्विजन्मा की कोटि मे परिवर्तित कर देता है। इस दूसरे जन्म में पिता का स्थान आचार्य लेता है और माता के स्थान पर साक्षात् सावित्री होती है। आचार्य और सावित्री के इस सुन्दर संयोग से बालक का दूसरा जन्म होता है :—

तत्र यद् ब्रह्म जन्मास्य मौजीबन्धनचिन्हितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते ॥

—मनुस्मृति २-१७०

हाँ, हम कह रहे थे कि ईसाई धर्म के बपतिस्मा और वैदिक धर्म के उपनयन संस्कार का रूप एवं उद्देश्य लगभग एक

है। बपतिस्मा होने के बाद ही बालक यथार्थ रूप से ईसाई धर्म मे दीक्षित होता है। इसी प्रकार उपनयन संस्कार के बाद ही द्विज समझा जाता है। उससे पहले वह किसी भी धार्मिक कृत्य का अधिकारी नही है :—

नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्।

—मनुस्मृति २-१७१

उपनयन संस्कार के बाद ही बालक द्विज समझा जाता है, और यथार्थ में उपनयन संस्कार के दिन ही बच्चे का वास्तविक जन्म होता है।

ठीक यही भाव महात्मा ईसा के बपतिस्मा से झलकता है। 'इबियोनाइट गॉस्पल' (Ebionite Gospel) ने इस बात को स्पष्ट शब्दों मे लिखा है। बपतिस्मा के समय की आकाशवाणी है—

"Thou art my son, this day I have begotten thee."

"तू मेरा पुत्र है और आज ही—बपतिस्मा के दिन ही—मैंने तुझे पैदा किया है।"

इस प्रकार बपतिस्मा और उपनयन दोनो ही संस्कारो का उद्देश्य बालक को दूसरा—यथार्थ—जन्म देना है। इसके साथ ही 'त्रित्व प्रतिज्ञा' का महत्वपूर्ण स्थान दोनो जगह दिखाई देता है। हाँ, उपनयन संस्कार की त्रित्व प्रतिज्ञा मे कुछ विशेषता अवश्य है। बपतिस्मा की प्रतिज्ञा मुँह से

निकल कर इस अनन्त आकाश में विलीन हो जाती है, और अपने पीछे कोई प्रकट चिन्ह नहीं छोड़ जाती। मगर उपनयन संस्कार की त्रित्व प्रतिज्ञा आत्मा के साथ एक रूप होकर यज्ञोपवीत के रूप में अपना चिन्ह बाहर भी छोड़ जाती है, जो समय-समय पर बालक को पथ प्रदर्शित करता रहता है और धर्म-सङ्कट के अवसरों पर उसे कर्त्तव्य-पथ से विचलित होने से बचाता है। अस्तु—

महात्मा ईसा के बपतिस्मा का उल्लेख प्रथम तीनो इवेन्जिलिस्टों ने किया है। यद्यपि साधारण तौर से देखने पर उन तीनों विवरणों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता; फिर भी जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखने से उनके भीतर एक रहस्य छिपा हुआ दिखाई देता है। सुविधा के लिए हम तीनों विवरण यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"And it came to pass in those days, that Jesus came from Nazareth of Galilee, and was baptised of John in Jordon.

"And straightway coming up out of the water, he saw the heavens opened, and the spirit like a dove descending upon him:

"And there came a voice from heaven, saying, "Thou art my beloved Son, in whom I am well pleased." *Mark 1st, 9—11*

"Now when all the people baptised, it came to pass, that Jesus also being baptised and praying, the heaven was opened.

"And the Holy Ghost descended in a bodily shape like a dove upon him . . . ."

Luke 3rd, 21, 22

"Then cometh Jesus from Galilee to Jordon unto John, to be baptised of him

"And Jesus, when he was baptised, went up straightway out of the water . and lo, the heavens were opened unto him, and he saw the Spirit of God descending like a dove, and lighting upon him :

"And lo, a voice from heaven, saying, this is my beloved Son, in whom I am well pleased."

Matthew 3rd, 13, 16, 17.

"उन दिनों यीशू ने गलील देश के नैज़रथ नगर से आकर यरदन में यूहन्ना से बपतिस्मा लिया, और तुरन्त पानी से निकल कर ऊपर आते हुए उसने आकाश को फटते और आत्मा को कबूतर की नाईं अपने ऊपर उतरते देखा। और साथ ही यह आकाशवाणी हुई कि मेरा तू प्रिय पुत्र है और मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ।"—मार्क १। ६ से ११ तक

"जब सब लोगो ने बपतिस्मा ले लिया और यीशू भी बपतिस्मा लेकर प्रार्थना कर रहा था, तो आकाश खुल गया और पवित्रात्मा देह-रूप में कबूतर की नाईं उस पर उतरा, और यह अकाशवाणी हुई कि तू मेरा प्रिय पुत्र है और मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

—लूक ३। २१-२२

"जब यीशू गलील से यरदन के किनारे पर यूहन्ना के पास उससे बपतिस्मा लेने आया........

"और यीशू बपतिस्मा लेकर तुरन्त पानी से ऊपर आया, और देखो उसके लिए आकाश खुल गया और उसने परमेश्वर की आत्मा को कबूतर की नाईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा और यह आकाशवाणी हुई कि यह मेरा प्रिय पुत्र है, जिससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

—मैथ्यू ३। १६-१७

हमने उद्धरण देते समय सबसे पहले मार्क का उद्धरण दिया है। इसका एक विशेष कारण है। मार्क के वर्णन में सरलता और स्वाभाविकता का अंश सबसे अधिक प्रतीत होता है। हम उसको पढ़ कर सरलता से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि मार्क वस्तुतः इस जगह किसी भौतिक या प्राकृतिक दृश्य का निदर्शन नहीं करा रहे हैं, बल्कि उनका वर्णन आलङ्कारिक है और उसका सम्बन्ध आत्मा से है। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि बपतिस्मा के बाद ईसा

के हृदय में एक नवीन ज्योति और नई शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया। उनके भीतर एक नई स्फूर्ति आ गई, जिसने उनके सारे भावी जीवन की नींव डाली। लेखक के इस भाव को समझने के लिए बाइबिल का इस स्थल का पाठान्तर अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। दिए हुए उद्धरण मे पाठ है The spirit descending upon him मगर कुछ विचारशील लेखक upon की जगह into पढ़ते है। इनमें Westcott, Hort, Tischenclorf, Nestle, B Waiss के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। यह into पाठ इस भाव को कि लेखक किसी अन्तःशक्ति का उल्लेख कर रहा है, अत्यन्त सुन्दरता के साथ व्यक्त करता है।

लूक मे पहुँच कर यह आलङ्कारिक या आध्यात्मिक वर्णन एकदम प्राकृतिक घटना का रूप धारण कर लेता है। मार्क ने लिखा है कि बपतिस्मा के बाद ईसा की आत्मा उतनी ही पवित्र हो गई जितनी कि कबूतर की, मगर लूक मे कबूतर आलङ्कारिक रूप में नहीं, बल्कि साक्षात् देह-रूप में आकर उपस्थित हो गई है :—

"And the holy spirit descended in a bodily form as a dove."

"ईश्वरीय आत्मा कबूतर का रूप धर कर ईसा पर उतर आई।"—इस प्रकार उस आलङ्कारिक वर्णन को लूक ने प्राकृतिक रूप दे दिया है।

मैथ्यू ने इस वर्णन में एक क़दम और आगे बढ़ाया है। उन्होने अपने वर्णन में मार्क और लूक दोनो को मिला दिया है। लूक का The heavens were opened मार्क के He saw the spirit descending as a dove. के साथ मिल कर दोनो का संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित कर रहा है। फिर भी मैथ्यू के वर्णन से प्राकृतिकता के भाव नहीं छूटे हैं। मार्क आत्मिकोन्नति का ज़िक्र कर रहे थे, उनके शब्द Thou art my beloved son, ईसा की अन्तरात्मा के शब्द हो सकते हैं। मगर मैथ्यू के यह शब्द भी दब जाते है, मानो बातचीत किसी तीसरे से हो रही हो—This is my beloved son.

हाँ, इस विषय में अभी दो बातें और कहनी है। एक यह कि मार्क के यहाँ ईसा बपतिस्मा के बाद ही मसीहा के या वास्तविक रूप में पैदा होता है, उसे परमात्मा अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करता है; यह बिल्कुल तथ्य है और स्वाभाविक है, परन्तु शेष दोनों, जोकि ईसा को उसके जन्म-काल से ही ईश्वर-पुत्र और मसीहा का ख़िताब दे चुके हैं, उनके लिए इस दैवी स्वीकृति की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

दूसरी बात यह है कि जॉन दी बैपटिस्ट के बपतिस्मा के भीतर पश्चात्ताप का भाव काम कर रहा है। जो लोग उस बपतिस्मा को लेते हैं, वह अपने अपराधों को स्वीकार करते

हैं। फलतः उनके लिए जिनका विनायक ईसा पहले से ही ख़ुदा का बेटा बना हुआ है, बपतिस्मा का झञ्झट कुछ असह्य सा हो उठता है। मार्क और लूक के सामने वह समस्या उपस्थित न हुई और जॉन इस घटना का बिलकुल सफाया करके अपने आपको साफ बचा ले गए हैं। सिर्फ मैथ्यू के सामने यह सवाल स्पष्ट रूप से उपस्थित था, मगर उन्होंने इस सवाल का जो कुछ भी हल किया है, वह नहीं के बराबर है। उसका समस्त विवरण पढ़ जाने पर भी हम इस समस्या का कोई सन्तोषजनक हल नहीं पाते।

परीक्षा

परीक्षा का महत्व या डर लोगों को कितना होता है, इसका अनुभव उन लोगों को अच्छी तरह होगा जिन्हें कभी उससे पाला पड़ा है। उस परिश्रम, चिन्ता और क्लान्ति को याद कर, जोकि परीक्षा के समय पर साधारण तौर से हुआ करती है, आज भी रूह काँप उठती है। याद है, अभी ख़ूब याद है, परीक्षा के दिनों में मुश्किल से एक समय रोटी पेट में जाती थी। साँझ को तो योंही कभी मुँह जुठार लिया तो जुठार लिया, नहीं तो नींद आ जाने के डर से आध सेर दूध पर ही रात गुजर जाती थी। साल भर के नियमित परिश्रम के बाद भी परीक्षा की चिन्ता बेचैन कर डालती थी। ज्यों-ज्यों अधिक याद होता था, त्यों-त्यों कच्चे पाठ को देख कर यही

जी में आता था कि पर्चे में कहीं यही न आ जाय। पर्चा आने तक कभी दिल में सन्तोष ही न आता था। पर्चा कर आने के बाद मैं यही सोचता कि फिजूल इतना परिश्रम किया, यह पर्चा तो आज से महीना भर पहले भी ऐसा ही हल किया जा सकता था। मगर फिर भी परीक्षा-हॉल मे जाते चित्त घबड़ाता था। परीक्षा ऐसी ही बुरी बीमारी है; मनुष्य का खाना-पीना, ओढ़ना-पहिनना—सब भुला देती है। यह है उन परीक्षाओं का हाल, जिन्हें हम परीक्षा नहीं, परीक्षाभास कहना चाहते है। इन परीक्षाओं में बहुत से लोग उत्तीर्ण होते हैं और हो सकते हैं; मगर मानव-जीवन की असली परीक्षा मे कितने लोग उत्तीर्ण होते हैं? यह परीक्षा वह विकट भट्टी है, जो मनुष्य के मैल को काट कर उसे चमकता-दमकता मनुष्य बना देती है। मगर उस परीक्षा में पड़ना बड़ी टेढ़ी खीर है, इसीलिए ईसा जैसे महापुरुष की आत्मा भी इस परीक्षा के नाम से घबरा उठी है। ईसाइयों की दैनिक प्रार्थना है :—

"Lead us not into temptation."

अर्थात्—'प्रभो! हमें परीक्षा में मत डाल।' मगर सोना, चमचमाता सोना, शुद्ध सोना बनने के लिए तपस्या की विकट भट्टी में होकर गुज़रना ही होगा। मिट्टी को सोने के रूप मे परिवर्तित करने के लिए उसे तीव्र आँच में तपाना ही पड़ेगा। अपने जीवन को आदर्श और उच्च बनाने के लिए ऐसी न

जाने कितनी परीक्षाएँ देनी होंगी। संसार मे आज तक कोई बड़ा आदमी ऐसा नही हुआ, जिसके जीवन में कोई ऐसी परीक्षा न पड़ी हो। महात्मा गाँधी आज दुनिया के सबसे बड़े पुरुषों में हैं। अपनी सहनशीलता, अहिंसात्मक असहयोग और शान्त प्रवृत्ति के लिए वह संसार मे प्रसिद्ध हैं। मगर यह सम्मान, यह गौरव मुफ्त में प्राप्त नहीं हुआ है।

यह उनके जीवन का आदर्श है और इस तक पहुँचने के लिए उन्हे इस प्रकार की न जाने कितनी परीक्षाओं मे होकर गुज़रना पड़ा है। अफ़्रीका की बात है, महात्मा जी ने अपनी आत्म-कथा मे बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। लेख का शीर्षक है 'कसौटी'। महात्मा जी भारत से लौट कर दोबारा अफ़्रीका जा रहे थे, उनके साथ हो नादरी और कुरलैण्ड दोनो जहाजो में हज़ारो हिन्दुस्तानी भरे थे। उन दिनों किन्ही ग़लतफ़हमियो के कारण नेटाल का गोरा-मण्डल गाँधी जी के सख्त खिलाफ़ हो रहा था। गाँधी जी लिखते हैं:—

"जिस समय हम जहाज़ से उतरे, कुछ छोकरो ने मुझे पहचान लिया, और गाँधी-गाँधी चिल्लाने लगे। दो-चार आदमी इकठ्ठे हो गए और मेरा नाम लेकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। मि० लाटन ने देखा कि भीड़ बढ़ जायगी तो उन्होने रिक्शा मँगवाया। मुझे रिक्शा में बैठना कभी अच्छा न मालूम होता था। मुझे उसका अनुभव यह

पहले ही होने वाला था, पर छोकरे क्यों बैठने देने लगे, उन्होंने रिक्शा वाले को धमकाया और वह भाग खड़ा हुआ।

"हम आगे चले, भीड़ भी बढ़ती जाती थी, काफ़ी मजमा हो गया। सबसे पहले तो भीड़ ने मुझे मि० लाटन से अलग कर दिया। फिर मुझ पर कङ्कड़ और सड़े अण्डे बरसने लगे। किसी ने मेरी पगड़ी गिरा दी और लातें शुरू हुईं।

"मुझे ग़श आ गया, नज़दीक के घर के सीख़चे पकड़ कर मैंने सहारा लिया। खड़ा रहना असम्भव ही था, अब थप्पड़ें भी पड़ने लगीं।

"इसी बीच में कोई हिन्दुस्तानी मुझ पर हमला होते देख पुलिस-थाने पर पहुँच गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पुलिस की एक टुकड़ी मुझे बचाने के लिए भेजी, वह समय पर पहुँच गई।

"स्वर्गीय मि० चेम्बरलेन ने तार दिया कि गाँधी पर हमला करने वालों पर मामला चलाया जावे और ऐसा किया जाय कि गाँधी को इन्साफ़ मिले। मि० एस्कम्ब ने मुझे बुलाया; मुझे चोट पहुँची, इसके लिए दुःख प्रकाशित किया, और कहा × × × यदि आप हमलाइयों को पहचान सकें तो मैं उन्हे गिरफ्तार कर मुक़दमा चलाने को तैयार हूँ। मि० चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते हैं।"

यहाँ कसौटी थी, जिस पर गाँधी का चरित्र कसा जा रहा था, मगर वह उस परीक्षा में पास हुआ और बड़ी शान के साथ पास हुआ। गाँधी ने जवाब दिया—"× × × जब असली और सच्ची बात लोगों पर प्रकट हो जायगी और लोग जान जायँगे तो अपने आप पछताएँगे।"

यहाँ से गाँधी-जीवन का वह उज्ज्वल अध्याय शुरू होता है, जिसने उनके भावी जीवन को—आज तक के जीवन को—आलोकित कर रक्खा है।

इसी प्रकार ईसा के प्रारम्भिक जीवन में एक परीक्षा का अवसर आया है। बपतिस्मा से पहले ईसा का जीवन एक साधारण जीवन था। मगर बपतिस्मा ने उनके जीवन में एक नई स्फूर्ति फूँक दी। अब उनके जीवन में परिवर्त्तन हो चुका था, वह अज्ञात रूप से एक आदर्श की ओर बढ़ता जा रहा था। उनके हृदय में एक दैवी शक्ति का सञ्चार हो चुका था। इसी को चरित्र-लेखकों ने लिखा है :—

"उसके भीतर एक आत्मा प्रविष्ट हो रही थी। वह इतनी पवित्र थी जितना कि कबूतर।" कबूतर के लिए ईसा ने उसे पवित्रता और सरलता का आदर्श माना है। इसी पवित्रात्मा के प्रवेश ने उसे परमात्मा का पुत्र बना दिया है।

मगर पवित्रता के साथ ही परीक्षा शुरू होती है। आदर्श-वाद के साथ ही उसके पालन में कठिनाइयों की सृष्टि हो जाती है। ईसा-चरित्र भी उस परीक्षा से अछूता न रह

सका। बपतिस्मा ले लेने के बाद जब कि ईसा अपने आदर्शवाद का पथिक बन चुका था, सौभाग्य से कहिए या दुर्भाग्य से, ईसा को ४० दिन का उपवास परिस्थितियों से बाधित होकर करना पड़ा। सम्भव है कि यह ४० दिन की संख्या भक्तो की अत्युक्ति हो, मगर कुछ अंश तक घटना मे सचाई अवश्य है। लोक-प्रसिद्ध कहावत है :—

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं,

क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति ॥

आज ईसा बुभुक्षित था, उसके दिल पर पाप ने अपना अधिकार जमाना चाहा। उसके चरित्र-लेखको ने लिखा है :—

"Then was Jesus led of the spirit into wilderness to be tempted of the devil."

शैतान की—पाप की—परीक्षा मे पड़ने के लिए ईसा जङ्गल मे जा पहुँचा। शैतान को ईसा की अवस्था मालूम थी, वह जानता था कि ईसा भूखा है। इसलिए उसने ईश्वर-पुत्र के ऊपर अपना दाँव चलाना चाहा। ईसा के पास आकर शैतान ने कहा—"अगर तू सचमुच अपने को ईश्वर का पुत्र समझता है तो क्यों नहीं आज उसकी परीक्षा कर लेता ? देख, तू आज ४० दिन से भूखा है, अगर ईश्वर पर तेरा विश्वास है कि वह तेरा पिता है, तो कह कि यह पत्थर रोटी बन जायँ। अगर सचमुच ईश्वर कोई है और अगर वह तेरा पिता है, तो अभी इन पत्थरों की रोटी बन जायगी, और

अगर नहीं तो लात मार ऐसे ईश्वर पर, जिसके लिए तू भूखा-प्यासा जङ्गलों में मारा-मारा फिरता है।"

ईश्वर की सत्ता पर बिश्वास रखने वाले भक्तों के सामने इस प्रकार के अवसर प्रायः आया करते है। और यह अनुभूत बात है कि बड़े-बड़े ईश्वर-भक्त आपत्तियो की मार से व्याकुल होकर उसकी सत्ता से इन्कार करने लगते हैं। 'अगर ईश्वर कोई होता तो धर्मात्माओं को यह दुःख न उठाने पड़ते'—यह शब्द इस प्रकार के लोगो के तकियाकलाम बन जाते हैं। आज वही प्रश्न ईसा के सामने उपस्थित था। कष्टो ने उसकी देह को जीर्ण-शीर्ण कर डाला था, भूख-प्यास से उसका शरीर सूख कर ठठरी हो गया था। ईश्वर पर साधारण विश्वास रखने वाले लोगो का ऐसे अवसर पर विचलित हो जाना एक स्वाभाविक बात है। मगर धीर तो वही है, जो ऐसे अवसर पर धैर्य धारण कर सके :—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते,
येषान्न चेतांसि त एव धीराः।

ईसा के हृदय को शैतानी भाव दबाना चाहते थे, मगर अब ईसा बपतिस्मा से पहले का ईसा न था। उसके भीतर एक दैवी शक्ति प्रविष्ट हो चुकी थी। ईसा ने जवाब दिया :—

"It is written, man shall not live by bread alone, but by every word that proceedeth out of the mouth of God."

मनुष्य-जीवन सिर्फ रोटी पर ही निर्भर नहीं है। रोटी तो उसके भौतिक अस्थि-पञ्जर की पोषक है। उसका जीवन—असली जीवन—के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। मानव-जीवन का आधार, ध्येय, सच्ची खूराक तो वह आदेश है, जो प्रभु की ओर से मिलते हैं। उन्हीं के पालन में अपने इस जीवन को खपा डालना हमारा ध्येय है। इसलिए अगर इस भौतिक अस्थि-पञ्जर को दो-चार दिन खूराक न मिले तो कोई चिन्ता नहीं। हाँ, हमारे जीवन का धारक और पोषक अन्न जो ईश्वरीय आदेश है, उसका त्याग नहीं होना चाहिए। सच्चे और अमर जीवन को प्राप्त करने के लिए अगर इस भौतिक अस्थि-पञ्जर की आहुति देनी पड़े तो इसमें हर्ज ही क्या है? धर्म के नाम पर, आत्म-विश्वास के नाम पर अपने आपको बलिदान कर देना, यही तो ईसा-चरित्र की सबसे उच्च शिखर है, और इसी पर चढ़ने की सबसे पहली सीढ़ी थी यह पहली आत्म-परीक्षा।

ईसा-चरित्र की इस घटना के विशुद्ध स्वरूप मे यही आध्यात्मिक स्प्रिट काम कर रही थी। मगर उसके भक्त लेखकों ने उसे प्राकृतिक रूप देकर ईसा-चरित्र का सारा सौन्दर्य नष्ट कर डाला है; मानो अर्द्ध विकसित फूल पर पाला पड़ गया हो।

खैर, कुछ भी हो, मगर ईसा के विशुद्ध हृदय पर इस आपत्ति की अवस्था में भी शैतान अपना कोई प्रभाव

न जमा सका। लेकिन वह भी एक ईश्वर-भक्त थो ऐसा सस्ता छोड़ने वाला न था। शैतान ईसा को पवित्र नगर में ले जाकर मन्दिर की चोटी पर खड़ा करता है, और कहता है :—

"If thou be the son of God cast thyself down, for it is written that he shall give his angels charge concerning thee and in their hands they shall bear thee up, lest at any time thou dash thou foot against a stone."

"अगर तू सचमुच परमात्मा का पुत्र है तो यहाँ से कूद पड़, परमात्मा तेरी रक्षा करेगा।" शैतान की इन पंक्तियों में भी वही भाव काम कर रहा है, जिसका कि उल्लेख हम पहले कर आए हैं। मगर मैथ्यू महाशय वहाँ तक न पहुँच सके, उन्होंने घटना को प्राकृतिक रूप दे डाला, और यह सोचने की कोशिश भी न की कि उनकी यह चेष्टा भगवान् के चरित्र-सौन्दर्य की पोषक नहीं, बल्कि शोषक है। दोनों व्याख्याओं मे आकाश-पाताल का अन्तर है। कहाँ वह सौन्दर्य, जो घटना के असली आध्यात्मिक स्वरूप में है और कहाँ यह बनावटी टीमटाम। शैतान ने अबकी स्थान चुना था पवित्र नगर (Holy city)। बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य है। वह ईसा के दिल पर इस बात की मुहर लगाना चाहता था कि दरअस्ल ईश्वर की कोई भी सत्ता नहीं है,

इसीलिए वह इस बार ईसा को पवित्र नगर में ले गया है, वहाँ शायद ईश्वर का अखण्ड राज्य है। मगर शैतान की सन्तुष्टि इससे भी नहीं होती, वह एक क़दम और आगे बढ़ता है, और ईसा को ले जाकर राजधानी क्यों, ख़ास राजमहल—मन्दिर में—खड़ा करता है। सम्भव है कि ईश्वर के पास महल मे रहने पर भी किसी कोने में पड़ जाने के कारण ईश्वर अपने पुत्र—ईसा—को न देख सके, इसके लिए शैतान ने पहले से ही पेशबन्दी कर दी है। अब भी शायद कुछ कमी रह गई थी, इसलिए उसने मन्दिर में भी ईसा के खड़े करने के लिए स्थान चुना मन्दिर की चोटी, जहाँ हर एक की नज़र बिना किसी प्रयास के स्वयं उस पर पड़े। अब ईश्वर की राजधानी, ईश्वर के महल, और उसकी भी चोटी पर खड़ा करके शैतान ईसा से कहता है कि यहाँ से कूद पड़, अगर ईश्वर कोई है तो वह तुझ जैसे ईश्वर-भक्त की रक्षा अवश्य करेगा, तेरे चोट बिलकुल भी न लगेगी, और अगर नहीं तो ईश्वर के ऊपर फिज़ूल विश्वास करने से क्या फ़ायदा ? शैतान प्रकृति के नियम से अभिज्ञ था, वह जानता था कि प्रकृति अपने शासन का उल्लङ्घन करने वाले को कभी माफ नहीं करती। जो आग में कूदेगा जलेगा ही, जो पहाड़ से कूदेगा चोट खायगा ही। ऐसी अवस्था में अगर ईसा यहाँ से गिरेगा, तो उसके चोट आए बिना नहीं रह सकती। बस फिर क्या है, फिर तो अपना पक्ष

बना बनाया है। वह बिना किसी परिश्रम के एक ईश्वर-भक्त को अपना अनुयायी बना सकता है, यही सोच कर शैतान ने यहाँ तक का सारा षड्यन्त्र रचा, मगर ईसा वह पेड़ नहीं था, जो हवा के एक साधारण से झोंके में हिल जाय। शैतान की इस युक्ति का कोई भी प्रभाव न हुआ। ईसा ने कोरा जवाब दे दिया :—

"It is written again, thou shalt not tempt the lord thy God"

"तू अपने स्वामी ईश्वर की परीक्षा मत कर।"—शैतान उत्तर सुन कर झुँझला गया, उसने सोचा कि अब कोई दूसरी तरकीब निकालनी चाहिए। अब तक कोरी बातो और युक्तियों से ही काम निकाल रहा था, मगर उससे सफलता न होते देख अवकी उसने पैतरा बदला और ईसा को तीसरी बार फिर परीक्षा के चक्कर मे डाल दिया। इस वार वह बड़ी होशियारी से काम ले रहा था। उसने संसार का सारा राज्य, ऐश्वर्य और वैभव ईसा के सामने रख दिया। शर्त सिर्फ एक थी और वह यह कि इसके बदले मे ईसा एक बार उसके सामने सर झुका दे। कितना सरल काम है, सर झुकाना—सिर्फ एक बार सर झुकाना—और उसके बदले में ? उसके बदले मे था संसार का सारा राज्य-सुख और वैभव। शैतान ने अपना अन्तिम अस्त्र उठाया, उसके भीतर ज़ोर था। शैतान संसार का सारा वैभव निछावर कर रहा था, सिर्फ ईसा

के एक प्रणाम पर। प्रलोभन बड़ा था, उसका संवरण कर सकना साधारण आदमियों का काम न था। ईसा! एक ओर संसार का अतुल वैभव है और दूसरी ओर है वह भिखारी जीवन, जिसमें तू ४० दिन से भूखा मर रहा है। इस पर भी ख़ूबी यह कि उस अनन्त वैभव का—उस अतुल सम्पत्ति का—मूल्य है सिर्फ़ शैतान के सामने सर झुकाना। और इस भिक्षुक-जीवन का कारण है सिर्फ़ ईश्वर के ऊपर एक झूठा अन्ध-विश्वास। अबकी अन्तिम दाँव था, शैतान ने अपना सर्वस्व वार दिया था सिर्फ़ एक प्रणाम पर। दुनिया में किसकी शक्ति थी, जो इस वार से बच सकता? मगर धन्य हो ईसा की अमर आत्मा, धन्य हो! आज तूने वही काम कर दिखाया, जिसकी एक सच्चे आर्यवीर से आशा की जा सकती थी। तेरे शब्दों को सुन कर श्रद्धा के आवेश में हठात् हमारा सर तेरे क़दमों पर झुक जाता है। "दूर हो शैतान!" कैसी करारी फटकार है, कितने ज़ोरदार शब्द हैं। उनके भीतर से आत्म-विश्वास की धारा फूटी सी पड़ती है।

"धर्म-शास्त्र की आज्ञा है कि तू अपने परमेश्वर को प्रणाम कर और केवल उसी की सेवा कर।"

वाह! क्या ख़ूब! इस आस्तिकता और विश्वास को दाद दिए बग़ैर शैतान भी नहीं रह सकता। यही वह आधार-शिला है, जिसके ऊपर ईसा-चरित्र का विशाल भवन खड़ा

है। ईश्वर-विश्वास ईसा-चरित्र का अन्तिम लक्ष्य है। यह परीक्षा उसी अन्तिम सफलता का मुख-द्वार है। यह तीनों परीक्षाएं हैं, जिनमे ईसा-चरित्र का सारा रहस्य भरा हुआ है। इन परीक्षाओं को पास करने के साथ ही महात्मा ईसा सचमुच मानव-कोटि को भी पार कर गए हैं। उनकी आत्मा अलौकिक आत्मा थी, इसलिए इस पापमय लोक में भी एक बार अपनी दिव्य झलक दिखा गई। बपतिस्मा के समय की वह भविष्य-वाणी आज ईसा-चरित्र के साथ पूर्ण सामञ्जस्य खाती है। ईसा के जीवन-कोप में यह घटना एक उज्ज्वल रत्न है, उसको निकालने से ईसा के जीवन का मूल्य आधा रह जायगा।

हमारी समझ में इन तीनों परीक्षाओं का मूल तत्व आध्यात्मिक रूप में था, वहाँ से क्रमशः बिगड़ते-बिगड़ते वह आलङ्कारिक रूप में आया और फिर शनैः शनैः उसका स्वरूप एकदम प्राकृतिक हो गया। भक्तों की दृष्टि में इससे ईसा-चरित्र का महत्व बहुत बढ़ गया, मगर हमारी दृष्टि में उसने ईसा-चरित्र के सारे सौन्दर्य को नाश कर दिया है। और इसमें सन्देह नहीं कि उसने स्वाभाविकता के कलेजे पर जहरीली छुरी फेर दी है। इस प्रकार के मानसिक संग्राम का दिव्य दर्शन दयानन्द और बुद्ध के चरित्र में भी पाया जाता है। बुद्ध का गृह-त्याग और बोधि-तपस्या का अवसर उसी शैतान की परीक्षा थी। त्याग और उसके

विरोधी आकर्षणों का यह द्वन्द्व युद्ध ही कुमार सिद्धार्थ की सफलता की पहली सीढ़ी थी। इस युद्ध में विजय पाकर कुमार सिद्धार्थ एक विशाल साम्राज्य के अधिपति बन गए हैं। उसी प्रकार महात्मा ईसा शैतान की इस परीक्षा को पार कर उस उज्ज्वल प्रकाश में पहुँच गए हैं, जिससे उनका सारा जीवन आलोकित हो रहा है।
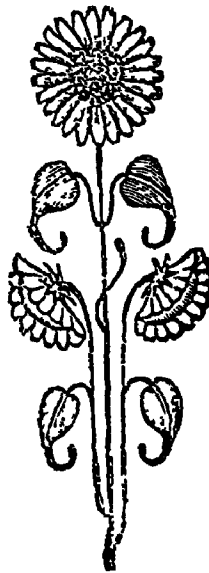
तीसरा खण्ड

गिरि-प्रवचन

ईसा-चरित्र का विकास कितने सुन्दर और सङ्गठित रूप से हो रहा है, इसे देखने के लिए हमें मैथ्यू-लिखित जीवन-वृत्तान्त की प्रत्येक घटना को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। हम बपतिस्मा के प्रकरण में लिख चुके हैं कि ईसा का वास्तविक जन्म मरियम के पेट से पैदा होने से नहीं, बल्कि यरदन के किनारे यूहन्ना से बपतिस्मा लेने के बाद ही होता है। अपने इस वास्तविक जन्म के बाद बहुत ही शीघ्र महात्मा ईसा को शैतान की भयानक परीक्षा में पड़ना पड़ता है। इस अवसर पर उन्हें सचमुच जीवन और मृत्यु का सवाल हल करना पड़ा है। परन्तु उसका फल बहुत ही सुन्दर, कमनीय और आकर्षक निकला है। इस परीक्षा से ईसा ने अपने चरित्र के भीतर वह विशेषता सञ्चित कर ली है, जो संसार के विरले पुरुषों में ही होती है। अगर ईसा अपनी इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता तो आज शायद

उसका नाम लेते हुए हमारी छाती गर्व से फूल न जाती। इस आत्म-परीक्षा और संयम-सञ्चय के बाद ईसा के कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होने का समय आता है, परन्तु ईसा अपने कुछ सहयोगी बन्धुओ—सुयोग्य शिष्यो—की फ़िकर में दिखाई देते हैं, और मैथ्यू-लिखित चतुर्थ परिच्छेद के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते ईसा की यह मनोकामना भी पूर्ण हो जाती है। ईसा आत्म-परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका है, उसके दो-चार सहयोगी कार्यकर्ता भी बन गए हैं। अब समय आ गया है उसके समाज-सुधार के कार्य-क्षेत्र में उतरने का। परन्तु इस मार्ग में क़दम रखने से पहले उसे अपनी गति-विधि और उद्देश्य का निर्धारण कर लेना चाहिए, प्रचार के सम्बन्ध में अपनी नीति का भी विचार कर लेना चाहिए। ईसा-चरित्र के वास्तविक कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पहले इन सब विषयो पर प्रकाश डालने के लिए गिरि-प्रवचन नाम से ईसा का एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान होता है। इस व्याख्यान का विवरण देने के लिए मैथ्यू ने पूरे तीन परिच्छेद खर्च किए हैं। इससे पहले भी ईसा ने अनेक बार छोटे-छोटे उपदेश दिए हैं, परन्तु यह उसका पहला ही व्याख्यान था, जिसमे श्रोताओ की संख्या हज़ारों के लगभग पहुँच गई थी। उपस्थित जनता के सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है :—

"गलील से, दिकापुलिस से, जरूसलम से और जूडिया

से, और यहाँ तक कि यरदन के पार तक से हज़ारों की भीड़ उसके साथ हो ली।"

—मैथ्यू ४-२१

इतनी अच्छी जनता की उपस्थिति में ईसा ने अपने सिद्धान्तों के परिचय के लिए जो महत्वपूर्ण वक्तृता दी है, वह सर्वथा उसके अनुकूल है। ईसा ने अपने इस व्याख्यान का आरम्भ जिस ढङ्ग से किया है, उसमें एक अद्भुत सौन्दर्य है। व्याख्यान के प्रारम्भिक शब्दों में ईसा की नीतिज्ञता, नम्रता और दृढ़ता ने मिल कर एक अपूर्व इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। हम उस ढङ्ग को और उन शब्दों को देख कर विस्मित होते हैं, मुग्ध होते हैं और ज़बान से बेअख़्तियार निकल पड़ता है—वाह रे ईसा, वाह! पहाड़ के ऊपर एक ऊँचे स्थान पर ईसा खड़ा हुआ है और नीचे हज़ारों की भीड़ दूर-दूर तक फैली हुई है। यह है उस समय का साधारण दृश्य। व्याख्यान के लिए स्थान का चुनाव कितना सुन्दर हुआ है! इसके बाद ईसा का मुँह खुलता है—"धन्य हैं वह, जिनकी आत्माएँ निरभिमान हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।"

शब्द कितने नपे-तुले हैं! ईसा को जनता की ओर से सबसे पहली आवश्यकता इस समय निरभिमानता की है। समाज-सुधारकों के सामने इस प्रकार के प्रश्न प्रायः उपस्थित होते हैं। वह एक आदर्श का प्रचार करना चाहते

हैं और चाहते हैं उसे जनता के दिल पर जमा देना। परन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि जनता उनके शब्दों को सुनने को तैयार हो। इसमें सन्देह नहीं कि सुधारक के कार्य की सफलता का अधिकांश उसके अपने व्यक्तित्व, अपने ढङ्ग और अपनी युक्तियो के ऊपर निर्भर होता है। फिर भी उसे जनता की ओर से इतनी बात की आवश्यकता रहती है। प्रायः देखा गया है कि पण्डितमन्य लोग सुधारक की किसी बात को सुनना भी पसन्द नहीं करते, वह उसे और उसकी बातों को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उनके दिलों पर अहमन्यता का पर्दा पड़ा हुआ है, उसके भीतर किसी ऐसी-वैसी बात को प्रविष्ट होने की इजाज़त नहीं। सुधारक के कार्य के आधे विघ्न इस अहमन्यता के पर्दे के पीछे छिपे रहते हैं। इसीलिए ईसा के मुँह से सबसे पहले शब्द निकले हैं—"धन्य हैं वह, जिनकी आत्माएँ निरभिमान है, क्योकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।" इन शब्दो के द्वारा मानो ईसा जनता से अपील कर रहा है निरभिमानता के लिए। वह कह रहा है कि अपने दिल से कम से कम इस समय के लिए तो इन अहमन्यता के भावो को विदा कर दो। एक वार अभिमान छोड़ कर, निष्पक्ष होकर मेरी वात सुन तो लो; फिर तुम्हे जँचे तो मानना और न जँचे तो न सही।

इसके आगे ईसा दूसरी बात फिर कहता है—"धन्य

हैं वह, जो दुःख और पश्चात्ताप करते हैं, क्योकि वह शान्ति पाएँगे।"

पश्चात्ताप सुधार की पहली सीढ़ी है। शान्ति, सन्तोष और सुख पश्चात्ताप का अन्तिम ध्येय है। जब मनुष्य अपने किसी कार्य पर सच्चे दिल से पश्चात्ताप करता है, तब वहीं से उसके सुधार का प्रारम्भ होता है। वाल्मीकि आज ऋषि कहलाते है और भारतवर्ष के सबसे पूज्य व्यक्तियों में समझे जाते हैं, परन्तु उनके जीवन का प्रारम्भिक अंश लुटेरेपन में बीता है। यह पश्चात्ताप ही था, जिसने लुटेरे रत्नाकर का वाल्मीकि के रूप मे कायाकल्प कर दिया। ईसा अपने इन शब्दो के द्वारा लोगों के दिल पर उसी सच्चाई को नक्श करना चाहता है। उपस्थित जनता मे बहुत से बूढ़े होंगे, बहुत से जवान होंगे, जिनका सारा जीवन ही कुकर्म में बीत गया है। ऐसे लोग अपने सुधार से निराश हो चुके हैं, इसलिए उनके ऊपर ईसा के उपदेश का अभिलषित प्रभाव पड़ने की कम सम्भावना है। परन्तु ईसा जानता था कि—It is never too late to mend इसीलिए वह कहता है कि पश्चात्ताप सुख और शान्ति का जनक है। तुम्हे निराश होने की आवश्यकता नहीं। और आगे बढ़ कर ईसा कहता है—"धन्य हैं वह, जो धर्माचरण, नेकी, रास्तबाजी के भूखे हैं, क्योंकि वह तृप्त किए जायँगे।"

ईसा का उपदेश धर्माचरण, नेकी, रास्तबाज़ी का उपदेश

है, उन लोगों के लिए जोकि इन बातों के भूखे हैं। इसमें बहुत कुछ पौष्टिक खूराक मिलेगी। वह तृप्त किए जायँगे।

ईसा के अगले शब्द हैं—"धन्य हैं वह, जोकि दयालु हैं; क्योंकि उन पर भी दया की जायगी। धन्य हैं वह, जिनके कि मन शुद्ध हैं, क्योंकि वह परमेश्वर को देखेंगे। धन्य हैं वह, जो शान्ति के स्थापक हैं, क्योंकि वह परमेश्वर के पुत्र कहलाएँगे।"

बस जनता की ओर से ईसा को—एक सुधारक को—और कुछ नहीं चाहिए। अगर जनता अपनी ओर से इतनी बातो के लिए तैयार है तो उसके आगे कार्य रह जाता है सिर्फ सुधारक का। इसलिए जनता से इस अपील के बाद ईसा कुछ शब्द कहता है। अपने और अपने शिष्यों के प्रति ईसा के भीतर एक तरह की स्फूर्ति है, जो श्रोता के दिल मे दृढ़ता के भाव पैदा कर देती है। वह कहते हैं:—

"धन्य हैं वह, जो धर्माचरण के कारण सताए जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

"धन्य हो तुम, जब मनुष्य मेरे लिए तुम्हारी निन्दा करें, तुम्हे सताएँ और झूठ बोलते हुए तुम्हारे विरोध में सब प्रकार की बुरी बातें कहें, आनन्द मनाओ, मगन हो, क्योंकि स्वर्ग में तुम्हे इसका पुरस्कार मिलेगा। लोगो ने नबियो को भी इसी तरह सताया था।"

—मैथ्यू ५। १० से १२ तक

अभी तक ईसा एक प्रवाह में बहा चला जा रहा था, उसके हृदय में जोश था और वह अपने शिष्यों में भी उसी जोश को फूँक रहा था। अबकी उसने मार्ग बदला और नया ढङ्ग स्वीकार करके, जिसमें उत्साह के साथ युक्ति, स्तुति और प्रेम का सम्मिश्रण हो रहा है, वह अपने शिष्यो से कहता है—"तुम पृथ्वी के नमक हो।"

"जिस प्रकार भोजन में नमक एक अत्यन्त आवश्यक चीज़ है, उसी प्रकार संसार में तुम जैसे व्यक्तियों, सुधा-रकों की परमावश्यकता है। अगर लवण के बिना भोजन गोबर है तो इस प्रकार के सुधारकों के बिना पृथ्वी नरक है।

"यदि नमक का स्वाद बिगड़ जाय तो वह फिर किस वस्तु से नमकीन बनाया जायगा। दुनिया में कोई वस्तु उसको सुधारने वाली नहीं, फिर उसका उपयोग ही क्या रह जायगा।

"वह फिर किसी काम का नहीं, केवल यह कि बाहर फेंका और मनुष्यों के पैरों तले रौंदा जावे। इसलिए तुम्हें प्रति क्षण अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का ख्याल रखना चाहिए, ऐसा न हो कि कहीं स्वयं तुम भी कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो जाओ।"

ईसा अपने शिष्यों को दूसरा उदाहरण देता है—"तुम नगर का उजाला हो।"

"ध्यान रहे तुम्हारा उत्तरदायित्व कितना बड़ा है। तुम

नगर का उजाला हो, उसको प्रकाशित करने वाले हो, और संसार के पथ-प्रदर्शक हो। ऐसा न हो कि तुम भी किसी कुमार्ग पर चल दो। यह भी ख्याल न करना कि तुम कोई पाप छिपा कर कर सकोगे। तुम्हारे ऐसे कृत्य सबसे पहले सामने आएँगे। जो नगर पहाड़ पर बसा है वह छिप नहीं सकता। जिस तरह लोग दिया जला कर उसे ढँक कर दीवट पर रखते है, और वह घर के सब लोगो को उजाला देता है, वैसे ही तुम्हारा उजाला मनुष्यो के सामने चमके, जिससे कि वह तुम्हारे शुभ कर्मों को देख कर ईश्वर-भक्त बन सके।"

इस प्रकार वह जनता और अपने शिष्यो दोनो से आवश्यक अपील कर चुकने के बाद अब अपनी नीति की घोषणा करता है :—

"यह न समझो कि मै व्यवस्था या नबियो का उल्लङ्घन करने आया हूँ।" इस समय ईसा के इन शब्दो के कहने के दो कारण प्रतीत होते है। पहला यह कि कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होने के पहले वह अपनी नीति को स्पष्ट कर दे, और दूसरा यह कि इसके आगे जो शब्द कहे गए है, वह आपाततः प्राचीन लेखो से कुछ हटे हुए प्रतीत होते है। सम्भव है कि उनको सुन कर लोगो को कुछ भ्रम हो जाय, इसलिए ईसा इस विषय को पहले से ही स्पष्ट कर देना चाहता है। वस्तुतः वह शब्द उन प्राचीन लेखो के विरुद्ध

नहीं बल्कि, उनके स्वरूप को उज्ज्वलतर बनाने वाले हैं। यही ईसा का उद्देश्य था। उसके धर्म में पहुँच कर यहूदी-धर्म के सिद्धान्त उज्ज्वलतर हो उठे हैं। इसके आगे कुछ समय ईसा ने इसी प्रकार के आदेशों की व्याख्या में लगाया है, वह कहता है :—

"तुमने सुना है, प्राचीन लोगों ने आदेश दिया था कि व्यभिचार न करना, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई कुदृष्टि से किसी स्त्री की ओर देखे, वह उसके साथ मानसिक व्यभिचार कर चुका। इसलिए तुम किसी की ओर बुरी दृष्टि से देखो भी मत, बल्कि—

"यदि तुम्हारी दाहिनी आँख तुम्हें ठोकर खिलाती है, तुम्हें पथ से विचलित करती है, तो उसे निकाल कर फेंक दो ; क्योंकि सारे शरीर को नरक में डालने की अपेक्षा यह अच्छा है कि तुम्हारा एक अङ्ग नष्ट हो जाय।"

कितना सुन्दर आदेश है और कितना उच्च उपदेश!

"यह भी कहा गया है कि जो कोई अपनी पत्नी को त्यागे, वह उसे त्याग-पत्र दे, पर मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई व्यभिचार को छोड़ कर और किसी कारण से पत्नी का त्याग करता है, वह उससे व्यभिचार कराता है और जो कोई उस त्यागी हुई स्त्री से विवाह करता है, वह उससे व्यभिचार करता है।

"प्राचीन लोगों ने झूठी शपथ खाने का भी निषेध किया

है, पर मै तो कहता हूँ कि तुम्हे कभी शपथ खानी ही न चाहिए। न स्वर्ग की, क्योंकि वह परमेश्वर का सिंहासन है, न पृथ्वी की, क्योंकि वह उसकी पाद-पीठ है, न जरूसलम की, क्योंकि वह परमात्मा का विशेष स्थान है, और न अपने सर की, क्योंकि उसके एक भी बाल को सफेद या काला कर सकना तुम्हारी शक्ति के बाहर है।

"इसलिए तुम्हारा उत्तर, तुम्हारी बात हाँ और नही मे ही होना चाहिए, इसके आगे की बात शपथादि खाना पाप का—झूठ का—कार्य है।"

इसके आगे ईसा का वह स्वर्णोपदेश है, जो अपना सानी नहीं रखता, जो ईसा की अपनी मौरूसी जायदाद है :—

"Ye have heard that it hath been said, an eye for an eye and a tooth for a tooth, but I say unto you, resist not evil, but whosoever shall smite thee on thy right cheek turn to him the other also."

"तुमने आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत का आदेश भी सुना है, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि अपकार का प्रतिकार न करो। जो कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसके सामने दूसरा भी कर दो।"

"अपने पड़ोसी से प्रेम और अपने वैरी से वैर करने का आदेश भी तुमने सुना है, परन्तु मै तुमसे कहता हूँ कि

अपने शत्रु से भी प्रेम करो, अपने सताने वाले के लिए भी प्रार्थना करो। इससे तुम अपने स्वर्गीय पिता के सच्चे पुत्र कहलाओगे। क्योंकि वह सूर्य का उज्ज्वल आलोक भले और बुरे दोनों को देता है, मेघ की सुखदायिनी धारा पुण्यात्मा और पापी दोनों के लिए भेजता है।

"अगर तुम अपने प्रेम करने वालों से प्रेम करो तो उसमें पुरस्कार योग्य कौन सा कार्य है? क्या महसूल लेने वाले लोग भी ऐसा ही नहीं करते? और यदि तुम अपने भाइयों को नमस्कार करते हो तो इसमें कौन सा बड़ा कार्य करते हो। यह तो सभी लोग करते हैं और कर सकते है।"

स्वर्गीय आदेश है। यदि आज यूरोप की अशान्त आत्माएँ और साम्राज्य-लिप्सा इसको अपना जीवन-लक्ष्य बना सकती तो दुनिया से अशान्ति का राज्य उठ जाता। परन्तु नहीं—ईसा! तुम स्वर्गीय विभूति हो, तुम्हारे आदेशों में स्वर्गीय झलक थी। यूरोप—अन्धा यूरोप—कमजोर मनुष्य—तुम्हारे उस स्वर्णोपदेश का पालन नहीं कर सकता। तुम्हीं ने तो कहा था कि घूरे पर लाल मत बिखेरो, फिर तुमने इन लालों को क्षुद्र मनुष्यों के सामने क्यों बिखेर दिया?

ईसा के मुख से जो कुछ निकला है, वह आदर्श है। अब तक उसने जो कुछ कहा था उसका ढङ्ग दूसरा था, अब की वह ढङ्ग बदल गया, परन्तु बात और आदर्श में कोई अन्तर नहीं हुआ है। संसार की प्रवृत्ति है कि मैं जो कुछ

अच्छा कार्य करूँ, वह दुनिया भर में प्रसिद्ध हो जाय। फिर चाहे उसकी मात्रा कितनी ही थोड़ी क्यों न हो।

रस्किन ने अपने एक व्याख्यान में कहा है :—

"I am not about to attack or defend the impulse. I want you only to feel how it lies at the root of effort especially of all modern effort. It is the gratification of vanity which is with us, the stimulus of toil and balm of repose, so closely does it touch the every spring of life that the wounding of our vanity is always spoken of (and truly) as in its measure mortal : we call it mortification using the same expression which we should apply to a gangrenous and incurable bodily hurt. And although few of us may be physician enough to recognise the various effect of this passion upon health and energy, I believe most honest men know and would at once acknowledge its leading power with them as a motive. The seaman does not commonly desire to be made captain only because he knows, he can manage the ship better than any other sailor on board. He wants to be made captain that he

may be called captain. The clergyman does not usually want to be made a bishop only because he believes that no other hand can as firmly as his, direct the diocese through its difficulties. He wants to be made bishop primarily that he may be called My Lord and a prince does not usually desire to enlarge or subject a kingdom because he believes that no one else can as well serve the state upon the throne, but briefly because he wishes to be addressed as Your Majesty by as many lips as may be brought out such utterance."

साधारणतः लोगों की प्रवृत्ति है कि वह किसी अच्छे काम को अपना कर्त्तव्य समझ कर नहीं करते। उसके साथ प्रसिद्धि का भाव भी सम्मिलित—सम्मिलित ही नहीं, बल्कि मुख्य—रहता है। रस्किन ने इस प्रकरण में तीन उदाहरण दिए हैं, एक नाविक (Seaman) का, दूसरा पुरोहित (Clergyman) का, और तीसरा राजकुमार (Prince) का। तीनों नाम उसने ऐसे ही नहीं रख दिए है, उनके भीतर संसार भर का अन्तर्भाव हो जाता है। अमीर और ग़रीब, साधारणतः लौकिक लोगों के दो भेद हैं। मल्लाह ग़रीब संसार का प्रतिनिधि है, और प्रिन्स है

समृद्ध संसार का प्रतिनिधि। इन दोनों के कार्यों के भीतर वही भाव काम करता नज़र आता है। इन दोनों में से एक भी ऐसा नहीं, जो अपना कर्त्तव्य समझ कर कार्य का उत्तरदायित्व लेने का यत्न करता हो। अर्थात् संसार का हर एक व्यक्ति, चाहे वह अमीर हो या ग़रीब, उसी सम्मानलिप्सा से प्रेरित होकर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। अब रस्किन के उदाहरणों में एक नाम और शेष रह जाता है और वह है पुरोहित का नाम। इस उदाहरण को चुनने मे भी रस्किन का विशेष उद्देश्य है। सम्भव है कि संसार के अमीर और ग़रीब आदमी उसी उद्देश्य से कार्य में प्रवृत्त होते हो, परन्तु वह आदमी, जिन्हें धर्म का विशेष ख़्याल है, अपना कर्तव्य समझ कर ही कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होते हैं। रस्किन ने इसी आशङ्का के निवारण के लिए तीसरा नाम रक्खा है। पुरोहित से बढ़ कर धार्मिक प्रवृत्ति के लोगो का प्रतिनिधि और कौन हो सकता है? परन्तु संसार के धार्मिक ठेकेदारो के दिल में भी इस सम्मानलिप्सा ने अपना पूरा आधिपत्य जमा रक्खा है, वह भी जो कोई काम करना चाहते हैं, सिर्फ़ दिखाने के लिए। फलतः संसार भर मे ऐसे व्यक्तियो की अधिकता है, जो प्रतिष्टा की कामना से, केवल दिखाने के लिए कार्य करते है। वह अगर दान देते हैं तो उसी भाव से, अगर उपवास करते हैं तो वहाँ भी वही भाव है, और अगर ईश्वर की

आराधना करते हैं, तो वहाँ भी भक्त कहाने की भावना उनका पीछा नहीं छोड़ती। यह है इस संसार की प्रवृत्ति और उसके तमाम शुभ कार्यों का उद्देश्य। परन्तु आओ, एक बार उस स्वर्गीय आत्मा के पवित्र सन्देश को तो सुनें, देखें वह क्या कहता है। इसी गिरि-प्रवचन (सरमन ऑन दि माउण्ट) की अगली पंक्तियाँ हैं :—

"इस बात का सदैव ध्यान रक्खो कि तुम मनुष्यों के सम्मुख दिखाने के लिए अपने धर्म कार्य न करो, नहीं तो उस स्वर्गीय पिता से तुम उनका कुछ भी फल न पा सकोगे। इसलिए तुम जब दान करो तो कपटियों की तरह अपने आगे तुरही मत बजवाओ, ताकि लोग तुम्हारी बड़ाई करें। मैं सच कहता हूँ कि वह लोग, जो ऐसा करते हैं, अपना फल पा चुके, इससे अधिक उनके दान का कोई महत्व नहीं।

"इसलिए जब तुम दान करो तो तुम्हारे दाहिने हाथ के कार्य को और तो कौन, खुद बायाँ हाथ भी न देख सके, तुम्हारा दान इतना गुप्त रूप से हो और तुम्हारा पिता, जो गुप्त रूप से उसे देख रहा है, गुप्त रूप से तुम्हे उसका फल देगा।

"जब तुम प्रार्थना करो तो कपटियों के समान न करो, उनको, लोगों को दिखाने के लिए सभाओं और सड़कों के मोड़ पर खड़े होकर प्रार्थना करना अच्छा मालूम देता

है। मैं सच कहता हूँ कि उनकी प्रार्थना का फल समाप्त हो चुका।

"इसलिए जब तुम प्रार्थना करो तो अपनी कोठरी मे जाकर, द्वार बन्द कर उस अगोचर प्रभु से प्रार्थना करो। वह तुम्हारे उस कृत्य को देख रहा है और तुम्हे उसका फल अवश्य देगा।

"जब तुम उपवास करो तो धूर्तों की तरह तुम्हारे मुँह पर उदासी न छावे, क्योंकि वह अपने मुँह को मलिन करते है कि लोगो को उपवासी दिखाई दें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह अपना फल पा चुके। परन्तु जब तुम उपवास रक्खो तो अपना मुँह धोओ और सर पर तेल मलो, ताकि तुम लोगों को नही, बल्कि उस प्रभु को उपवासी दिखाई दो।"

कितना सुन्दर उपदेश है। इस गिरि-प्रवचन में ईसा ने मानो संसार के सामने स्वर्गीय सन्देशो का खज़ाना खोल दिया है। उसके एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द अनमोल रत्न हैं। काश कि हमारी कमजोर आत्माएँ उसका अनुकरण कर सकें। ईसा इसके आगे फिर कहता है :—

"अपने लिए इस पृथ्वी पर, जहाँ कीड़े और काई बिगाड़ते हैं और जहाँ चोर सेंध लगाते और चुराते हैं, धन बटोरने की कोशिश मत करो, बल्कि अपने लिए उस स्वर्गीय सम्पत्ति का सञ्चय करो, जिसे न कीड़े बिगाड़ सकते हैं, न काई खा सकती है, और न चोर चुरा सकते हैं।"

"अगर तुम इस संसार के वैभव को इकट्ठा करने का यत्न करोगे तो तुम्हारा मन भी यहीं रमा रहेगा, और यदि तुमने एक बार उस दिव्य द्रव्य का, उस अलौकिक रत्न का स्वरूप देख लिया तो तुम पृथ्वी पर नहीं, स्वर्ग में विचरोगे।

"क्योंकि जहाँ तुम्हारा धन है, वहीं तुम्हारा मन भी लगा रहेगा।"

ईसा के अगले शब्द है :—

"शरीर का दीपक आँख है, इसलिए अगर तुम्हारी आँख निर्मल है, तो तुम्हारा सारा शरीर दीप्त, आलोकित और उजला रहेगा। पर यदि तुम्हारी आँख बुरी है तो तुम्हारा सारा शरीर अन्धकारमय, मलिन होगा। और ज़रा कल्पना करो उस अन्धकार की, जब कि प्रकाश की एकमात्र क्षीण रेखा भी सहसा अन्धकार के प्रवाह मे विलीन हो जाय तो वह कितना भयानक अन्धकार होगा।

"जो तुम्हारा दीपक है, वही यदि अन्धकारमय हो तो वह अन्धकार कैसा भीषण होगा!"

"थोड़ा और आगे बढ़ो, स्वर्गीय मन्दाकिनी की विमल धारा बह रही है। उसमें ग़ोते लगाओ और अपने को पवित्र करो, धन्य बनाओ।"

ईसा फिर कहते हैं :—

"कोई व्यक्ति दो स्वामियो की सेवा नही कर सकता, क्योकि वह एक से प्रेम करेगा और दूसरे से बैर रक्खेगा, या

एक से मिला रहेगा और दूसरे की उपेक्षा करेगा। फलतः तुम ईश्वर और धन दोनों की सेवा नहीं कर सकते। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने लिए यह चिन्ता न करना कि क्या खाऊँगा और क्या पिऊँगा और न अपने शरीर के लिए कपड़ो की चिन्ता करना। क्या तुम्हारा जीवन—सच्चा जीवन—इस दाल-रोटी से बढ़ कर नहीं है?"

"फिर तुम उस सच्चे जीवन को प्राप्त करने में अपनी मनोवृत्ति क्यों नहीं लगाते? खाने-पीने की फ़िकर मे सांसारिक चिन्ताओं मे पड़ कर क्यों अपने जीवन को नष्ट कर रहे हो? यह मत सोचो कि यह सांसारिक चिन्ताएँ ही तुम्हारे जीवन का आधार, देह और प्राण के सम्बन्ध की संस्थापक हैं, उनके बिना तुम्हारा जीवन स्थिर नहीं रह सकता।

"आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों को देखो, वह न जोतते हैं, न बोते है, न काटते हैं और न खत्तियाँ भरने की फिकर करते है, फिर भी वह स्वर्गीय पिता प्रभु उनका भरण और पोषण करते हैं। क्या तुम उससे बढ़ कर नहीं हो?

"प्रभु ने तुम्हे पैदा किया है तो उसने तुम्हारी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक सामान की भी सृष्टि कर दी है। जो वस्तु जीवन-यात्रा के लिए जितनी ही अधिक आवश्यक है, वह संसार मे उतनी ही अधिक सुलभ है। वायु, जिसके विना हम एक क्षण भी जिन्दा नहीं रह सकते, प्रभु के प्रसाद से जहाँ चले जाओ वहीं मिलेगी। लेकिन मसनूई चीजें—

बनावटी बातें—जिनका मनुष्य-जीवन के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, उनके सञ्चय करने मे ही मानव-जाति का तन-मन-धन व्यय हो रहा है। फिर भी उनकी चिन्ताओं का अन्त नहीं होता। संसार की अशान्त आत्माएँ इन तमाम चिन्ताओं और आविष्कारों के बाद भी उतनी ही अशान्त बनी हुई हैं। वह सुख और वह परमानन्द, जो भारत का एक लँगोटबन्द ऋषि शहर और गाँवों से दूर, उस एकान्त, निर्जन और विशाल वन में, हिमालय की उन अँधेरी कन्दराओं में बैठ कर, ब्रह्म-समाधि में लीन होकर प्राप्त करता है, इन अशान्त और चिन्ताशील आत्माओं को स्वप्न में भी नसीब नहीं। किसी कवि ने चित्र खींचा है :—

महो रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोयमनिलः।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरति वनिता सङ्गि मुदिता,
सुखं शान्तं शेते नृप इव पृथिव्यां ऋषिवरः॥

कहो, कौनसी कमी है? 'सुखं शान्तं शेते नृप इव पृथिव्यां ऋषिवरः'—भारत का एक वहशी कहलाने वाला लँगोटबन्द ऋषि ज़मीन पर पड़ा सो रहा है। कैसे 'सुखं शान्तं' और फिर 'नृप इव'—कैसा सुन्दर दृश्य है! उसे गद्देदार पलँगों की चिन्ता नहीं, यही विपुला पृथ्वी उसकी रम्या शय्या है। उसे बड़े-बड़े गाव-तकियों की भी ज़रूरत नहीं, उनके स्थान पर है 'विपुलमुपधानं भुजलता', ऊपर सुन्दर नीली

चाँदनी टँगी हुई है, फिर किसी और वितान की क्या जरूरत? 'व्यजनमनुकूलोयमनिलः' बिजली का नहीं, प्रभु का दिया प्राकृतिक पङ्खा चल रहा है। यह वह सुख है, जिसके लिए उसे चिन्ता करने की जरूरत नहीं, वह तो स्वयं 'उपेयुषोः मोक्षपथं मनस्विनः' उस प्रभुपुर का अश्रान्त पथिक बना हुआ है। यह सब तो दे रहा है उसका स्वर्गीय पिता। इस चिन्ता न करने का एक कारण और है। ईसा कहते हैं:—

"तुममें से कौन है, जो चिन्ता करने से अपनी अवस्था में एक घड़ी भी बढ़ा सकता है?

"और वस्त्रों के लिए क्यों चिन्ता करते हो? इस खुले मैदान के उन सुन्दर पौधों को देखो, वह कैसे बढ़ते हैं। वह न मेहनत करते है और न कातते हैं, लेकिन फिर भी मैं सच कहता हूँ, स्वयं सुलेमान भी अपनी सारी सम्पत्ति और वैभव लगा कर उनमें से किसी के बराबर सुन्दर और चित्ताकर्षक पोशाक न पहिन सका। फिर जब कि प्रभु उस घास को, जो आज मैदान मे खड़ी है तो कल भाड़ मे झोंक दी जायगी, इतनी सुन्दर पोशाक पहिनाते हैं, तो हे अल्प-विश्वासियो! क्या वह तुम्हे न पहिनावेगा?

"तुम यह चिन्ता न करो कि क्या खाएँगे, क्या पिएँगे, और क्या पहिनेंगे। क्योंकि तुम्हारा स्वर्गीय पिता जानता है कि तुम्हे इन सबकी जरूरत है।

"पहले उसके राज्य और धर्म की खोज करो, फिर यह सब वस्तुएँ तुम्हे स्वयं मिल जायँगी।

"तुम कल की चिन्ता न करो, क्योंकि कल अपनी चिन्ता आप करेगा, आज के लिए आज का ही दुःख बहुत है।"

ईसा का व्याख्यान अब तीसरा पहलू पकड़ता है :—

"तेरी आँख मे लट्ठा पड़ा हुआ है, उसे न देख कर अपने पड़ोसी की आँख मे पड़ा तिनका तुझे क्यों खटकता है? जब तू अपनी आँख का लट्ठा नही देख सकता तो अपने भाई से क्योंकर कह सकता है कि ठहर जा, मै तेरी आँख से तिनका निकाल दूँ। हे कपटी, पहले अपनी आँख का लट्ठा निकाल, तब अपने भाई की आँख का तिनका भली-भाँति देख कर निकाल सकेगा।"

कितना सुन्दर उपदेश है, उनके लिए, जिनके लिए तुलसीदास ने कहा है—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे"। उन्हीं के लिए किसी संस्कृत के कवि ने लिखा है—"परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।" कितना सुन्दर उपदेश है। अगर मनुष्य अपने दोषों को स्वयं भी देखने लगे, तो संसार-सुधार की समस्या बहुत कुछ हल हो जाय।

> बुरा जो ढूंढन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
> जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

"पवित्र वस्तुओं को कुत्तों को न दो, और न अपने मोती सुअरों के आगे डालो। ऐसा न हो कि वह उन्हें

पाँवो तले कुचलें और बदले मे तुम्हारे ऊपर भी आक्रमण करें।"

सच है, उपदेश सदा पात्रापात्र का विचार करके ही देना चाहिए। मूर्खों के हृदय पर उसका प्रभाव उल्टा ही होता है। ईसा और दयानन्द अन्त को ऐसे ही अज्ञात्माओं के शिकार हुए। इसीलिए हमारे शास्त्रकार लिख गए हैं :—

पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विष वर्धनं।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये॥

ईसा आगे कहते हैं :—

"माँगो तुम्हें दिया जायगा, ढूँढ़ो तुम पाओगे, खटखटाओ तुम्हारे लिए खोला जायगा। क्योंकि जो माँगता है उसे मिलता है, जो ढूँढ़ता है वह पाता है, और जो खटखटाता है उसके लिए खोला जाता है।"

यही भाव है, किसी हिन्दी-कवि ने लिखा है :—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौ वौरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ॥

और सुनो, ईसा कहते है :—

"तुममे ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने पुत्र के रोटी माँगने पर उसे पत्थर दे, या मछली माँगने पर साँप दे? इसलिए जब तुम पापी मनुष्य होकर अपने पुत्रों को अच्छी वस्तुएँ देना चाहते हो, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता अपने माँगने वाले पुत्रों को अच्छी चीज़ क्यो न देगा?

"जो कुछ तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो, यही व्यवस्था है और यही नबियों की शिक्षा है।"

दो और दो चार, सच्चाई एक—सिर्फ एक—है। उसका मार्ग बहुत सकरा है। परन्तु झूठ का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमें तुम यथेष्ट विचरण कर सकते हो, पर सच्चाई के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलना है।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।

वह पथ सङ्कीर्ण है, 'अभीक्ष्णमक्षुण्ण तयाति दुर्गम' है। मगर जाता है उस स्थान को, जहाँ सुख है, शान्ति है और है:-

उपेयुषो मोक्ष पथं मनस्विन
स्त्वमग्र भूमिर्निरपाय संश्रया।

इसीलिए तो ईसा कहते हैं:—

"सकरे फाटक से प्रवेश करो, क्योंकि चौड़ा है वह मार्ग और चाकल है वह फाटक, जो विनाश को पहुँचाता है। संसार के अधिकांश मनुष्य उसी रास्ते से प्रवेश करते हैं, क्योंकि सङ्कीर्ण है वह फाटक और सकरा है वह मार्ग, जो जीवन को—सच्चे जीवन को पहुँचाता है। संसार में विरले ही लोग उसे पाते हैं।"

अन्त में अपने उपदेश को समाप्त करते हुए ईसा कहते हैं:—

"जो कोई मेरी बात सुन कर उसे मानेगा, वह उस बुद्धिमान् पुरुष की तरह ठहरेगा जिसने अपना घर चट्टान के ऊपर खड़ा किया, मेंह बरसा, बाढ़ें आईं, आँधियाँ चलीं और उस पर लगीं, पर वह न गिरा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली गई थी।

"पर जो कोई मेरी इन बातों को सुन कर उनके अनुकूल आचरण न करेगा, वह उस निर्बुद्धि पुरुष की तरह ठहरेगा जिसने अपना घर बालू पर बनाया और वह थोड़ी वर्षा, हलकी सी आँधी और साधारण सी बाढ़ में गिर कर सत्यानाश हो गया।"

"जब ईसा यह बातें कह चुका तो लोग उसके उपदेश से चकित हुए, क्योंकि वह उन शास्त्रियों के समान नहीं, बल्कि अधिकारी की तरह उपदेश देता था।"

सचमुच ईसा अधिकारी था, इस प्रकार के उपदेश देने का। उसका अपना चरित्र इससे भी अधिक उज्ज्वल था। वह सिर्फ पर-उपदेश-कुशल ही न था, बल्कि स्वयं अपने क्रियात्मक जीवन मे स्थान देने वाला था। इस गिरि-प्रवचन में इतनी अधिक शिक्षाओं का एकत्र अन्तर्भाव कर दिया गया है, जो एक व्याख्यान में आवश्यकता से अधिक प्रतीत होती हैं। ऐसा मालूम होता है कि लेखक ने इसमें समय-समय पर दिए गए ईसा के अनेक उपदेशों का संग्रह कर दिया है।

प्रचार-नीति और ईसा के चमत्कार

बपतिस्मा और गिरि-प्रवचन के रूप में अपने इस भाषण के बाद ईसा अपने प्रकृत कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। यहाँ से उसके जीवन का एक नया पहलू शुरू होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यहाँ से उसके जीवन का चामत्कारिक भाग प्रारम्भ होता है। हर एक परिच्छेद में और हर एक स्थल पर ईसा के अद्भुत चमत्कार दिखाई देंगे। क्या मैथ्यू में, क्या मार्क में और क्या ल्यूक में, सर्वत्र यह चमत्कार ईसा-चरित्र के प्रधान अंश बने हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा ने इस रहस्यमय सिद्धान्त को समझ लिया था कि यह चामत्कारिक नीति उसके प्रचार-कार्य में बड़ी सहायक होगी। इसीलिए हम देखते हैं कि ईसा जब कहीं किसी नवीन स्थल पर पहुँचते हैं तो प्रारम्भ में वह वहाँ व्याख्यान नहीं देते, उपदेश नहीं देते और धर्म-शास्त्रों की चर्चा भी नहीं उठाते; बल्कि उनका सबसे पहला कार्य होता है रोगियों को अच्छा करना। अपने इस कार्य के द्वारा वह सबसे पहले उस देश के निवासियों के दिल पर क़ाबू करने का यत्न करते हैं, और उसके बाद मस्तिष्क पर प्रभाव डालने के लिए धर्म-चर्चा, उपदेश और व्याख्यान से काम लेते हैं। सचमुच प्रचार-नीति का यही रहस्य है। जिन लोगों को इस क्षेत्र में कार्य

करना है, वह अगर अपने धार्मिक ज्ञान के साथ आयुर्वेद में भी कुछ अभ्यास रखते हो तो वह सोने में सुगन्ध का काम देगा और उनके प्रचार-कार्य में बहुत बड़ा सहायक होगा। ईसा के चरित्र-लेखकों ने उसके इस कार्य का वर्णन करते समय कुछ अत्युक्ति से काम लिया है, इसीलिए बिल्कुल स्वाभाविक और सम्भव घटनाएँ भी अविश्वसनीय सी हो उठी हैं। उन्होने सचमुच वास्तविक घटनाओं को चमत्कार बना दिया है। उदाहरण के लिए हम एक घटना का उल्लेख करते हैं :—

"जब वह उस पहाड़ पर से उतरा तो तमाम भीड़ की भीड़ उसके पीछे हो ली, और एक कोढ़ी पास आ, प्रणाम कर, उससे कहने लगा कि हे प्रभु ! यदि आप चाहे तो मुझे अच्छा कर सकते हैं, ईसा ने हाथ बढ़ा कर उसे छुआ और कहा कि मैं चाहता हूँ कि तुम अच्छे हो जाओ, और उसका कोढ़ तत्काल अच्छा हो गया।"

—मैथ्यू ८। १ से ३ तक

कोई कोढ़ी ईसा की प्रशंसा सुन कर उनके पास आया हो, यह सम्भव है। उसने जो कुछ कहा है, वह भी सम्भव है और उस पर ईसा का दिया हुआ जवाब भी अविश्वसनीय नहीं, परन्तु इससे आगे की घटना 'और उसका कोढ़ तुरन्त अच्छा हो गया' लेखक का अपना नोट है। और ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें ऐतिहासिक सत्यता की अपेक्षा

मैथ्यू की श्रद्धा का भाव अधिकांश में सम्मिलित हो गया है। इसीलिए वह बढ़ कर कुछ ऐसी अत्युक्ति सी हो गई है, जिस पर सहसा विश्वास करने को जी नहीं चाहता। हम जानते हैं कि ईसा इस विषय में सिद्धहस्त था। निकोलस नोटोविच ने भी उसकी इस विशेषता का उल्लेख किया है कि उसने आयुर्वेद में अच्छा अभ्यास किया था। सम्भव है कि उसे इस रोग की कोई रामबाण चिकित्सा मालूम हो, जिसके ज़रिए वह बड़े-बड़े रोगियों को बहुत जल्दी अच्छा कर सकता हो। परन्तु फिर भी मैथ्यू के लेख से कुछ ऐसा भाव प्रतीत नहीं होता। अगर मैथ्यू के सामने हम उनके इस कार्य का उपपादन ईसा के आयुर्वेद-ज्ञान के सहारे करते तो इससे शायद उनके दिल को ठेस ही पहुँचती। उनका ईसा मनुष्य नहीं, वह परमात्मा का पुत्र है, भगवान का अंश है, और उनका श्रद्धेय है। वह जो कुछ करता है, अपनी अलौकिक शक्ति के सहारे। उसका आयुर्वेदिक उपपादन उनके लिए असह्य हो उठता। ख़ैर इसमें मैथ्यू का कोई दोष नहीं, यह तो भक्ति, श्रद्धा और अन्ध-विश्वास का कार्य है।

रोगी के अच्छा हो जाने के बाद ईसा के मुख से कुछ शब्द निकले हैं, वह सचमुच ईसा के विशुद्ध चरित्र और उच्च व्यक्तित्व के परिचायक हैं। ईसा उस रोगी से कहते हैं—"देखो, इस बात का किसी से ज़िक्र न करना।" मानो उन्होंने कोई बड़ा भारी पाप कर डाला हो। यह

मनोवृत्ति है महान् आत्माओं की। इसीलिए हमें ईसा-चरित्र पर श्रद्धा है। साधारण कोटि के मनुष्य जब कोई अच्छा काम कर लेते है, तो उनकी मनोकामना यही रहती है कि उनका डङ्का दुनिया भर में बज जाय :—

" It is the gratification of our vainity which is with us the stimulus of toil and the balm of repose."

दूसरी ओर महात्मा ईसा के शब्द हैं—"देखो इस बात का किसी से ज़िक्र न करना।" ईसा ने गिरि-प्रवचन में कहा था कि तुम कोई शुभ कार्य लोगों को दिखाने के लिए मत करो, इसी सैद्धान्तिक जीवन ने प्रकृत में उनके क्रियात्मक जीवन के साथ अद्भुत सामञ्जस्य के साथ मिल कर उनके चरित्र को ऊँचा, और इतना ऊँचा बना दिया है कि जहाँ साधारण आदमियों का पहुँच सकना 'प्रांशु लभ्ये फले मोहादुद्‌बाहुरिव वामनः' का उदाहरण हो रहा है।

ईसा-चरित्र के लिए इस प्रकार के उद्गार कोई नवीन वात नहीं हैं, यह तो उसकी प्रकृति में शामिल हो चुके हैं। इसलिए उनकी झलक हमें जगह-जगह दिखाई देती है। नवम परिच्छेद में फिर इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख है। मैथ्यू लिखते हैं :—

"जब ईसा वहाँ से आगे बढ़ा तो दो अन्धे उसके पीछे पुकारते हुए दौड़े कि हे दाऊद के सन्तान, हम हम पर दया

कर। जब वह घर में पहुँचा तो वह अन्धे उसके पास आए और ईसा ने उनसे कहा कि क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं यह कर सकता हूँ। उन्होंने जवाब दिया कि हाँ प्रभु, हमें विश्वास है। तब ईसा ने उनकी आँखें छूकर कहा, तुम्हारे विश्वास के अनुसार ही होगा, और तत्काल उनकी आँखें खुल गई। ईसा ने उन्हे सावधान करके कहा देखो, यह बात किसी को मालूम न हो।"

—मैथ्यू ६। २७ से ३० तक

फलतः यह वाक्य तो उनका तकिया-कलाम सा हो रहा है, वह चाहते हैं कि उनके किसी शुभ कार्य की शोहरत न हो, परन्तु आग की चिनगारी रूई के ढेर में पड़ कर छिपी रह जाय, यह असम्भव है। धीरे-धीरे नहीं, बड़ी तीव्रता से उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई।

ईसा-चरित्र में इस प्रकार की चामत्कारिक घटनाएँ जगह-जगह पर देखने को मिलती हैं। उनके चरित्र-लेखकों के विवरणों को देख कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन पर श्रद्धा का कितना गहरा रङ्ग दे दिया गया है। यद्यपि मैथ्यू और उनके ही जैसे लोगों की श्रद्धा हमे इजाज़त नहीं देती, फिर हमारी भी समझ में ईसा के इस प्रकार के चमत्कारों में किसी लोकोत्तर शक्ति का हाथ नहीं है, बल्कि वह ऐसे कार्य हैं जो मानव-शक्ति के बाहर नहीं हैं। हाँ, इस कार्य के लिए कठिन साधना की आवश्यकता अवश्य होती है।

विश्वास की महिमा

ईसा-चरित्र के आठवें और नवें परिच्छेद में भी अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। आठवें परिच्छेद में तो ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने विश्वास की महिमा प्रकट करने के लिए ही अपने संग्रह में उन घटनाओं की अवतारणा की है। हमारा अनुभव है, और विशेषज्ञों का सिद्धान्त है कि विश्वास के भीतर एक बड़ी भारी शक्ति छिपी हुई है। विश्वास का मानव-जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि बड़े से बड़े रोग इस विश्वास के कारण बिना किसी दवा के, दवा के नाम पर दी गई राख और पानी से ही अच्छे हो जाते हैं। अनेक बार स्वस्थ, खूब हट्टा-कट्टा मनुष्य इसी विरुद्ध विश्वास के कारण दिन प्रति-दिन अपना स्वास्थ्य नष्ट करता हुआ अन्त को रोग-शय्या पर जा पड़ता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारी दृष्टि में हैं, परन्तु हमें विश्वास है कि हमारे पाठकों को भी इस प्रकार के उदाहरण देखने का अवसर अवश्य मिला होगा, इसलिए हम यहाँ उन उदाहरणों को देकर विषय को बढ़ाना नहीं चाहते। जो कुछ भी हो, परन्तु ईसा ने इस रहस्यमय सिद्धान्त को समझा और अच्छी तरह समझा था। ईसा-चरित्र का विशाल भवन इसी आधार पर खड़ा है, उसके दरो-दीवार से एक ही आवाज़ आती है और वह है

विश्वास, आत्म-विश्वास, ईश्वर-विश्वास । ईसा-चरित्र की प्रस्तावना का पहला पद है विश्वास । बपतिस्मा की नान्दी के बाद, ईसा-चरित्र की प्रस्तावना का प्रारम्भ है । महात्मा ईसा की उस विकट आत्म-परीक्षा का सार है विश्वास! ईसा—ईश्वर-भक्त ईसा—४० दिन से उपवास कर रहा है दूसरी ओर शैतान ने संसार का सारा साम्राज्य, सुख और वैभव दाँव पर लगा दिया है । एक ओर मौत का दरवाजा खुला हुआ है, दूसरी ओर लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी है, बीच में पहाड़ की तरह स्थिर ईसा खड़ा है । आज उसके विश्वास की परीक्षा है । परन्तु शैतान अपनी सारी शक्ति लगा कर भी उसे विश्वास से विचलित न कर सका :—

न पादपोन्मूलन शक्ति रहंः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ।

उसके बाद जगह-जगह पर ईसा के इस विश्वास का दिव्य दर्शन हुआ है । एक जगह उसने कहा है कि तुम्हारे विश्वास में इतनी शक्ति है कि अगर तुम पहाड़ से कह दो कि वह हट जाय, तो यह असम्भव है कि वह न हटे । फलतः ईसा-चरित्र का प्रारम्भ इसी विश्वास से होता है । उस मध्य भाग में भी वही विश्वास ऊँचे आसन पर बैठा है और अन्त को ईसा-चरित्र का यवनिकापात भी उसी विश्वास के परिणाम में होता है । उसके शत्रु कहते हैं :—

"He trusted God, let him deliver him now,

if he will have him, for he said I am the son of God."

Matthew C. 27. V. 43.

ईसा-चरित्र के उत्थान और पतन का रहस्य यही विश्वास है। इस आठवें परिच्छेद में ईसा ने जितने रोगियों को अच्छा किया है, प्रायः सब के सब अपने इस विश्वास के कारण अच्छे हुए हैं। एक बार की बात है :—

"जब वह कफरनाहूम में आया तो एक सूबेदार ने आकर उससे विनती की कि हे प्रभु! घर में मेरा एक नौकर झोले का मारा पड़ा है। ईसा ने कहा कि मैं चल कर उसे अच्छा करने का यत्न करूँगा। सूबेदार ने कहा कि प्रभु! मैं इस योग्य नहीं कि आप मेरी छत तले आवें, इसलिए आप यहीं से कुछ कह दीजिए, मुझे विश्वास है कि मेरा सेवक अच्छा हो जायगा।"

—मैथ्यू ८। ५ से ८ तक

ईसा ने जब यह सुना तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने साधारणतः लोगों में इतना विश्वास न देखा था। उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि उसके सजातीयों में यह विश्वास घर कर सके। इसलिए जब उसने दूसरे के मुँह से यह बात सुनी तो उसे आश्चर्य और उसके साथ अपने सजातीयों की मनोवृत्ति पर कुछ दुःख हुआ। वह कहते हैं :—

"मैंने आज तक ऐसा विश्वास न देखा, यहाँ तक कि

सचमुच ईसा विकट कण्टकाकीर्ण पथ का पथिक बना था, वह जिस मार्ग पर चल रहा था, उसमें सुख नहीं है, शान्ति नहीं है और प्राणों की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। वह स्वयं तो अपने प्राण हथेली पर लिए घूम रहा है और जो कोई भी उसका अनुयायी बनना चाहे उसे अपने सुख को त्यागना होगा, ऐश्वर्य को त्यागना होगा और उससे भी बढ़ कर त्यागना होगा अपने प्राणों के मोह को :—

"If any man will come after me, let him deny himself and take up his cross daily and follow me."

Luke C. 9. 23

"अगर कोई व्यक्ति मेरा अनुयायी बनना चाहे तो उसे अपने अस्तित्व से इन्कार कर देना चाहिए। अपने प्राणों का भरोसा छोड़ देना चाहिए और अपना क्रूस उठा लेना चाहिए। उसे अपने को मौत के अर्पण कर देना चाहिए। इसी क्रूस पर उसे सूली दी जायगी। जब उसके भीतर इतनी शक्ति हो जाय तब वह मेरा अनुयायी—इस सुधार-पथ का पथिक—बन सकता है।

मैथ्यू ने भी ईसा के इस भाव का उल्लेख किया है :—

"And he that taketh not his cross daily and followeth after me is not worthy of me."

Matthew C. 10 V. 38.

ईसा के अनुगामी बनने वाले को अपने धन का मोह छोड़ना पड़ेगा, अपने परिवार का मोह छोड़ना पड़ेगा और अपने प्राणों का मोह छोड़ना पड़ेगा :—

"यह मत समझो कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने आया हूँ, मैं मिलाप कराने नहीं, बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मै तो आया हूँ इसलिए कि पिता को पुत्र से, बेटी को उसकी माँ से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ।"

तात्कालिक परिस्थिति में धर्म के नाम पर, उपयोगिता वाद के नाम पर, और जाति-हित के नाम पर यही उचित था, यही धर्म था और यही कर्त्तव्य था।

प्रायः लोग गड़बड़ा जाते हैं ईसा के इन शब्दों को देख कर। सचमुच आश्चर्य की बात है, कहाँ ईसा, विश्व-प्रेम का उपासक ईसा, अपने हत्यारे के लिए भी दुआ करने वाला ईसा! और कहाँ यह भयानक हत्याकाण्ड! शान्त-रस के साथ एकदम रौद्र रस का यह झरना कहाँ से फूट पड़ा! साइबेरिया की सड़को पर यह सीलोन की गर्मी कैसे? मगर उसके भीतर एक सचाई है, इसीलिए ईसा कहते हैं :—

"भाई भाई को और पिता पुत्र को घात के लिए सौपेंगे, लड़के-बाले माता-पिता के विरोध में उठ कर उन्हे मरवा डालेंगे।"

—मैथ्यू १०-२१

"मनुष्य के बैरी उसके घर के ही लोग होंगे। जो माता-

पिता को मुझसे अधिक प्रिय समझता है, वह मेरे योग्य नहीं। जो बेटा-बेटी को मुझसे अधिक प्रिय समझता है, वह मेरे योग्य नहीं।"

—मैथ्यू १०

ईसा इस बात को जानता था कि इस मार्ग पर चल सकना हर एक का काम नहीं है। उसने उस शास्त्री की आकृति देखी, आकृति-विज्ञान ने अपनी दौड़ लगाई, और ईसा ने कहा—न, तुम इस योग्य नहीं। इसके बाद, इसके बिलकुल विरुद्ध एक दूसरा उदाहरण है—"एक और शिष्य ने आकर उससे कहा कि हे प्रभु! मुझे जाने दीजिए, ताकि मैं अपने पिता का अन्तिम संस्कार कर सकूँ। परन्तु ईसा ने इसके उत्तर में कहा कि तुम मेरे साथ चलो और मुर्दों को अपने मुर्दों को गाड़ने दो।"

दोनों कैसे विरोधी उदाहरण हैं। एक ओर एक भक्त आता है और अपने को स्वयं अपनी इच्छा से ईसा की सेवा में अर्पण कर रहा है, परन्तु ईसा उसे अस्वीकार कर देते हैं, दूसरी ओर दूसरा शिष्य जाना चाहता है, परन्तु ईसा उसे जाने से मना कर देता है। यह दोनों ही ईसा की दूरदर्शिता के परिणाम हैं।

मैथ्यू का निर्वाचन भी एक ऐसा ही उदाहरण है।
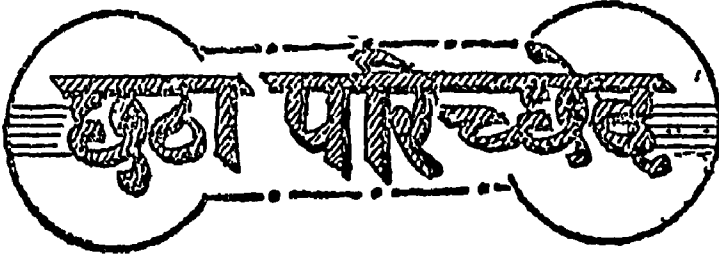
ईसा का शिष्यों को उपदेश

इस परिच्छेद में ईसा अपने बारह शिष्यो को प्रचारार्थ भेजता दिखाई दे रहा है। परन्तु एक योग्य आचार्य की तरह उन्हे इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-भार के सौंपने से पहले हर प्रकार की आवश्यक शिक्षा से परिपूर्ण कर देता है। इस जगह भी उसकी शिक्षा और प्रचार-नीति का मुख्य अंश वही रोगियो को अच्छा करना और भूत-प्रेतो का निकालना है, ऐसा प्रतीत होता है।

"और उसने अपने बारह शिष्यों को पास बुला कर उन्हें अशुद्धात्माओं पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और सब बीमारियों और दुर्बलताओ को दूर करें।"

शिष्यों को बिदा करते समय ईसा ने उन्हें जो उपदेश दिया है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। उपदेश क्या है, प्रचारक के आवश्यक कर्त्तव्यो की सूची और संन्यास-धर्म की दीक्षा है। ईसा के वाक्य हैं :—

"अन्य जातियों की ओर न जाना, सामरियों के किसी नगर में न जाना, सिर्फ इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ों के पास जाना। और चलते-चलते प्रचार करो कि स्वर्ग का राज्य निकट आ रहा है। बीमारों को चङ्गा करो, मरों को जिलाओ, और कोढ़ियों को शुद्ध करो।"

परन्तु यह बात हमेशा याद रखना कि तुम डॉक्टरी का पेशा करने नहीं जा रहे हो, अपने इस कार्य के लिए फीस भूल कर भी न लेना, नहीं तो तुम्हारे कार्य का कोई फल न निकलेगा।

"तुमने सेंत पाया और सेंत दो।"

कितना सुन्दर उपदेश है। 'अपने पटकों मे न सोना, न रुपया और न ताँबा रखना।' यही तो संन्यासी का आदर्श है। 'मार्ग के लिए न दो झोली रक्खो, न दो कुरते और न लाठी, क्योंकि मज़दूर को अपना भोजन मिल जाना चाहिए।' भारतीय ब्राह्मण का आदर्श भी यही है। इस समय रोटी मिल रही है तो खा लो, शाम को क्या खाओगे, इसकी चिन्ता नहीं। यही तो कुम्भीधान्यक ब्राह्मण का अर्थ है। भारत के इसी आदर्श ने चाणक्य जैसे निस्पृह ब्राह्मणों की सृष्टि की है। भारत-सम्राट् महाराजा चन्द्र-गुप्त के प्रधान मन्त्री चाणक्य की गृह-विभूति का वर्णन करते हुए 'मुद्राराक्षस' नाटक के कर्ता महाकवि विशाख-दत्त ने लिखा है :—

अहो राजाधिराजं मन्त्रिणो विभूतिः !
उपल शकलभेतद् भेदकं गोमयानां,
बटुभिरुपहृतानां वर्हिषां स्तोम एषः ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिरामिः
विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्ण कुड्यम् ॥

ईसा आगे फिर कहते हैं :—

"देखो, मैं तुम्हे भेड़ों की नाईं भेड़ियों के बीच भेजता हूँ। इसलिए साँपों की तरह बुद्धिमान् और कबूतरों की तरह भोले बनो। पर लोगों से सावधान रहो, क्योंकि वह तुम्हें महासभाओं में सौंपेंगे और पञ्चायतों में तुम्हारे कोड़े मारेंगे।

"जो मैं तुमसे अँधेरे में कहता हूँ उसे उजाले में जाकर कहो, जो कानों सुनते हो उसे कोठो पर से प्रचार करो।

"जो शरीर का घात करते हैं, पर आत्मा का घात नहीं कर सकते, उनसे न डरना। पर उसीसे डरो जो आत्मा और शरीर दोनों को नरक में नाश कर सकता है।

"क्या पैसे में दो गौरैया नहीं बिकतीं, फिर भी तुम्हारे पिता की इच्छा बिना उनमें से एक भी भूमि पर नहीं गिर सकती। तुम्हारे सिर के बाल भी सब गिने हुए हैं, इसलिए डरो मत, तुम बहुत गौरैयों से बढ़ कर हो।"

—मैथ्यू १०

ईसा के इस उपदेश की प्रारम्भिक पंक्तियाँ बहुत ही विवादास्पद और विचारणीय हैं। ईसा का हृदय उदार था,

उसमें विश्व-प्रेम का सागर हिलोरें मार रहा है। विश्व-प्रेम और सङ्कीर्णता दो विरोधी चीज़ें हैं, वह एकत्र नहीं रह सकतीं। ईसा के विशाल हृदय में—विश्व-प्रेम के साम्राज्य में—इस सङ्कीर्णता को स्थान मिलना लगभग असम्भव है, इसी भाव को लेकर बहुत से आलोचकों को मैथ्यू के यह शब्द खटकते हैं।

"अन्य जातियों की ओर न जाना, सामरियों के किसी नगर में न जाना, सिर्फ इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ो के पास जाना।"

—मैथ्यू १०। ६-७

इन विचारों के भीतर एक प्रकार की सङ्कीर्णता है, जो ईसा जैसे उदार हृदय के विशुद्ध चरित्र पर फबती नहीं। सम्भव था कि अगर ईसा का चरित्र मैली चादर होता तो उस पर यह काला धब्बा इतना न खटकता, परन्तु वह तो मैला नहीं, शुभ्र-ज्योत्सना की तरह शुभ्र और 'दुग्ध कुल्येव' मनोरम है, उस पर तो ज़रा से धब्बे का भी खटकना सर्वथा स्वाभाविक है; फिर इस कालौंच का तो कहना ही क्या?

इस प्रकार के प्रसङ्गों में मैथ्यू और मार्क की प्रवृत्ति में एक प्रकार का भेद दिखाई देता है। ऐसा मालूम होता है कि मार्क ने इस कमी को अनुभव किया है कि इस प्रकार की बातों को ईसा-चरित्र मे स्थान देने का परिणाम कुछ

अच्छा न होकर ईसाई धर्म के प्रचार में बाधक ही होगा। इसलिए ऐसे अवसरो पर मार्क अपने को साफ बचा ले गए हैं। मैथ्यू के गॉस्पल में कई जगह इस प्रकार की सङ्कीर्णता के विचार पाए जाते हैं, परन्तु मार्क ने प्रायः ऐसे हर एक स्थल पर उदारता से काम लिया है, और अपने गॉस्पल मे इन सङ्कीर्ण विचारों को स्थान नहीं दिया है। प्रकृत प्रसङ्ग का उल्लेख मार्क ने भी छठवें परिच्छेद में ७ से १३ तक किया है। उसमें और सब वर्णन ज्यो का त्यों होने पर भी इस आपत्तिजनक सङ्कीर्ण अंश को बिलकुल उड़ा दिया है।

मैथ्यू के १५ वें परिच्छेद में फिर इसी प्रकार के भावों की आवृत्ति की गई है :—

"ईसा वहाँ से निकल कर सोर और सोदोन के देशों की ओर गया और देखो उस देश से एक करानी स्त्री निकली और चिल्ला कर कहने लगी—हे दाऊद के सन्तान, मुझ पर दया कर, मेरी बेटी को दुष्टात्मा बहुत सता रहा है। उसने कुछ उत्तर न दिया और उसके शिष्यों ने आकर उससे विनती की कि इसे बिदा कीजिए, वह हमारे पीछे चिल्लाती आ रही है।

"उसने उत्तर दिया कि मैं इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ों को छोड़ किसी के पास नहीं भेजा गया हूँ।"

—मैथ्यू १५। २३-२४

ईसा के करुणार्द्र हृदय से इस प्रकार की आशा भी नहीं की जा सकती।

"पर वह उसे प्रणाम कर कहने लगी कि हे प्रभू, मेरी सहायता कर। ईसा ने उत्तर दिया कि लड़को की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना अच्छा नहीं।"

—मैथ्यू १५। २५-२६

ईसा-चरित्र के साथ यह घटना ऐसी प्रतीत होती है, जैसे पर्वत के साथ घाटी। उसमें न सचाई है और न उदारता। इस प्रकार के शब्द तो एक साधारण व्यक्ति भी नहीं कह सकता, फिर वह परमेश्वर का सन्देशहर है, एक धर्म का प्रचारक है; और विश्व-प्रेम का पुजारी है। उसके मुँह से ऐसे शब्द निकलना कहाँ तक सङ्गत होगा? मार्क ने इस विवरण में २४ को तो बिलकुल उड़ा ही दिया है और २६ को भी कुछ नर्म करने की चेष्टा की है। इन शब्दों के पहले उसने यह और जोड़ दिया है—"पहिले लड़कों को तृप्त होने दो।"

इसमें सन्देह नहीं कि इससे बात की कठोरता में उन्नीस-बीस का अन्तर अवश्य हो गया है, परन्तु इतने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। ईसा उस स्वर्गीय प्रभु का सन्देश-वाहक था, जो संसार का पिता है, जो उसे रोटी के बदले पत्थर नहीं दे सकता, मछली के बदले साँप नहीं दे सकता। वह तो भले और बुरे दोनों पर सूर्य उदय करता है,

पापी और पुण्यात्मा दोनो पर मेह बरसाता है। उस प्रभु के—उस पिता के—सन्देश से भटके हुए सन्तानो को वञ्चित रखना कहाँ तक युक्तिसङ्गत है। और फिर वह भी ईसा जैसे उदार हृदय के लिए !! ईसा के विशुद्ध चरित्र में मलिनता का यह धब्बा खटकता है और बुरी तरह खटकता है।

मैथ्यू के १९ वें परिच्छेद में फिर इस प्रकार की घटना की आवृत्ति की गई है :—

"इस पर पीटर ने ईसा से कहा कि देखो हम तो सब कुछ छोड़ कर आपके अनुयायी बने हैं, हमें क्या मिलेगा ? ईसा ने उनसे कहा कि मैं तुमसे सच कहता कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा तब तुम भी, जो मेरे पीछे हो लिए हो, बारह सिंहासनो पर बैठ कर इस्राइल के बारह कुलों का न्याय करोगे।"

—मैथ्यू १६। २७ से २६ तक

मैथ्यू इस जगह भी अपनी सङ्कीर्णता के विचारो को न छोड़ सके, मगर मार्क ने इसे और शब्दों मे लिखा है :—

"ऐसा कोई नहीं, जिसने मेरे और सुसमाचार के लिए भाई, बहिन, माता-पिता, घर और खेतों को छोड़ दिया हो और अब इस समय सौगुना न पाए।"

—मार्क १०-२६

मार्क के ईसा का उत्तर साफ और सुलझा हुआ है।

ईसा और पापी

ईसा-चरित्र का विश्लेषण करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मैथ्यू के ईसा कहीं तो आकाश मे विचरण कर रहे हैं और कहीं पृथ्वी पर रेंग रहे हैं। कहीं तो विश्व-प्रेम के विशाल सागर में क्रीड़ा कर रहे हैं और कहीं सङ्कीर्णता के सड़े सरोवर में डुबकियाँ लगा रहे हैं। एक बार की बात है, ईसा भोजन कर रहे थे, उनके आस-पास तमाम पापी और कर उगाहने वाले आकर बैठ गए। सम्भवतः बातचीत भी होती जा रही थी। इस सारे दृश्य को फ़रीशियो ने देखा और उन्होने ईसा के शिष्यो से कहा कि तुम्हारा आचार्य कैसा है, वह पापियों के साथ बैठ कर खाता-पीता है। बात जब ईसा के कानो तक पहुँची तो उसने उत्तर दिया कि भाई, वैद्य की आवश्यकता तन्दुरुस्त लोगों को नहीं, बीमारों को ही होती है, इसी प्रकार सुधारकों की आवश्यकता भी पापियो को ही होती है, पुण्यात्माओं को नहीं। इसीलिए मैं इन पतित भाइयों के साथ उठता-बैठता और खाता-पीता हूँ। मैथ्यू ने इस प्रकरण को इस प्रकार लिखा है :—

"जब ईसा घर में भोजन करने बैठा तो बहुत से पापी और कर उगाहने वाले लोग आकर उसके और उसके शिष्यो के पास बैठ गए। यह देख कर फरीशियो ने उसके

शिष्यों से कहा कि तुम्हारा गुरू कर उगाहने हारे और पापियों के सङ्ग क्यों खाता-पीता है ? ईसा ने यह सुन कर उत्तर दिया कि निरोगियों को वैद्य की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि रोगियों को। तुम जाकर इसका अर्थ सीखो कि मैं दया चाहता हूँ, बलिदान नहीं। क्योंकि मै धर्मात्माओं को नहीं, पापियो को पश्चात्ताप के लिए बुलाने आया हूँ।"

—मैथ्यू ६। १० से १३ तक

कितनी उदारता के भाव हैं। इनको देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ईसा ग़रीबो और पापियो का दिली दोस्त है। उसके दिल में दुखियो के लिए दर्द है। वह रोगियों और पापियों की तकलीफ मे एक सर्द आह खींचता है और उनकी स्थिति पर तरस खाता है। दुनिया का क़ायदा है :—

सबै सहायक सबल के, कोइ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय॥

मगर महापुरुष क़दीमी क़ानूनो-क़वायद के क़ायल नहीं होते। महापुरुष तो वह है, जिसके दिल में भावना और भावुकता के लिए स्थान है, जो दुखियो के दर्द पर आह भरता है, जो पापियों के दुःख पर भी आँसू बहाता है। ईसा उन्हीं महापुरुषो मे से एक था। वह तो धर्मात्माओं को नहीं, पापियो को पश्चात्ताप के लिए बुलाने आया था। कहाँ तो ईसा का देव-दुर्लभ यह स्वरूप और कहाँ सङ्कीर्णता के

कीचड़ में साना हुआ जातीय ताअस्सुब का दीवाना वह ईसा !! आकाश-पाताल का अन्तर है। एक स्वर्ग की विभूति है तो दूसरा इस मर्त्य-लोक का क्षुद्र प्राणी। इस प्रतिकूल प्रकृति-प्रदर्शन के लिए हम किसे उलाहना दें।

प्राचीन आदेशों का नवीन संस्करण

प्रायः देखा जाता है कि समाज-सुधारकों और धर्म-प्रचारकों के सामने प्रतिपक्षियों की ओर से सनातनता की दुहाई देकर अनेक कुप्रथाओं का समर्थन किया जाता है। बाप-दादों की बनाई बात बिगड़ जाने की विभीषिका कभी-कभी विचारशील लोगों के सामने भी भयानक प्रतिबन्ध के रूप में उपस्थित हो जाती है, जिसका पार कर सकना उनके लिए प्रायः असम्भव सा हो जाता है। इसी बात को किसी कवि ने कहा है :—

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।

कापुरुष बाप-दादों की दुहाई देकर खारी, सड़ा हुआ पानी पीते चले जायँगे, मगर उसके सुधारने का कोई यत्न न करेंगे। उन्हें कष्ट हो या आराम, काम उचित हो या अनुचित, इसकी पर्वाह नहीं, बाप-दादों की दलील दम रहते उन्हें उस काम से दस्त-बरदार न होने देगी। परन्तु महा-पुरुषों को इस प्रकार के न जाने कितने प्रतिबन्धों को ठोकर

मारनी पड़ती है। उनकी दृढ़ता के सामने विघ्नों की विशाल पर्वत-श्रेणी सिर झुका देती है। किसी कवि ने कहा है—

लीक-लीक गाडी चलै, लीकहि चलै कपूत।
तीन चीज यह ना चलै, शायर शेर सपूत॥

कमल कीचड़ से ही पैदा होता है। मरियम से हुआ तो क्या, ईसा अपनी माँ का सच्चा सुपूत था। बुद्धि-विरुद्ध अन्ध-विश्वास और सनातनता की दुर्बल दुहाई उन्हे अपने निश्चित पथ से विचलित कर सकने में असमर्थ रही। ईसा ने यद्यपि गिरि-प्रवचन में स्पष्ट रूप से कहा है कि :—

"यह मत समझो कि मैं व्यवस्था और नबियो का उल्लङ्घन करने आया हूँ। मैं उन्हे उल्लङ्घन करने नहीं, बल्कि उन्हें पूरा करने आया हूँ।"

—मैथ्यू ५-१७

फिर भी कभी-कभी उनके आदेश प्राचीन प्रथाओं के प्रतिकूल दिखाई देते है। प्रथाओ के प्रतिकूल होते हुए भी वस्तुतः वह धर्मशास्त्र के भी प्रतिकूल हैं, ऐसा कह सकना कठिन है। ईसा ने उन्हीं व्यवस्थाओं की व्याख्या अपने नवीन ढङ्ग से और बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से की है। उनके व्याख्यान में अन्धविश्वास की अपेक्षा बुद्धिवाद का स्थान ऊँचा है। वस्तुतः क्या धर्म है और क्या अधर्म, इसका निर्णय कर सकना बड़ा दुष्कर कार्य है। हमारे यहाँ भी तो लिखा है :—

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,

महाजनो येन गतः स-पन्था।

इसीलिए तो कृष्ण गीता में कहते हैं :—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः।

इसी कठिनता के कारण हमारे अन्य आचार्य भी लिख गए हैं—'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतरः'। जो आदेश तर्क की कसौटी पर कसा जाने पर भी फेल न हो, समझ लो वही धर्म है। महात्मा ईसा ने भी अपनी व्याख्याओं में इसी तर्कवाद का सहारा लिया है। उनके जीवन में अनेक बार ऐसे विषम प्रसङ्ग उपस्थित हुए हैं, परन्तु हर बार तर्कवाद ने उन्हें भारी सहारा दिया है। एक बार की बात है, ईसा अपने शिष्यों सहित कहीं जा रहे थे। इतवार का दिन था और लोगों को भारी भूख लग रही थी। रास्ते में कुछ खेत पड़े, उनके शिष्यों ने खेतों में से बालें तोड़ कर खाना शुरू किया। यहूदियों और ईसाइयों के विश्वास के अनुसार इतवार का दिन श्राम का दिन है। उस दिन स्वयं परमात्मा ने भी विश्राम किया था, इसलिए मनुष्यों को भी पूर्ण विश्राम करना चाहिए। इसलिए जब फरीशियों ने देखा कि ईसा के शिष्य विश्राम वार के दिन भी खेतों मे वाल तोड़ रहे हैं तो उन्होंने ईसा को आड़े हाथों लिया :—

"जो काम विश्राम वार के दिन करना उचित न था, वही आपके शिष्य करते हैं।" —मैथ्यू १२-२

मगर ईसा की दृष्टि में केवल अन्ध-विश्वास ही नहीं, बुद्धिवाद भी था। इस अवसर पर उसने आपद्धर्म की अच्छी विवेचना की है। भारतीय धर्म-शास्त्रो के अनुसार भी आपत्काल में हर एक धर्म-सम्बन्धी आदेश का उल्लङ्घन किया जा सकता है और ऐसे अवसर पर वह उल्लङ्घन पाप नहीं, बल्कि पुण्य समझा जाता है। इसी सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए भारतीय साहित्य ने विश्वामित्र आख्यायिका की सृष्टि की है। महाभारत शान्ति पर्व १४१ अ० में यह कथा आई है कि किसी समय देश में बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहा और विश्वामित्र पर बहुत बड़ी आपत्ति आई। तब भूख से अत्यन्त व्याकुल हो और अपने प्राणों का संशय देख, उन्होंने किसी श्वपच (चाण्डाल) के घर से कुत्ते का मांस चुराया, और इस अभक्ष्य भोजन से वह अपनी रक्षा में प्रवृत्त हुए। उस समय श्वपच ने विश्वामित्र को 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' (मनुः ५-१८) इत्यादि शास्त्रार्थ बतला कर अभक्ष्य भक्षण—और वह भी चोरी से—न करने के विषय में बहुत उपदेश दिया। परन्तु विश्वामित्र ने उसको फटकारते हुए यह उत्तर दिया—

पिवन्त्येवो दरं गावो मण्डूरेषु रुवत्स्वपि।
न तेऽधिकारो धर्मेऽस्ति मा भूरात्म प्रशंसकः॥

"अरे! मेढ़क टर्राते रहते हैं तो भी गौएँ पानी पीना बन्द नहीं करतीं। चुप रह, धर्मज्ञान बताने का तेरा अधिकार

नहीं है, व्यर्थ अपनी प्रशंसा मत कर।" उसी समय विश्वामित्र ने यह भी कहा है :—

जीवितं मरणा श्रेयो जीवन धर्म मवाप्नुयात्।

अर्थात्—"यदि हम जीवित रहेंगे तो धर्म का आचरण कर सकेंगे, इसलिए धर्म की दृष्टि से मरने की अपेक्षा जीवित रहना अधिक श्रेयस्कर है।"

मनु जी ने अजीगर्त, वामदेव आदि अन्यान्य ऋषियों के उदाहरण दिए हैं, जिन्होंने ऐसे सङ्कट के समय पर इस प्रकार के आचरण किए हैं। फलतः प्रकृत प्रसङ्ग में ईसा ने भी उन्हीं आपद्धर्मों का सहारा लिया है। वह कहते हैं :—

"क्या तुमने पढ़ा है कि दाऊद ने जब वह और उसके साथी लोग भूखे थे, क्या किया? उसने ईश्वर के घर में जाकर भेंट की रोटियाँ क्यों खाईं? जिनको खाना न उसको और न उसके साथियों को उचित था।"

—मैथ्यू १२-४

फलतः यह तो आपद्धर्म है, उसका समर्थन आज नहीं, प्राचीन काल के धर्माचार्यों के क्रियात्मक जीवन से भी होता है। उत्तर ठीक था, बुद्धि उसे स्वीकार कर सकती थी, इसलिए फ़रीशियों को चुप हो जाना पड़ा।

इसी परिच्छेद में एक बार और इसी प्रकार के प्रसङ्ग का ज़िक्र हुआ है। मैथ्यू ने लिखा है :—

"वहाँ से जाकर वह उनके सभा के घर में गया, और

देखो, एक मनुष्य ऐसा मिला जिसका हाथ सूख गया था। फरीशियो ने उस पर दोष लगाने के लिए ईसा से पूछा कि क्या विश्राम वार के दिन चङ्गा करना उचित है। उसने उत्तर दिया कि तुममे से कौन ऐसा मनुष्य है जिसके पास एक ही भेड़ हो और वह विश्राम वार के दिन गढ़े मे गिर पड़े तो उसे पकड़ कर न निकालेगा? फिर मनुष्य भेड़ से कितना बड़ा है। इसलिए विश्राम वार को भी भलाई करना सर्वथा उचित है।"

—मैथ्यू १८। ६ से १२ तक

ईसा के यह दोनो उत्तर बुद्धिसङ्गत थे और उनकी पीठ पर तर्क का हाथ था, इसलिए फ़रीशी उनका कोई जवाब न दे सके। परन्तु दिल और दिमाग़ दो भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। ईसा का यह उत्तर तो सिर्फ दिमाग़ पर असर कर सकता था, तथा उस दिल पर भी प्रभाव डाल सकता था जिसके साथ दिमाग़ जुड़ा हो; परन्तु कोरे कट्टर दिल पर प्रभाव डाल सकना उसकी शक्ति के बाहर था। इसलिए फ़रीशी लोग ईसा के बुद्धिसङ्गत उत्तर को भी सहन न कर सके। उनके हृदय विक्षुब्ध हो उठे और फ़रीशियों ने बाहर जाकर आपस मे ईसा के विरुद्ध विचार किया कि किसी तरह उसका नाश कर दें।

—मैथ्यू १२-१४

यहीं से ईसा-चरित्र का दूसरा पहलू प्रारम्भ होता है, जिसने उसके भौतिक अस्तित्व को मिटा कर भी उसे अमर

बना दिया है। ईसा के विरुद्ध स्पष्ट रूप से यह पहली मिस-कोट है, जो उसके जीवन को खतरे में डालने के इरादे से की गई है। मैथ्यू के उपरोक्त शब्द हमारे हृदय के भीतर एक अज्ञात आशङ्का छोड़ जाते हैं।

मसीहाई वसीयत

"If any man will come after me, let him deny himself and take up his cross daily and follow me."

Luke C 9. V 23

अर्थात्—"यदि कोई मनुष्य मेरे अनन्तर मेरे पथ का अनुगामी होना चाहता है, तो उसको भी लोकहितार्थ अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहिए और मेरी जैसी 'क्रॉस' की पीड़ा को प्रतिदिन प्रजाभूत्यर्थ अपने कर्मों में अनुभव करना चाहिए और मेरी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए।"

यह एक त्रैकालिक सत्य है, जो आज से क़रीब दो हज़ार वर्ष पहले महात्मा ईसा के मुँह से निकल कर इस अनन्त आकाश में विलीन हो गया। तब से आज तक न जाने कितनी बार इन शब्दों का आविर्भाव और तिरोभाव हुआ, परन्तु वह सचाई आज भी उतनी ही उज्ज्वल और सुन्दर है जितनी कि आज से दो हज़ार वर्ष पहले। संसार में सुधारक का कार्य बड़ा कठिन कार्य है। जो व्यक्ति संसार का उद्धार करना,

दूसरों का हित करना चाहता है, उसे सबसे पहले अपने इस भौतिक अस्तित्व को मिटा देने—बलिदान कर देने—के लिए तैयार रहना चाहिए। यह शिक्षा, प्रकृति की शिक्षा है, और आज तक के संसार-सुधार के इतिहास का सार है। गेहूँ का एक छोटा सा बीज, जिसके हृदय मे दूसरो की रक्षा करने की लगन है, अपने अस्तित्व को खेत की मिट्टी में और खाद में विलीन कर देता है और इस बलिदान के बाद वह इस योग्य होता है कि दूसरो की रक्षा कर सके। ठीक यही प्रणाली समाज-सुधारको के इतिहास में भी पाई जाती है। ईसा, दयानन्द, बुद्ध और सुकरात उन्ही उज्ज्वल बलिदानो के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिनके हृदय में देश और जाति के सुधार की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह अपने प्राणों को हथेली पर रख कर इस संसार-क्षेत्र में कूद पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें अपनी हस्ती मिटा देनी पड़ती है, परन्तु फिर भी वह मरते नहीं, मर कर भी अमर हो जाते हैं। इन्हीं महान् आत्माओं के चरित्र साधारण आदमियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम देते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इन महान् आत्माओ का जीवन एक कर्तव्यपरायण जीवन होता है, परन्तु उनकी मृत्यु उनके जीवन से भी अधिक महत्वपूर्ण होती है। जो काम वह अपने जीवन में नहीं कर सकते, उनकी मृत्यु उस काम को बड़ी

सरलता के साथ पूरा कर देती है। स्वामी दयानन्द अपने जीवन में पं० गुरुदत्त के नास्तिक मस्तिष्क पर विजय प्राप्त करके भी उनके हृदय पर विजय न पा सके। परन्तु दयानन्द की मृत्यु ने पक्के नास्तिक गुरुदत्त को कट्टर आस्तिक के रूप में परिणत कर दिया। मगर धर्म-प्रचारको व समाज-सुधारकों के कार्यक्षेत्र में उनके जीवन और मृत्यु दोनों से बढ़ कर कार्य है उनकी वसीयत। समाज-सुधारक अपने जीवन में उन सुधारों का बीज बो देता है, और उस बीज में अङ्कुर फूटते-फूटते प्रायः उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है। आगे उस अङ्कुर के पालन-पोषण और उसको वृक्षावस्था तक पहुँचाने का भार उसके वारिसो पर निर्भर रहता है। इसलिए समाज-सुधारको को अपने इन वारिसों के चुनाव में अपनी सारी प्रतिभा खर्च कर देनी पड़ती है, और उनके मिशन की सफलता व असफलता का अधिकांश प्रायः इन्हीं के ऊपर निर्भर रहता है। इतिहास इस बात का साक्षी है। जब तक धर्म-प्रचारको के वारिस अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक समझते रहे, तब तक वह धर्म दिन दूना रात चौगुना फलता-फूलता रहा। इसके विरुद्ध जहाँ इनके व्यवहार में शिथिलता आई कि सुधारक के सारे करे-धरे पर चौका फिर गया। इसलिए सुधारक के कार्यों मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य उसका वसीयतनामा भी है। इसी दृष्टि को रखते हुए आज हम संसार के श्रद्धास्पद महात्मा ईसा के

वसीयतनामा की आलोचना करने बैठे हैं। इस प्रकरण में ईसा के वसीयतनामा से हमारा तात्पर्य उन पंक्तियो से है, जिनमें ईसा ने अपना उत्तराधिकार पीटर के कन्धों पर रख दिया है। हम उन पंक्तियों को मैथ्यू के १६ वें परिच्छेद से उद्धृत करते है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"And I say also unto thee that thou art Peter, and upon this rock I will build my church, and the gates of hell shall not prevail against it"

"And I will give unto thee the keys of the kingdom of heaven, and whatsoever thou shalt bind on earth shall be bound on heaven, and whatsoever thou shall loose on earth shall be loosed in heaven"

Matthew C 16 V 18, 19

"और मै तुझसे यह कहता हूँ कि तू पीटर है और इसी चट्टान पर मै अपना गिर्जा बनाना चाहता हूँ और नरक के भी दरवाजे इस चट्टान पर बने हुए गिर्जा को छू तक नही सकेंगे।

"और मै तुझको स्वर्ग के राज्य की कुञ्जियाँ दूँगा, जिसको तू पृथ्वी पर छोड़ देगा, वहाँ स्वर्ग में भी छोड़ दिया जावेगा और जिसको पृथ्वी पर तुम बाँध दोगे, वहाँ भी बँधा रहेगा।"

ईसा-चरित्र का यह प्रकरण सचमुच एक अत्यन्त महत्व-

पूर्ण प्रकरण है। इन थोड़े से शब्दों में आलोचकों के लिए खासी सामग्री मिल जाती है, इसके साथ ही उन्होने ईसाई धर्म के इतिहास पर भी गहरा प्रभाव डाला है। मैथ्यू के लेखानुसार यह ईसा के असली शब्द हैं, जिनके द्वारा उसने पीटर को अपने चर्च की आधार-शिला नियत किया है, परन्तु ग्रेग और उनके सहयोगी अन्य आलोचकों की दृष्टि में सारे पूर्वापर करण को देखते हुए ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह ईसा के अपने शब्द हैं, बल्कि उनकी सृष्टि पूर्णतः मैथ्यू के दिमाग़ से हुई है और उनके ऊपर ईसा के काल का नहीं, मैथ्यू के काल का एक हलका सा शेड दिया हुआ है। हम उन हेतुओं की चर्चा इसी प्रकरण में आगे चल कर करेंगे।

मैथ्यू के अनुसार इस स्थल का पूर्व प्रकरण इस प्रकार है :—

"ईसा ने कैसरिया फिलपी के सिवानो में आकर अपने शिष्यो से पूछा कि लोग क्या कहते हैं कि मैं मनुष्य का पुत्र कौन हूँ ? उन्होंने उत्तर दिया कि कितने ही तो आपको योहन बपतिस्मा देने हारा कहते हैं और कितने ही पिर-मियस अथवा भविष्यद्‌वक्ताओं में से एक कहते हैं। उसने उनसे कहा कि तुम्हारी दृष्टि में मैं कौन हूँ ? शिमोन पीटर ने जवाब दिया कि आप उस जागरूक प्रभु के पुत्र मसीहा हैं। ईसा ने उसे उत्तर दिया कि हे यूनस के पुत्र शिमोन !

तू धन्य है, क्योंकि इस मांस और लहू ने नहीं, बल्कि उस स्वर्गवासी पिता ने तुझ पर यह बात प्रकट की।"

—मैथ्यू १६। १३ से १७ तक

ईसा ने अपने शिष्यों से अपने विषय मे आम जनता की राय पूछी हो, यह सम्भव है, शिष्यो ने जो उत्तर दिया है वह भी सम्भव है, इसके बाद अपने विषय मे स्वयं उनकी राय भी पूछी जा सकती है और उसके ऊपर दिया हुआ भक्त पीटर का उत्तर भी सङ्गत है। उसका पूर्ण विश्वास था कि ईसा सचमुच मसीहा है। केवल मैथ्यू ने ही नहीं, अन्य तीनो लेखको ने भी पीटर की इस श्रद्धा का जिक्र किया है, इसलिए अगर उसने ईसा के प्रश्न के उत्तर में उसे मसीहा बतलाया तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। परन्तु इसके आगे की ईसा की उक्ति कुछ अटपटी सी प्रतीत होती है, उसके अन्दर गम्भीरता नहीं है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा का हृदय बहुत उथला है। पीटर ने उन्हे मसीहा कह दिया और ईसा ने बिना किसी पसोपेश के एकदम उसे स्वीकार कर लिया। यही नहीं, बल्कि इससे उनके भीतर प्रसन्नता और अभिमान का जो मिश्रित भाव उत्पन्न हुआ है, वह उनके हृदय के भीतर ही रह गया हो, ऐसा नहीं, वह फूट पड़ा है और ऐसा फूटा है जैसा कि किसी गम्भीर आदमी से आशा नहीं की जा सकती। एक बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आपे

से बाहर हो गए हैं। अपनी प्रशंसा सुन कर उनका अङ्ग-अङ्ग सिहर उठा है। उनका एक साथ यह चिल्ला उठना—"हे यूनस के पुत्र शिमोन! तू धन्य है, क्योंकि मांस और लहू ने नहीं, बल्कि मेरे स्वर्गवासी पिता ने यह बात तुझ पर प्रकट की है, इस चट्टान पर मैं अपना गिर्जा बनाऊँगा।" कुछ अच्छी प्रकृति का परिचायक नहीं। इसके आगे ईसा कहते हैं :—

"Upon this rock I will build my church."

उनके इन शब्दों के ऊपर गिरि-प्रवचन की झलक पड़ रही है, उसकी अन्तिम पंक्तियाँ भी कुछ इसी प्रकार की हैं :—

"जो कोई मेरी इन बातो को सुन कर उनका पालन करेगा वह उस बुद्धिमान् पुरुष की तरह है, जिसने अपना घर चट्टान के ऊपर बनाया। मेह बरसा, बाढ़ आई, आँधी चली और उस पर लगी, परन्तु वह न गिरा; क्योंकि उसकी नींव चट्टान के ऊपर डाली गई थी।"

ईसा अपना महल भी उतना ही मजबूत बनाना चाहते थे, जो दुनिया की तमाम जद्दो-जहद का दृढ़ता के साथ मुकाबला कर सके। चाहे जितना ही पानी बरसे, कैसी ही आँधी चले, कैसा ही तूफान उठे, मगर ईसा का भवन (ईसाई धर्म) ज्यो का त्यों अचल पर्वत की तरह स्थिर खड़ा रहे। इसीलिए वह उसकी नींव बालू पर नहीं, चट्टान पर डाल

रहे हैं, परन्तु 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरं' ईसा से बड़ी भारी भूल हुई है। वह जिसे चट्टान समझ रहे थे, वह चट्टान नहीं, बल्कि बालू से भी भद्दी चीज़ थी। बालू में भी एक तरह की दृढ़ता होती है, मगर पीटर का हृदय उससे भी अधिक कमज़ोर है। उसमें दृढ़ता नहीं, साहस नहीं, त्याग नहीं। हम तो यही कहेंगे :—

श्रितोसि चन्दन भ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।

मानव-प्रकृति की धीरता और दृढ़ता की परीक्षा सम्पत्ति में नहीं, विपत्ति में होती है। जो विपत्ति के समय अपना है वही अपना है। जो विपत्ति-समय घबड़ाता नहीं, स्थिर बना रहता है, दृढ़ता से डटा रहता है, वही दृढ़ है, वही स्थिर है और उसी को चट्टान कहा जा सकता है। पीटर का चरित्र ईसा के जीवन-काल में सिर्फ एक बार इस कसौटी पर चढ़ा है और उसमें बुरी तरह असफल हुआ है। हम तो इतने कमज़ोर चरित्र को इस योग्य भी नहीं समझते कि उसको किसी क्षुद्र कार्य का भार भी सौंपा जाय, मगर ईसा उसी को अपने चर्च की आधार-शिला बना रहे हैं !!

ईसा-चरित्र के अन्तिम अङ्क का अभिनय हो रहा है, नाटक की निर्वहण सन्धि का प्रारम्भ हो चुका है। समाज-सुधारक और धर्म-प्रचारक ईसा अपने रिज़र्व उपहार बलि-दान के लिए तैयार हो रहा है। ईसा के विश्वासघाती शिष्य

यहूदा के हृदय में शैतानी भाव अपना अधिकार जमा चुके हैं। विपत्तियों द्वारा दिखाए गए आर्थिक लोभ को नीच, गुरु-द्रोही और विश्वासघाती यहूदा संवरण न कर सका। उसने थोड़े से धन के लिए अपने गुरु और संसार के उस महान् पुरुष को शत्रुओं के हाथों सौंप दिया। मैथ्यू ने लिखा है :—

"ईसा अपने शिष्यों से यह कह ही रहा था कि यहूदा (जो कि उसके १२ शिष्यों में से एक था) आ पहुँचा और उसके साथ जनता के प्रधान याजकों और सनातनियों की ओर से लाठी-तलवार लिए बहुत से लोग थे। ईसा के पकड़वाने वाले ने उनसे कह रक्खा था कि जिसको मैं चूमूँ वही ईसा है और उसी को पकड़ना। उसने तुरन्त ईसा के पास आकर उसे प्रणाम किया और चूमा। तब उन्होंने ईसा पर हाथ डाला और उसे पकड़ लिया।"

इस घटना के ठीक बाद का ज़िक्र है :—

"पीटर बाहर आँगन में बैठा था। एक दासी उसके पास आकर बोली कि तू भी गलीली ईसा के साथ था।"

पीटर डर गया कि शायद मुझे भी पकड़ लिया जाय और मेरी भी ईसा की सी गति हो, इसलिए—

"उसने सबों के सामने मुकर कर कहा कि मुझे नहीं मालूम कि तू क्या कह रही है।"

दासी चली गई। इस समय तो पीटर की जान बची, परन्तु—

"जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देख कर जो लोग वहाँ थे उनसे कहा कि यह भी नाज़री ईसा के साथ था।"

पीटर की गई-गवाई विपत्ति फिर लौट आई। पिछली बार तो वह साधारण तौर से मना कर देने मात्र से बच गया था, अब की दृढ़तर निषेध की आवश्यकता थी, इस लिए—

"वह फिर मुकरा और उसने शपथ खाकर कहा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।"

क्या यही चट्टान की दृढ़ता है? क्या इसी आधार-शिला पर ईसाई धर्म का भव्य प्रासाद खड़ा किया गया है? हमें तो वह रेत से भी कमज़ोर मालूम पड़ता है। सम्भव है, 'मनुष्य मात्रेण प्रथमा विभक्तिः' पीटर से ग़लती हो गई हो, उसकी अन्तरात्मा मे दृढ़ता रहते हुए भी उस समय स्थिर न रह सका हो। परन्तु प्रकृत-विवरण से तो कुछ ऐसा प्रतीत नहीं होता। जिसकी अन्तरात्मा शुद्ध है वह अगर कभी भूल से कोई पाप कर बैठे तो तत्क्षण उसे ग्लानि होती है और उसका हृदय पश्चात्ताप के आँसुओं में रो उठता है। वह अपनी सारी शक्ति लगा देता है, उस एक भूल के सुधारने में। परन्तु पीटर का तो जो क़दम पड़ता है उसमे पश्चात्ताप का भाव दिखलाई नही देता, बल्कि उसके कार्य में क्रमशः दृढ़ता ही आती चली जाती है। पहली बार

उसने सीधी तरह से मना किया है, दूसरी बार शपथ का नम्बर आया, अब तीसरा अवसर है :—

"थोड़ी देर बाद जो लोग वहाँ खड़े थे उन्होंने पीटर के पास आकर कहा कि तू भी सचमुच उनमें से एक है, क्योंकि तेरी बोली तुझे प्रकट करती है। तब वह धिक्कार देने और शपथ खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।"

—मैथ्यू २६। ६६ से ७६ तक

शपथ से एक नम्बर और बढ़ कर धिक्कार पर नम्बर पहुँच गया। यह पतन की चरम सीमा है। गुरु ईसा जिसने उसे इस योग्य बनाया, विश्वासी ईसा जो उसके नाम अपना वसीयतनामा कर रहा है और शुद्ध चरित्र ईसा के साथ यह विश्वासघात! पीटर को इस अपवाद से बचाने के लिए संसार में कौन सी युक्ति निकल सकेगी !!

लोकापवादार्णवमुत्तरीतुं,
विधे! विधा स्यात्कतमा तरीतुम्।

ऐसे ही लोगों के लिए तो लिखा है :—

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापं,
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि।

ईसा उपकारी भी था, विश्रब्ध भी था और शुद्धमति भी था। उसके साथ किया गया पाप पीटर के पतन की पराकाष्ठा है। हमारा सिर तो पीटर के इस व्यवहार पर लज्जा से एकदम नीचे झुक जाता है। इसीलिए हम कह रहे थे कि

ईसा ने अपना वसीयतनामा करते समय भारी भूल की है। हम यह भी नहीं कह सकते कि ईसा को पीटर की इस कमज़ोरी का पता नहीं था। ईसा जानते थे और अच्छी तरह जानते थे कि पीटर अभी मेरे उस दिव्य सन्देश के रहस्य को नहीं समझ सका है :—

"उनसे मत डरो जो शरीर को नष्ट कर देते हैं, पर आत्मा को नाश नहीं कर सकते, बल्कि उससे डरो जो आत्मा और शरीर दोनों का नरक मे नाश कर सकता है।"

—मैथ्यू १०-२८

हमे इसका पता वसीयतनामे के बाद की अगली पंक्तियो में ही मिल जाता है। स्वयं ईसा ने उस व्यक्ति को, जिसे वह अपने धर्म की आधार-शिला बना रहे है, उसकी इसी कमज़ोरी के कारण शैतान-पद से सम्बोधित किया है :—

"उसने मुँह फेर कर पीटर से कहा कि दूर हो शैतान मेरे सामने से। तू मेरे लिए ठोकर है, क्योकि तुझे ईश्वरीय आदेश का नहीं, मनुष्य की बातो का सोच रहता है।"

—मैथ्यू १६-२३

फलतः ईसा जिसे चट्टान समझते थे, वह चट्टान नही, बालू से भी भद्दी चीज़ निकली। इतने कमज़ोर हृदय पीटर के कन्धो पर इतने बड़े कार्य का भार रखना कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। ईसाई धर्म के अब तक स्थिर रहने का कारण पीटर नहीं, ईसा का बलिदान है।

ईसा के इस वसीयतनामे में दूसरी बात चाबियो की है। इससे आलङ्कारिक भाषा के प्रयोग के दुष्परिणामों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ जाता है—"मैं तुझे स्वर्ग के राज्य की चाबियाँ दूँगा, जो कुछ तू पृथ्वी पर बाँधेगा वह स्वर्ग में बँधा हुआ होगा, और जो कुछ तू पृथ्वी पर खोलेगा वह स्वर्ग में खुला हुआ होगा।"

जिस प्रकार भारतीय साहित्य में महाभारत और रामायण की कथाओं के आधार पर अनेक कवियों ने अपने-अपने काव्य और नाटकों की सृष्टि की है, उसी प्रकार का सम्मान पाश्चात्य जगत में बाइबिल ने भी पाया है। महाकवि मिल्टन ने इस घटना का उल्लेख बड़े सुन्दर रूप में किया है। जेसीडस (Zaycidas) की पंक्तियाँ हैं :—

"Last came and last did go,
The pilot of the Galilean lake,
Two massy keys he bore of metals twain
The golden opes and iron shuts amain."

"गैलीली झील का नाविक अन्त में आया और अन्त में गया। दो धातुओ की बनी हुई दो भारी कुञ्जियाँ उसके पास थीं। सोने की कुञ्जी से दरवाजा खुलता था और लोहे की से जोर से बन्द होता था।"

दान्ते ने भी इन चाबियो का उल्लेख किया है। दान्ते एवं मिल्टन की तुलना करते हुए रस्किन लिखते हैं :—

"Note the difference between Milton and Dante in their interpretation of this power, for once the latter is weakened in thought; he sup poses both the keys to be of the gate of heaven, one is of gold the other of silver. They are given by Peter to the sentinel angel, and it is not easy to determine the meaning of either the substance of the three steps of gate or of the two keys. But Milton makes one of gold, the key of heaven, the other of iron, the key of prison in which the wicked teachers are to be bound who have taken away the key of knowledge yet entered not in themselves

Sesame and Lilies. p p. 26.

"कुञ्जियो की शक्ति का अभिप्राय-प्रकटन में मिल्टन और दान्ते कवियो मे भेद देखिए। दान्ते का विचार निम्न कोटि का है, वह दोनो कुञ्जियों को स्वर्ग की समझता है। एक सोने की दूसरी चाँदी की यह तालियाँ इस कवि के अनुसार पहरा देने वाले स्वर्ग-दूत को पीटर ने दी हैं और इस तरह से हम दरवाज़े की तीन सीढ़ियों या इन दो कुञ्जियो का अभिप्राय स्पष्ट व्यक्त हुआ नहीं पाते हैं, परन्तु मिल्टन एक कुञ्जी को सोने की, जो स्वर्ग की कुञ्जी है, और दूसरी को लोहे की,

जो नरक की कुञ्जी है, मानता है। नरक में वे दुष्ट पुजारी बाँधे जाने को है, जो धर्मोपदेश का दावा तो करते हैं, परन्तु स्वयं धार्मिक नहीं हैं।

मिल्टन और दान्ते चाहे कुछ भी लिखे, वह कवि ठहरे; परन्तु हमारी समझ मे यह चाबियाँ न सोने की हैं और न चाँदी की हैं, न लोहे की और न किसी और धातु की। यह सारा वर्णन आलङ्कारिक है। पीटर के पास स्वर्ग की चाबियाँ हैं, वह जिसके लिए चाहे स्वर्ग का दरवाजा खोल दे, जिसके लिए चाहे बन्द कर दे। इसका तात्पर्य इतना ही है कि पीटर के उपदेशों में इतनी सामर्थ्य है कि वह स्वर्ग का दरवाजा खोल सकते हैं। ईसा को आलङ्कारिक ढङ्ग से बात करना बहुत पसन्द है, इसका जिक्र हम पहले भी कर चुके हैं। उनकी इस प्रवृत्ति का परिचय मैथ्यू के तेरहवे परिच्छेद में बहुत स्पष्टता के साथ मिलता है। बीज बोने वाले का दृष्टान्त, कड़वे दाने का दृष्टान्त, राई के दाने और खमीर का दृष्टान्त, सब इसी बात के सबूत हैं।

ईसा के अलङ्कार और दृष्टान्त बहुत जटिल नहीं हैं। अगर उनमें जटिलता आ जाती, तो फिर उक्ति का सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाता :—

मज़ा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे।
अगर अपना कहा वह आप ही समझे तो क्या समझे॥

मैथ्यू ने कड़वे दाने के दृष्टान्त का अर्थ करने का यत्न

किया है, हमे तो उसकी मुतलक भी जरूरत नहीं मालूम पड़ती। उसने ध्वनि को व्यक्त करके उसे गुणीभूत व्यंग्य बना दिया है, जिसने उसके सौन्दर्य पर एक पर्दा सा डाल दिया है, इसकी ज़रूरत ही क्या थी :—

समझ में साफ आ जाए फ़साहत इसको कहते है।
असर हो सुनने वालों पर वलाग़त इसको कहते हैं॥

मगर जहाँ आवश्यकता थी स्पष्ट करने की, वहाँ मैथ्यू ने भी ऐसी चुप्पी साधी है जिसका कुछ कहना नहीं। वस्तुतः आलङ्कारिक ढङ्ग साहित्य-शास्त्र की अपनी सम्पत्ति है, उसको धर्म-शास्त्र मे लाने का परिणाम कहीं भी अच्छा नहीं हुआ है। धर्म-शास्त्र का विषय ऐसा है, जिसमे श्रद्धालु लोग एक भी अक्षर का परिवर्त्तन या किसी भी प्रकार की खींचातानी को स्वीकार नहीं कर सकते। धर्म-शास्त्र मे अभिधा-शक्ति का प्राधान्य है, लक्षणा की भी कुछ गति है; मगर व्यञ्जना के लिए बहुत ही थोड़ा अवसर है। इसके विरुद्ध साहित्य-शास्त्र मे तो अभिधा शक्ति की कोई बात भी नहीं पूछता, वहाँ की अधिष्ठात्री तो व्यञ्जना है। कवियो ने, साहित्य-शास्त्रियो ने अभिधा शक्ति की बुरी तरह छीछा-लेदर की है। अभिधा शक्ति तो कह रही है—'भ्रम धार्मिक विश्वस्तः' ख़ूब निश्चिन्त होकर घूमो, मगर अर्थ क्या है? ख़बरदार बच्चा, जो कभी भूल कर भी इधर क़दम रक्खा तो ख़ैर न होगी। अभिधा तो कह रही है—'मा पथिक रात्र्यन्ध

शय्यायाँ मम निमंक्ष्यति।'—अरे रतौंधी वाले! रात को कहीं ठोकर खाकर मेरी खाट पर न गिर पड़ना। लेकिन अगर यहीं तक इन शब्दों की गति होती तो शायद नायिका भूल कर भी उन्हे अपनी ज़बान पर न लाती। मगर नहीं, वहाँ अभिधा शक्ति को पूछता कौन है? वह एक नहीं, हज़ार बार चिल्लाए—'मा निमंक्ष्यति-निमंक्ष्यति' मगर उसका अर्थ तो निषेध मे नहीं, विधि में ही निकलेगा। फलतः धर्म-शास्त्र और अलङ्कार-शास्त्र का विषय बिलकुल भिन्न है। एक उसी वाक्य का अर्थ करेगा घूमो, दूसरा कहेगा मत घूमो। इसलिए उन दोनो को मिला देने का परिणाम स्वभावतः ही अच्छा नही निकल सकता था, और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही है। भारतीय धर्म-शास्त्र में और पौराणिक साहित्य मे इस ढङ्ग का जगह-जगह अवलम्बन किया गया है। खास कर वेदों का तो यह रिज़र्व ढङ्ग दिखाई देता है। इस प्रकार के वाक्यों का अर्थ समझने के लिए तो भावना और भावुकता की आवश्यकता है। जरन्मी मांसक वैयाकरण खसूची उनमें एक शब्द का भी तात्पर्य नहीं समझ सकते। बात कड़वी ज़रूर है, मगर दर्द-दिल कराहने को मजबूर करता है :—

राखियो ग़ालिब मुझे इस तल्ख़नवायी में मुआफ,
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है।

जब तक भावना और भावुकता ने काम दिया, लोगो ने

वेदो का तात्पर्य और अर्थ ठीक लगाया, मगर जहाँ कोरा व्याकरण और कोरी अभिधा शक्ति आ विराजी, वही से वेद-मन्त्रो का अनर्थ प्रारम्भ हुआ। इसीलिए हम देखते हैं कि वेद का एक ही मन्त्र है, कोई उससे द्वैतवाद का प्रतिपादन कर रहा है और कोई उसी को अद्वैत परक लगा रहा है; कही उसी से मूर्ति-पूजा का विधान सिद्ध किया जा रहा है, तो कहीं वही वेद-मन्त्र मूर्ति-पूजा का कट्टर निषेधक हो रहा है। इसका बहुत-कुछ कारण वेद-मन्त्रो की आलङ्कारिक भाषा है। ठीक यही हाल ईसा के उपदेशो में भी हुआ है। ईसा का स्वर्ग की चाबी वाला आलङ्कारिक वर्णन समय पाकर बिलकुल प्रकृत रूप में परिणत हो गया और भक्त लोगो ने उसका बिलकुल सीधा-सादा अर्थ लगा लिया कि पीटर और उसके स्थानापन्न पोपो के हाथ मे स्वर्ग की चाबी है, वह जिसको चाहें स्वर्ग का दरवाज़ा खोल सकते हैं। जनता के इस विश्वास का परिणाम क्या हुआ है, इससे यूरोप के इतिहास के पाठक भली-भाँति परिचित हैं। धर्म के नाम पर पोपो द्वारा दिए जाने वाले माफ़ीनामो की जड़ यही विश्वास है। शायद लुई १४ वे का ज़माना था, उस समय स्वर्ग के उम्मेदवारों के लिए पोप के यहाँ से सीधे टिकट मिलना शुरू हो गए थे, जिनको कि "Indulgence" कहा जाता था। उम्मेदवारों से इसके लिए रुपया लिया जाता था और उसके अनुसार ही उन्हें Indulgence

दिए जाते थे। Indulgence शब्द का अर्थ डिक्शनरी ने दिया है :—

"Remission, by church authority to a repentent sinner, of the penance attached to a certain sin."

"ईसाई धर्म के प्रधानाधिकारी द्वारा किसी पाप का पापी द्वारा प्रायश्चित्त किए जाने पर क्षमा कर देना।"

इन माफीनामो की कल्पना सम्भवतः बाइबिल के इन्हीं शब्दो के आधार पर हुई। जब पोप ने इन माफीनामो की घोषणा कर दी तो धीरे-धीरे उनकी बिक्री की तादाद हजारो तक पहुँच गई और उसके बदले में पोप के खज़ाने मे धड़ाधड़ रुपया आने लगा। बात इतने पर ही न रुक गई, बल्कि इनकी बिक्री के लिए पोप को विशेष एजेण्टों के रखने की ज़रूरत पड़ गई। उदार पोप अपने बहुत से वैतनिक एजेण्ट रख कर संसार के पापियों को मुक्त करने का शुभ कार्य कर रहा था। उसके इन एजेण्टों में से टिटेज़ल (Titezel) भी एक था। इन माफीनामों को प्राप्त करने के लिए सच्चे हार्दिक पश्चात्ताप की नहीं, सिर्फ धन की आवश्यकता थी। बड़े-बड़े चोर, लुटेरे, डाकू और व्यभिचारी भी उनकी क़ीमत देकर इन माफीनामों को प्राप्त कर सकते थे। पोप की दृष्टि उस समय धन पर लगी हुई थी, उसने इसके दूसरे पहलू को विचारने का कभी यत्न ही नहीं किया :—

बद न बोले ज़ेर गर्दूं गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने॥

लोगो के दिल में जैसे को तैसी तरकीब सूझ गई। एक बार इसी प्रकार के माफीनामों की बिक्री से प्राप्त हुआ हज़ारो रुपया पोप के खज़ाने को जा रहा था। रास्ते मे उसे डाकुओ ने घेर लिया। रुपए के रक्षकों ने कहा—यह रुपया तो चर्च का है, इसे लूटने से तुम्हें पाप होगा। डाकुओ के सरदार ने आगे बढ़ कर अपनी जेब से एक माफीनामा निकाल कर पेश कर दिया और बोला कि हम सबके पास इस प्रकार के माफीनामे हैं, अब हमे क्या पाप लगेगा? परिणाम जो कुछ होना था वही हुआ, मगर इससे एक बार पोप की ऑखें खुल गई।

इस और इसी प्रकार की अन्य घटनाओ का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व मसीहाई वसीयतनामे की इस आलङ्कारिक भाषा पर है। अस्तु—

वसीयतनामे की विवेचना मे एक शब्द और शेष रह जाता है। मैथ्यू ने ईसा के मुँह से कहलाया है :—

"Upon this rock I will build my church."

यह चर्च शब्द ईसा के समय का नहीं, बल्कि उसकी सृष्टि ईसा की मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने की है। श्रेक महोदय ने इस विषय में लिखा है :—

"Moreover the word church betrays its later

origin, the word "Church" was used by diciples to signify those assemblies and organisations into which they formed themselves after the death of Jesus, and is met with frequently in epistles, but nowhere in the gospels except in the passage under consideration and one other, which is equally, or even more contestable. It was in use when the gospel was written but not when the discourse of Jesus delivered.

"It must be taken as belonging, therefore to Matthew, not to Jesus."

Creed of Christendom, pp 82.

चौथा खण्ड

अन्तिम झाँकी
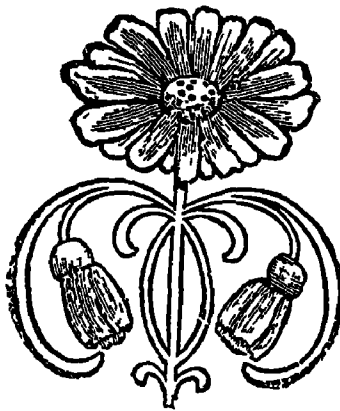
सन्ध्या का समय था, झुटपुटा हो चला था। ईसा घर के एक कोने में अपने शिष्य-मण्डल के साथ बैठा भोजन कर रहा था। मगर मालूम नहीं क्यों आज उसका जी कुछ टूट रहा था। उसमें उल्लास नहीं था, स्थिरता नहीं थी, बल्कि उसकी जगह उद्विग्नता की मात्रा कुछ अधिक थी। किसी आशङ्कित भय से या सम्भावित आशङ्का से उसका हृदय काँप रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने जीवन के पीछे किसी गुप्त षड्यन्त्र की गन्ध आ रही हो। इसीलिए क्षण-क्षण में उसके चेहरे पर भाव-परिवर्त्तन की झलक आ जाती है, उसके मुँह से वही भाव शब्दों के रूप में व्यक्त हो जाते हैं। लिखने वालों ने भी उन भावों को चित्रित अवश्य किया है, परन्तु वहाँ तो उनका शुद्ध रूप नहीं रहा प्रतीत होता; उनके ऊपर तो मसीहाई रङ्ग चढ़ाया—खूब चढ़ाया गया है। हमें तो उस मसी-

हाई रङ्ग में सौन्दर्य भी प्रतीत नहीं होता और स्वाभाविकता भी नहीं भासती। उससे अधिक सुन्दर, स्वाभाविक और भावपूर्ण तो चित्र की वाह्य रेखाएँ ही थीं। उसी गुप्त षड्यन्त्र की गन्ध के कारण रह-रह उसके मुँह से निकल पड़ता है कि अब मेरा समय आ गया है। भोजन के समय भक्त-हृदय की एक महिला ने कुछ बहुमूल्य सुगन्धित द्रव्य ईसा के ऊपर छिड़क दिया। शिष्यों को यह बात कुछ पसन्द न आई, वह तो स्पष्ट अपव्यय था। इसीलिए उनमें से किसी ने टोक भी दिया कि यह तुमने क्या किया? महापुरुष ईसा को इन बातों की क्या आवश्यकता? यदि इस द्रव्य को बेच कर उसका धन निर्धन भिक्षुकों को बाँट दिया जाता तो उससे कितने प्राणियो का उपकार होता और यह कार्य कितने पुण्य का होता। बात ठीक थी, ईसा के मन की थी, आज तक के ईसा के क्रियात्मक जीवन का सार थी, परन्तु आज तो ईसा कुछ असाधारण ईसा प्रतीत होता था। उसके सामने अपने जीवन का अन्तिम दृश्य उपस्थित सा प्रतीत होता था। उस समय ईसा के शब्दो से अन्तिम समय की वेदना स्पष्ट फूटी सी पड़ती है। अन्तिम समय समीप समझ कर तो एक बार निर्दयता भी सदय हो जाती है, फिर ईसा तो साक्षात् दया का अवतार था। उसके सामने ही एक महिला को उसके शिष्य इस तरह फटकार दे, यह कब सम्भव था? ईसा ने

उस महिला का पक्ष लिया; परन्तु उसके भीतर वह भावना, जो उस समय ईसा के हृदय को व्यथित कर रही थी, स्पष्ट प्रतीत होती है। ईसा ने कहा कि यह तो उसने अच्छा ही किया है, मेरे अन्तिम संस्कार के समय लगाए जाने वाले तेल या अङ्गराग का कार्य यही दे जायगा।

ईसा के पीछे जो गुप्त षड्यन्त्र हो रहा था उसमे केवल उसके शत्रुओ का ही हाथ नहीं था, बल्कि उसमें ईसा के अत्यन्त विश्वासपात्र वह आदमी भी सम्मिलित थे, जिन्हें ईसा अपना समझता था। सबसे अधिक ईसा के हृदय में चुभने वाली बात तो यही थी। जिन लोगों के ऊपर उसने विश्वास किया है, जिन्हे उसका संसर्ग-गौरव प्राप्त हुआ है, वह भी आज उसके साथ विश्वासघात करने पर उतर आए हैं। इससे बढ़ कर नीचता का कार्य और क्या हो सकता है ?

विश्वास्य मधुर वचनैः साधून् ये वञ्चयन्ति नम्रुतमाः।
तानपि दधासि मातः काश्यपि यातस्तवापिव विवेकः॥

विश्वासघाती यहूदा ईसा के बारह शिष्यो में से एक था। मालूम नहीं, कौन सी पाप-वासनाएँ उसके हृदय में उदय हुई, जिनके वशीभूत होकर उसने संसार की विभूति, अपने देश के गौरव, और अपने हृदय-सम्राट् महात्मा ईसा के साथ इस घोर विश्वासघात की ठानी, और वह भी तीस रुपए के क्षुद्र लालच पर! धिक्कार है उस नारकीय जीवन

को। ईसा ! तुम सचमुच महात्मा हो ; उन नीच विश्वास-घातियों पर भी अपनी सरल प्रकृति के कारण तुम अविश्वास न कर सके। अब भी तुम उन्हें अपने उन्हीं प्रिय शिष्यों की श्रेणी में सम्मिलित किए हुए थे।

अयिलपज महिमापं कस्य गिरामस्तु विपयस्ते।
उद्गिरतो गरलं फणिनः पुष्णासि परिमलोऽहारै॥

ईसा के शत्रुओं के साथ उसके प्राण लेने के गुप्त षड्यन्त्रों मे यहूदा कैसे सम्मिलित हुआ, यह कथा और भी अधिक मनोरञ्जक है और यहूदा की नीच प्रकृति की परिचायिका है। मैथ्यू ने लिखा है :—

"बारह शिष्यों में से यहूदा, इस्करियोती नाम का एक शिष्य प्रधान याञ्चकों के पास गया और कहा कि यदि मैं ईसा को आप लोगों के हाथ पकड़वा दूँ तो आप लोग मुझे क्या देंगे ? उन्होंने उसे तीस रुपए देना ठहराया, और वह उसी समय से उसको पकड़वाने का अवसर ढूँढ़ने लगा।"

उन दिनों नीच यहूदा की दृष्टि में संसार के सबसे बड़े महापुरुष के जीवन का मूल्य तीस और केवल तीस रुपए कूता गया। तीस रुपए के लालच में अपने गुरु, देश के गौरव और संसार की विभूति, एक महापुरुष को बेच देना इतिहास की एक अनहोनी सी घटना प्रतीत होती है। परन्तु भावी बलवान् है, ईसा को अन्तिम समय में शिष्यों की

ओर से किए गए विश्वासघात की व्यथा को अनुभव करना था, उसको कैसे टाला जा सकता था :—

यद्धात्रा निज भालपट्टलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ।

ईसा को जिस घड़ी से किसी सूत्र द्वारा इस किए जाने वाले विश्वासघात का भेद मिला, उसी घड़ी से एक अनन्त वेदना उसके हृदय को मसोसे डालती है । मृत्यु का भय और दुःख ऐसे महापुरुषों को नहीं होता है । अपने जीवन को हथेली पर रख कर ही तो वह कार्य-क्षेत्र में उतरते हैं । विशेष कर ईसा तो अपने जीवन मे कई बार दुहरा चुका था :—

"If any man will come after me, let him deny himself, and take up his cross daily and follow me."

Luke. IX 23

"जिसके हृदय मे मेरे पीछे आने की साध हो, उसे चाहिए कि अपने जीवन को बिल्कुल भुला दे, अपनी सूली हाथ में लेकर फिर बेधड़क मेरे पीछे चल दे ।"

यह तो ईसा भली-भाँति जानता था कि उसकी जीवन-यात्रा का अन्त शत्रुओं के हाथों होगा, इसलिए अपनी मृत्यु का तो भय न उसे हो ही सकता था, और न था ही । परन्तु इस अधम विश्वासघात की सम्भावना ने सचमुच उसके हृदय को मर्मान्तक व्यथा पहुँचाई है । ऐसा ईसा के मुख से निकले प्रत्येक पद से टपकता है ।

भोजन समाप्त कर ईसा अपने शिष्य-मण्डल सहित जैतून पर्वत पर और फिर जेथेस्मेनी नामक स्थान पर गया। यहाँ आकर ईसा ने ईश्वर-प्रार्थना करनी चाही। चरित्र-लेखकों ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"तब ईसा ने अपने शिष्यों सहित जेथेस्मेनी नामक स्थान पर आकर उनसे कहा कि जब तक मैं वहाँ जाकर प्रार्थना करूँ, तब तक तुम यहाँ बैठो। और वह पीटर एवं जबदी के दोनो पुत्रो को साथ ले गया और बहुत शोक करने लगा, और उदास होने लगा। उस समय उसने उनसे कहा कि मेरा मन ऐसा उदास हो रहा है जैसे मैं बिल्कुल मरने पर हूँ। तुम यहाँ ठहर कर मेरे सङ्ग जागते रहो। फिर थोड़ा आगे बढ़ कर वह मुँह के बल गिरा और प्रार्थना की कि हे मेरे पिता! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय, परन्तु यदि तेरी यही इच्छा हो तो जैसा मैं चाहता हूँ वैसा न हो, बल्कि जैसा तू चाहता है वैसा ही हो।

"तब उसने शिष्यो के पास जा उन्हे सोते पाया, और पीटर से बोला कि तुम मेरे साथ एक घड़ी भर भी न जाग सके। जागते रहो और प्रार्थना करो कि तुम परीक्षा मे न पड़ो। मन तो तैयार है, परन्तु शरीर दुर्बल है। फिर उसने दूसरी बार जाकर प्रार्थना की कि हे पिता! जो बिना पिए यह कटोरा मेरे पास से नहीं टल सकता है तो तेरी

इच्छा पूर्ण हो। तब उसने आने पर उन्हें फिर सोते पाया, क्योंकि उनकी आँखें नींद से भरी थीं। उनको छोड़ तीसरी बार फिर उसने जाकर वही प्रार्थना की, तब उसने अपने शिष्यों के पास जाकर कहा कि तुम सो और विश्राम कर रहे हो, देखो अब समय आ गया है कि मनुष्य का पुत्र पपियों के हाथ पकड़ा जायगा।"

ईसा जैसे महापुरुषों की अन्तिम झाँकी जितने सुन्दर रूप में चित्रित की जानी चाहिए, उसका लेश-मात्र भी चरित्र-लेखकों के इस चित्रण में प्रतीत नहीं होता। उपरोक्त पंक्तियो को आद्योपान्त पढ़ने से एकमात्र यही भाव टपकता है कि जैसे इस अनागत विभीषिका से ईसा का हृदय काँप रहा है। उसे मृत्यु का स्वरूप बड़ा विभीषण प्रतीत होता है। उससे भयभीत होकर बिल्कुल साधारण पुरुषों की भाँति बार-बार परमात्मा से प्रार्थना करता है कि—'यदि हो सके तो यह कटोरा बिना पिए मेरे पास से टल जावे।' अर्थात्—यदि सम्भव हो तो हे प्रभु! मेरी रक्षा कर। इतनी अधिक व्यग्रता तो साधारण पुरुषों को भी शोभा नहीं देती, फिर ईसा तो महापुरुष ठहरे, उनके चरित्र में यह व्यग्रता कैसे खप सकेगी। सम्भव है कि ये सब शब्द शक्ति को न पहिचान सकने वाले चरित्र-लेखको की बुद्धि के परिणाम हों, क्योंकि ईसा मृत्यु के भय से इतना उद्विग्न हो—यह तो सम्भव प्रतीत नहीं होता। फिर उस मसीहाई रङ्ग मे,

जिसमें चरित्र-लेखकों ने उसे चित्रित किया, यह उद्विग्नता कैसे फब सकेगी ? वह तो जानता था कि मैं मर नहीं रहा हूँ। अनेक बार उसने कहा है कि मैं तीसरे दिन जी उठूँगा। अभी इस वर्णन के ठीक पाँच-सात पंक्तियों के ऊपर भी इस बात को दोहराया गया है। एक ओर इतना दृढ़ विश्वास, इतना तत्वज्ञान, और दूसरी ओर यह उद्विग्नता ! आश्चर्य है !!

ईसा के चरित्र और इन शब्दों में घोर विरोध है। हम नहीं कह सकते कि यह या इस प्रकार के शब्द ईसा ने कहे होंगे, और यदि कहे भी हों तो इस भाव से नहीं कहे गए होंगे, जो भाव चरित्र-लेखकों के शब्दों से प्रतीत है। इस प्रकार को एक घटना हमें इतिहास में और मिलती है और वह है बीसवीं सदी के विधाता ऋषि दयानन्द का बलिदान। जिस प्रकार ईसा के अपने आदमी ने उसके साथ विश्वास-घात करके उसे पकड़वाया है, उसी प्रकार—बल्कि उससे भी अधिक भयानक रूप में विश्वासघाती जगन्नाथ ने अपने स्वामी के साथ दगा की है। जगन्नाथ स्वामी दया-नन्द का विश्वासपात्र नौकर था। स्वामी जी के भोजन आदि की सारी व्यवस्था उसी के हाथ थी। जोधपुर-नरेश की प्रेयसी वेश्या नन्हीं जान के द्वारा कुछ धन का लालच पाकर पापी जगन्नाथ ने अपने हाथो दूध में काँच घोल कर, काँच मिश्रित दूध ऋषि दयानन्द को पिला दिया। जब विष

ने भीतर पहुँच कर अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया, तब कहीं स्वामी जी को सन्देह हुआ कि मेरे साथ विश्वास-घात किया गया। उस समय का ऋषि दयानन्द का धैर्य इस संसार से ऊपर की वस्तु है। आज तक संसार के इतिहास ने इस प्रकार का कोई दूसरा उदाहरण उपस्थित नहीं किया, और भविष्य मे भी किसी देश का इतिहास इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति कर सकेगा या नही, इसमे सन्देह है। ऋषि के चेहरे पर न किसी प्रकार की व्यग्रता है, न भय और घबराहट। ऋषि ने जगन्नाथ के ऊपर क्रोध नहीं किया, उसे फटकारा नहीं, उसे राज-सत्ता के सिपुर्द नहीं किया, केवल सदय शब्दो मे यह कहा कि जगन्नाथ, क्या तुम जानते हो अभी कितना काम शेष था ? सम्भव है कि ईसा के मुँह से निकले हुए उपरोक्त शब्दों के भीतर भी वही भाव अन्तर्हित हो। अपने अवशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य की ओर देखते हुए ही उसने कहा हो कि यदि हो सके तो यह प्याला बिना पिए ही मेरे पास से टल जाय। परन्तु यह तो आज हमारी सम्भावना मात्र है। जिन लोगो ने उसके दिव्य चरित्र के चित्रण का कार्य लिया है, उन्होंने ईसा-चरित्र का ओज कम से कम यहाँ तो बिल्कुल शिथिल कर दिया है। एक साधारण पुरुष की तरह व्यग्र होना ईसा जैसे महापुरुषों को शोभा नहीं देता। एक ओर दयानन्द और दूसरी ओर ईसा दोनो टक्कर के बलिदान है, परन्तु दोनों मे कितना अन्तर

है !! दयानन्द विष का प्याला पी चुका है, मृत्यु-शय्या पर बैठा हुआ है और विश्वासघाती जगन्नाथ से केवल यही कहता है कि क्या तुम जानते हो कि अभी कितना कार्य शेष था ? दूसरी ओर ईसा के ऊपर अभी कोई आपत्ति नहीं आई है, अभी वह शत्रुओं के हाथ भी नहीं गया है, केवल एक गुप्त षड्यन्त्र की आशङ्का से इतना अधिक घबरा उठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द आकाश में विचर रहा है और ईसा भूतल पर रेंग रहा है।

इसके बाद ईसा के पकड़े जाने का समय आता है :—

"ईसा यह कह ही रहा था कि देखो, यहूदा जो बारह शिष्यों मे से एक था, आ पहुँचा। लोगों के प्रधान याजकों और सनातनियो की ओर से बहुत से लोग खड्ग और लाठियाँ लिए हुए उसके साथ थे। ईसा के पकड़वाने वाले (यहूदा) ने उन्हें यह पता दिया था कि जिसको मैं चूमूँ वही ईसा है, उसी को पकड़ना। यहूदा तत्काल ईसा के पास आकर बोला—हे गुरो प्रणाम ! और उसको चूमा। ईसा ने उससे पूछा कि मित्र ! तू किस लिए आया है, तब उन्होंने पास आकर ईसा पर हाथ डाल के उसे पकड़ लिया।

"इस पर ईसा के साथियों में से एक ने अपना खड्ग खींच कर महायाजक के दास को मारा और उसका कान उड़ा दिया। तब ईसा ने उससे कहा कि अपनी तलवार

म्यान में करो। क्योंकि जो लोग खड्ग खींचते हैं, सब खड्ग से नाश किए जायँगे × × × ।

"उसी समय ईसा ने उन लोगों से (पकड़ने वालों) कहा कि क्या तुम मुझे पकड़ने को डाकू सदृश खड्ग और लाठियाँ लेकर निकले हो? मैं तो मन्दिर में प्रवेश करता हुआ प्रतिदिन तुम्हारे साथ बैठता था, तब तुमने मुझे क्यों न पकड़ लिया!!"

—मैथ्यू २६। ४७ से ५६ तक

इस अवसर पर ईसा के मुँह से जो शब्द निकले हैं उनमें अवश्य एक प्रकार की स्थिरता है, उनसे ईसा की घबराहट प्रतीत नहीं होती, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस घटना को कोई विशेष महत्व नहीं दे रहा है। इसके लिए तो वह पहले से ही तैयार बैठा है। शायद ईसा यह जानता था कि :—

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतन्तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम्॥

इसीलिए जब तक केवल आशङ्कित भय था, उसका आक्रमण ईसा पर न हुआ था, तब तक वह अत्यन्त भयभीत और व्यग्र रहा। परन्तु जब वह भय साक्षात् उसके सामने आकर खड़ा हो गया, तब ईसा स्थिरता के साथ, वीरों की भाँति बिना घबड़ाए उसका सामना कर रहा है, जैसे मृत्यु की तुच्छ विभीषिका उसके ऊपर अपना आतङ्क जमा ही

नहीं सकती। यह भाव सराहनीय है, ईसा-चरित्र के उपयुक्त है। उसमें ईसा महापुरुष प्रतीत होता है।

इधर यदि ईसा सँभला है तो उसके शिष्य बुरी तरह लड़खड़ा गए हैं। अभी पिछली पंक्तियों में ईसा के पकड़े जाने के कुछ क्षण पहले ही पीटर और उसके साथी शिष्यों ने ईसा से कहा था—"यदि आपके साथ मुझे मरना भी पड़े तो मैं आपसे नहीं मुकरूँगा।"

परन्तु कहने और करने मे भेद है। ईसा के शिष्यों मे वह हृदय नहीं था, जोकि विपत्ति में उसका साथ दे सके। राज-सत्ता का मुकाबला करना और उस पर दृढ़ता के साथ जमे रहना विरलों का काम है। जिस समय ईसा क़ैद कर लिया गया तो उसके उन शिष्यों ने, जो अभी कह रहे थे कि वे उसके साथ जान देने से भी पीछे नहीं हटेंगे, क्या किया? जरा चरित्र-लेखकों के शब्दों को सुनिए—"तब सब शिष्य उसे छोड़ कर भागे।" 'सब' और 'भागे' शब्द विशेष रूप से चुभने वाले है। एक भी शिष्य ऐसा नहीं था, जो उस समय भी कह सकता कि हाँ, मै ईसा का शिष्य हूँ। और वह पीटर, जो ईसा के शानदार युग मे उसका सब कुछ था, उसके ऊपर जान देने को तैयार था, वह तो और भी अधिक कायर एवं बुज़दिल निकला। पूछने पर एकदम मुकर गया :—

"वह धिक्कार देने और शपथ खाने लगा कि मै उस मनुष्य को नहीं जानता।"

अरे पीटर ! जिस ईसा के वासन्ती दिनो में—शानदार युग में—तूने उसके साथ अपनी शान बढ़ाई, स्वर्ग का द्वार खोलने वाला बना, Upon this rock I will build my Church, के शब्दो में उसके मिशन की आधार-शिला कह-लाया, आज उस ईसा के ऊपर दैवात् विपत्ति आई हुई है। इस विपत्ति के समय यदि तू उसका साथ नहीं देता, उसके प्रति अविनय करता है, उससे मुकरता है, तो अरे पीटर ! तुमसे बढ़ कर नीच पुरुष संसार में कौन होगा ?

स्वयं अपने आप ईसा को शत्रुओं के हाथ फँसा कर शिष्य-मण्डल एकदम नौ-दो ग्यारह हुआ। जैसे उसका ईसा से कोई सम्बन्ध ही नहीं। सच है—'राजद्वारे च श्मशाने यस्तिष्ठति स बान्धवः।' आपत्ति के समय राजद्वार और श्मशान में जो साथ दे, वही सच्चा बान्धव है। ईसा के शिष्य बन्धुत्व के उस आदर्श को भी नहीं निभा सके हैं।

ईसा को पकड़ने के बाद —

"जिन लोगों ने ईसा को पकड़ा था वह उसे कियाफा महायाजक के पास ले गए, जहाँ अध्यापक और प्राचीन लोग इकट्ठे हुए। पीटर दूर-दूर उसके पीछे महायाजक के आँगन तक चला गया और भीतर जाकर इसका अन्त देखने को प्यादो के साथ बैठ गया। प्रधान याजको, सना-तनियों और न्यायकर्ताओ ने ईसा का घात कराने के लिए उसके विरुद्ध झूठी साक्षी ढूँढ़ी, परन्तु न पाई। अन्त में दो

साक्षी झूठे आकर बोले कि इसने कहा था कि मै ईश्वर का मन्दिर ढा सकता हूँ, और तीन दिन में उसे फिर खड़ा कर सकता हूँ। तब महायाजक ने खड़े होकर पूछा कि क्या तू इस विषय में कुछ उत्तर नहीं देता, यह लोग तेरे विरुद्ध साक्षी दे रहे है। परन्तु ईसा चुप रहा, इस पर महायाजक ने उससे कहा कि मै तुझे जीवित ईश्वर की शपथ देता हूँ, हमे बता कि तू ईश्वर का पुत्र क्राइस्ट—मसीह—है या नहीं ? ईसा उससे बोला कि तू तो कह चुका, मैं तुझसे भी कहता हूँ कि इसके बाद तुम मनुष्य के पुत्र को सर्वशक्तिमान की दाहिनी ओर बैठे और आकाश के मेघो पर आते देखोगे। तब महा-याजक ने अपने वस्त्र फाड़ के कहा कि यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है। अब हमें साक्षियो की क्या आवश्यकता ? देखो, तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है। तुम क्या विचार करते हो ? उन्होने उत्तर दिया वह वध के योग्य है। तब उन्होने उसके मुँह पर थूका और उसके घूँसे मारे, औरो ने थप्पड़ मारते हुए कहा—हे ख्रीष्ट ! हमसे भविष्यवाणी बोल, किसने तुझे मारा।"

इस समय ईसा बड़े धैर्य से काम ले रहा है। वह पर्वत की नाईं अविचल है। यदि चाहता तो थोड़ी सी बाते बना कर साफ छूट जाता। उसके विरोध में कोई साक्षी नहीं थी। जो शब्द दो साक्षियों ने प्रस्तुत किए थे, उसकी व्याख्या और स्पष्टीकरण कुछ संशोधित रूप में कर देने मात्र से

सारा मामला तय हो जाता और ईसा साफ छूट जाता, परन्तु—

> क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिल प्रायोऽपि कष्टां दशा।
> मापन्नोऽपि विपन्न दीधिति रपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि॥

वृद्धावस्था से जर्जर, भूख से व्याकुल, दुःखद अवस्था को प्राप्त और प्राण-नाश का समय उपस्थित होने पर भी—

> किं जीर्णं तृणमत्तिमान महता मग्रेसरः केसरी।

क्या कभी किसी ने शेर को घास खाते देखा है? फिर महापुरुष ईसा से ही यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए इस प्रकार अपने सिद्धान्त से मुकर जायगा। इस समय ईसा ने सचमुच वही कार्य किया जिसकी आशा उस जैसे महापुरुषों से की जा सकती है। शत्रुओं के बीच खड़े हो, इस प्रकार निर्द्वन्द भाव से अपने सिद्धान्त को प्रगट कर देना सबका काम नहीं है।

"जब प्रातःकाल हुआ तब लोगों के सब प्रधान याजकों और सनातनियों ने ईसा के विरुद्ध विचार किया कि उसका वध कराएँ, उन्होंने उसे बाहर ले जाकर पाइलेट अध्यक्ष के सिपुर्द कर दिया।"

अध्यक्ष पाइलेट के यहाँ ईसा के अभियोग पर किस प्रकार वाद-विवाद हुआ और ईसा को निरपराध समझते हुए भी लोकमत के अनुरोध से किस प्रकार पाइलेट को

विवश होकर ईसा के मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था देनी पड़ी है, इसकी आलोचना हम पुस्तक के प्रारम्भिक परिच्छेद में कर चुके हैं। ईसा के मृत्यु-दण्ड का व्यवस्था-पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है। हम उसका नीचे अविकल अनुवाद देते हैं :—

ईसा के मृत्यु-दण्ड का आज्ञापत्र

पौण्टियस पाइलेट अस्थिर गवर्नर 'लोअर जैलिसी' ने नैज़रथ-निवासी ईसा को दण्डाज्ञा दी कि सूली द्वारा मृत्यु-दण्ड भोगे।

सम्राट टिपिरियस कैसर के १७ वे राज्यावेद में २७ वीं मार्च को जरूसलम के पवित्र नगर में एनस और कफ़ायस यहूदी पुजारी और ईश्वरीय पूजार्थ बलिदान-कर्ता तथा पौण्टियस पाइलेट गवर्नर लोअर जैलिसी का, जिसने प्रोटरी (प्राचीन रोमन न्याय-सभा) में सभापति का आसन ग्रहण किया था, नैज़रथ-निवासी ईसा को दण्डाज्ञा देते हैं कि दो चोरों के मध्य स्थानीय सूली द्वारा मृत्यु-दण्ड पावे।

साक्षियों से प्रमाणित होता है कि —

१—ईसा लोगों को सत्पथ से हटाता है।

२—वह राज-विद्रोही है।

३—वह आइन का विरोधी है।

४—वह मिथ्या रीति से अपने को ईश्वर कहता है।

५—वह यहूदी मन्दिर में घुसा। उसके पीछे एक समुदाय हाथों में खजूर की डालियाँ लिए हुए था।

प्रथम, योधशताधीश क्यूलियस कार्निलियस उसको सूलीघर तक ले जावे।

प्रत्येक पुरुष को, चाहे सम्पन्न हो अथवा दरिद्र, आज्ञा दी जाती है कि वह ईसा के मृत्यु-दण्ड का विरोध न करे।

साक्षी, जिन्होंने ईसा के मृत्यु-दण्ड पर हस्ताक्षर किए, यह हैं :—

डैनिपाल टोवानी (फ़ैरीसी)

जौनसन सेवानी

राइफेल रोवानी

कैपट (नगर निवासी)

ईसा जरूसलम नगर से 'स्ट्रूइगस' द्वार से बाहर जावेगा।

अध्यक्ष ने ईसा के मृत्यु-दण्ड का आज्ञापत्र पढ़ कर सुना दिया। न्याय का अभिनय पूरा हुआ। अब सचमुच ईसा के जीवन का अन्तिम समय उपस्थित है। आओ उस महापुरुष के जीवनाभिनय का यवनिका-पात होने से पहले उसकी अन्तिम बाकी-झाँकी से हम भी अपने को कृतकृत्य कर लें :—

"तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने ईसा को अध्यक्ष-भवन में ले जाकर सारी पलटन उसके साथ इकट्ठी की और उसके कपड़े उतार, लाल चोग़ा उसे पहिनाया। काँटों का मुकुट गूँथ कर उसके सिर पर रक्खा, और उसके दाहिने हाथ में नरकट दिया। फिर उसके आगे घुटने टेक कर यह कह

कर उससे ठट्ठा किया कि हे, यहूदियों के राजा प्रणाम! उसके बाद उन्होंने उस पर थूका और वह नरकट ले उसके सिर पर मारा। जब वे उससे ठट्ठा कर चुके, तब उसका चोगा उतार कर उसीके कपड़े पहिना, उसे क्रूस पर चढ़ाने ले गए।

"लोगो की बड़ी भीड़ उसके पीछे हो ली, जिनमे उसके लिए छाती पीटती और विलाप करती बहुत सी स्त्रियाँ भी थीं। ईसा ने उनकी ओर फिर कर कहा कि हे जरूसलम की पुत्रियो, मेरे लिए रोने की आवश्यकता नहीं, यदि रोती हो तो अपने और अपने पुत्रो के लिए रोओ, क्योंकि देखो वह जमाना आने वाला है जब लोग कहेंगे कि वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो वन्ध्या हैं। धन्य वे गर्भ हैं, जिन्होंने पुत्र पैदा नहीं किए, और धन्य वे स्तन हैं जिन्होंने दूध नहीं पिलाया; क्योकि जब वे हरे पेड़ (ईसा) से यह बर्ताव करते हैं तो सूखे पेड़ो का तो कहना क्या। वे दो और मनुष्यो को भी, जो कुकर्मी थे, ईसा के साथ वध करने को ले जा रहे थे।"

—लूक २३। २७ से ३२ तक

"ईसा अपना क्रूस उठाए उस स्थान को, जो खोपड़ी का स्थान और हिब्रू भाषा में गलगथा कहलाता था, चला। वहाँ पहुँच कर उन्होंने ईसा और उसके साथ दोनो मनुष्यों को सूली पर चढ़ाया, एक को इधर और एक को उधर और बीच में ईसा को। पाइलेट-लिखित दोष-पत्र, जिसमें

यहूदियों का राजा लिखा था, उसके मस्तक पर लगाया गया। यह दोष पत्र बहुत से यहूदियों ने पढ़ा, क्योंकि वह स्थान, जहाँ ईसा क्रूस पर चढ़ाया गया, नगर के निकट था और पत्र हिब्रू, यूनानी और रोमन भाषा में लिखा हुआ था।"

—योहन १९। १७ से २० तक

"जो लोग उधर से आते-जाते थे, उन्होंने सिर हिला-हिला कर यह कहते हुए उसकी निन्दा की कि हा! मन्दिर को ढाने हारे और तीन दिन में बनाने हारे अपने को बचा और क्रूस पर से उतर आ। इसी प्रकार प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों के सङ्ग आपस में ठट्ठा कर कहा कि उसने औरों को तो बचाया, परन्तु अपने को नहीं बचा सकता। इस्राइल का राजा क्राइस्ट क्रूस पर से उतर आवे कि हम देख कर विश्वास करें। जो उसके साथ क्रूस पर चढ़ाए गए, उन्होंने भी उसकी निन्दा की

"जब दोपहर हुआ तो सारे देश में तीसरे पहर तक अन्धकार हो गया। तीसरे पहर ईसा बड़े ज़ोर से चीख़ा और बोला—"एली-एली लामा शवक्तनी!' अर्थात् हे मेरे ईश्वर! तूने मुझे क्यो त्याग दिया?" जो लोग निकट खड़े थे, उनमें से कितनो ने यह सुन कर कहा कि देखो, वह एलियाह को बुलाता है। और एक ने दौड़ कर स्पञ्ज सिरके में भिगोया और नल पर रख कर उसे पीने को दिया।

औरों ने कहा—रहने दो, हम देखें कि एलियाह उसे उतारने को आता है या नहीं।

"एक लम्बी ज़ोर की चीख के साथ ईसा ने प्राण त्यागा।"

—मार्क २६-३७

ऊपर हमने यथासम्भव चारों चरित्र लेखकों की रुचि और वर्णन-शैली की बानगी इस घटना के वर्णन में दिखाने का यत्न किया है। ईसा की इस अन्तिम झाँकी का जो स्वरूप हमने ऊपर रक्खा है, उसमें चारों ही चरित्र-लेखकों की कुछ-कुछ पंक्तियाँ हैं, और उन सबके सम्मिश्रण से ही इस स्वरूप की उत्पत्ति हुई है।

ईसा के अन्तिम समय का यह दृश्य बहुत भावपूर्ण है। यद्यपि हम देखते हैं कि चरित्र-लेखक उस दृश्य के पूर्ण सौन्दर्य को अक्षुण्ण रूप में चित्रित नहीं कर सके; फिर भी उसकी शत्रुओं के लिए भी क्षमा-प्रार्थना करने वाली भावना ने उसे बहुत ऊपर उठा दिया है। उस स्थल पर ईसा के क्रियात्मक और सैद्धान्तिक जीवन ने मिल कर सचमुच एक अपूर्व इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। यह ईसा की अपनी सम्पत्ति है। ईसा का बलिदान विश्व के साहित्य में बहुत ऊँची चीज़ है। उसमें आकर्षण है, जिसके जादू से हज़ारों हृदय हठात् खिंचे चले आते हैं। उसमें करुणा है, जिसे देख कर—'अपिग्नावारोदित्यपि दलति

वज्रस्य हृदयम्।' उसमें तेज है, जिसके आगे बड़े-बड़े तेजस्वी मस्तक नवा देते हैं। उस आकर्षण, करुणा और तेज ने ही ईसा के आधे जीवन को उज्ज्वल कर रक्खा है।

परन्तु इस स्थल पर अन्तिम क्षण में पहुँच कर ईसा के हृदय में कुछ दुर्बलता आ गई—ऐसा प्रतीत होता है। ईसा के अन्तिम—बिल्कुल अन्तिम—शब्दों में उसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है। अन्तिम समय में दोपहर के बाद—"तीसरे पहर ईसा बड़े ज़ोर से चीख़ा और बोला—'एली-एली लामा शवक्तनी !' अर्थात् हे मेरे ईश्वर ! हे मेरे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों त्याग दिया ?" इन शब्दो में हृदय की कुछ शिथिलता प्रतीत होती है। ऐसा भी मालूम होता है कि इस स्थल पर पहुँच कर सूली की घोर नारकीय व्यथा ने उसके ईश्वर-विश्वास को भी हिला सा डाला है। वह ईसा, जिससे ४० दिन निरन्तर भूखा और प्यासा रहने के बाद और शैतान की परीक्षा में पड़ कर भी अपने ईश्वर-विश्वास को दृढ़ रक्खा है, इस समय कह उठता है—'हे मेरे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों त्याग दिया।' इससे हम उस नारकीय व्यथा का, जिसका कि अनुभव इस समय ईसा ने किया होगा, कुछ, थोड़ा सा अनुमान मात्र कर सकते हैं। इतने दुर्धर्ष हृदय को विचलित कर देने वाली वह व्यथा कैसी भीषण होगी ! उसके आगे यदि ईसा का सिर झुक गया है, तो आश्चर्य की बात नहीं। ईसा अन्ततः मनुष्य था, परन्तु यह

व्यथा मानवीय सीमा के बाहर—बिलकुल बाहर की वस्तु थी ।

ऊपर महात्मा ईसा के बलिदान के साथ हमने ऋषि दयानन्द के बलिदान की चर्चा की थी । परन्तु अब इस सारी घटना पर तुलनात्मक आलोचना करने पर हम देखते हैं कि दयानन्द का बलिदान ईसा के बलिदान से ऊपर—बहुत ऊपर है । ईसा अगर अपने मारने वाले के लिए क्षमा-प्रार्थना कर सकता है, तो दयानन्द अपने घातक को स्वयं क्षमा प्रदान कर सकता है । ईसा की प्रार्थना सफल हुई होगी या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता ; परन्तु दयानन्द की क्षमा सफल हुई है । ईसा की क्षमा विवशता की क्षमा है (यद्यपि हमें विश्वास है कि यदि वह अपने घातक को उस दोष का दण्ड दे सकने मे समर्थ होता तो भी वह यही करता), परन्तु दयानन्द ने शक्ति रहते जगन्नाथ को क्षमा किया है । यदि वह चाहता तो जगन्नाथ को उसी समय राज-सत्ता के सिपुर्द कर देता ; परन्तु नहीं, आज उसने अपने प्राण-घातक को क्षमा प्रदान कर जो गौरव प्राप्त किया है, उसको जगन्नाथ जैसे क्षुद्र कीट के पापी प्राणों के मूल्य में बेच देना बुद्धिमत्ता नहीं थी । उससे आज ऋषि दयानन्द के चरित्र का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है । अपने क्रियात्मक जीवन में ईसा-चरित्र को अतिक्रान्त करवाने वाला दयानन्द आज विश्व की

विभूति है। उसका बलिदान संसार के समस्त बलिदानों में अतुलनीय है।

उस पर विशेषता यह कि दयानन्द की उदारता और उसकी क्षमाशीलता यहीं समाप्त नहीं हो जाती, उनका विकास चरम और यदि कहा जा सके तो चरम-सीमा से भी बहुत आगे तक हुआ है। प्राण-घातक, पापी जगन्नाथ सामने बैठा है और दयानन्द मृत्यु-शय्या पर, परन्तु उसके चेहरे पर, हृदय में और वचन में किसी प्रकार का विकार नहीं। दयानन्द बड़े सदय शब्दों में कहता है :—

"जगन्नाथ! क्या तुम जानते हो कि अभी कितना काम शेष था!" जैसे किसी बालक ने दावात लौटा दी हो और पिता कह रहा है, क्या तुझे मालूम है कि अभी कितना और लिखना था?

इसके आगे दयानन्द और बढ़ता है :—

"जगन्नाथ! जिन रुपयों के लालच से तुमने यह कार्य किया वह मालूम नहीं तुम्हे मिल सकें या नहीं, लो यह ४००) रु० की थैली है, मैं तुम्हें देता हूँ।"

यह है दयानन्द का क्रियात्मक आदर्श—प्रेक्टिकल जीवन। अपने घातक को प्रतिहिंसा की पूर्ण शक्ति रहते हुए भी तुमने क्षमा ही नहीं किया, बल्कि वह चीज़, जिसके लालच से उसने अपने लोक-परलोक दोनों को बिगाड़ा, वह भी तुम उसे दे रहे हो—सदय होकर दे रहे हो! ४००) की थैली

घातक जगन्नाथ को ! संसार में इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या होगी ? दयानन्द ने अपने जीवन में जो कुछ किया वह अपूर्व था, मगर मरते हुए दयानन्द ने जो कुछ किया वह अलौकिक था ।

इसी सम्बन्ध में दयानन्द के कुछ और शब्द शेष हैं—

"जगन्नाथ ! इन रुपयों को लेकर तुम चुपचाप यहाँ से चले जाओ । देखो किसी को घुणात्तर न्याय से भी इसका पता न लग जाय, नहीं तो तुम्हारे जीवन का अन्त है । यहाँ से भाग कर सुदूर नैपाल राज्य में पहुँच कर अपने जीवन की रक्षा करो ।"

दयानन्द ! यहाँ पर तुम ऊपर—इतने ऊपर उठ गए हो कि वहाँ तक किसी का भी पहुँच सकना दुष्कर नहीं, असम्भव—बिल्कुल असम्भव है । संसार के सारे बलिदान मिल कर भी तुम्हारे इस कृत्य की बराबरी कर सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है । अपने घातक को क्षमा ! ४००) की सहायता ! और उसकी जीवन-रक्षा का उपाय !! यह सब अद्भुत है, अपूर्व है, और अलौकिक है । तुम केवल तुम थे, जो ऐसा कर सके हो, संसार की कोई और शक्ति कल्पकल्पान्तर में भी इस घटना को दुहरा सकेगी, यह नहीं कहा जा सकता ।

दयानन्द और ईसा दोनो शहीद हैं । दोनों के बलिदानों में सौन्दर्य है, तेज है, और आकर्षण है । दोनों ही मानव-

संसार से परे की वस्तु हैं। दोनों की तुलना का परिणाम दो शब्दो में यही कहा जा सकता है कि—ईसा का बलिदान अपूर्व है। दयानन्द का बलिदान अतुलनीय है।
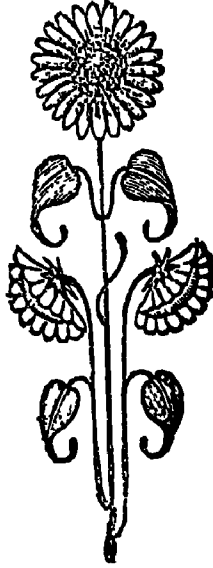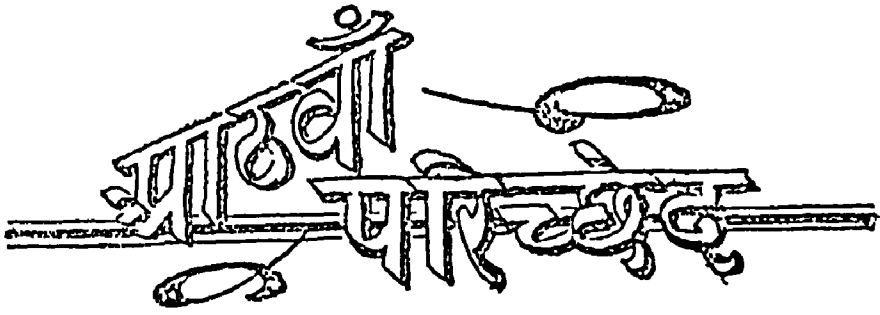
पुनरुज्जीवन

पिछली पंक्तियो में हम देख चुके हैं कि महात्मा ईसा के जीवनाभिनय का यवनिका-पात कितने सुन्दर ढङ्ग से हुआ है। उसमें महापुरुषों का तेज है, सुधारकों का बलिदान है, ईसा के अनुरूप त्याग है, और है चरम श्रेणी की स्वाभाविकता। यदि उसके साथ ही मैथ्यू आदि चरित्र-लेखकों की लेखनी विराम ले लेती तो शायद इससे ईसा-चरित्र का सौन्दर्य अक्षुण्ण बना रहता, परन्तु दुर्भाग्य-वश ऐसा हुआ नहीं। भक्त-हृदय लेखकों को ईसा-चरित्र के महा-प्रयाण वाले सुन्दरतम दृश्य के चित्रण मे ही सन्तोष नही हुआ, उन्होंने उसे बढ़ाया और आगे बढ़ाया है। परन्तु इसके आगे उन्होने जो कुछ बढ़ाया है, जो कुछ चित्रण किया है, वह सब अलौकिक, अस्वाभाविक हो गया है। इससे पहले भी ईसा-चरित्र में अन्धी श्रद्धा ने अनेक बार

स्वाभाविकता के सुकुमार कलेजे पर ज़हरीली छुरी फेरने का प्रयास किया है, परन्तु यहाँ आकर उसकी चरम सीमा हो गई है। और उस पर आश्चर्य यह है कि प्रचलित ईसाई धर्म का सारा गौरव इसी अस्वाभाविक दृश्य—इसी अलौकिक घटना के ऊपर आश्रित है।

वह दिन, जिस दिन कि महापुरुष ईसा का बलिदान हुआ था, शुक्रवार का दिन था। ईसा सूली पर चढ़ा दिया गया। हृदय दहला देने वाली नारकीय व्यथा के बाद अन्त में वह किस प्रकार संज्ञा-शून्य हो गया तथा उसके बाद ईसा का मृतक संस्कार भी कर दिया गया—यह सब पिछली पंक्तियों में दिखलाया जा चुका है। उस वर्णन के साथ ही ईसा के चरित्र-लेखक मैथ्यू-लिखित जीवन-वृत्तान्त में २७ वाँ परिच्छेद समाप्त होता है। इसके आगे केवल एक परिच्छेद और शेष रह जाता है। इस शेष परिच्छेद की अवतारणा वस्तुतः इसी अलौकिक घटना के चित्रण के लिए हुई है। ईसा-बलिदान के तीसरे दिन की एक अलौकिक घटना का उल्लेख इस परिच्छेद में किया गया है। मैथ्यू ने उसे इस प्रकार वर्णन किया है :—

"विश्राम वार के बाद सप्ताह का प्रथम दिवस था। प्रातःकाल का समय था। अरुणोदय होते ही मरियम मगदलीनी और उसकी सहचरी दूसरी मरियम ईसा की क़ब्र देखने गई। उसी समय एक भारी भूकम्प के साथ स्वर्गीय

देवदूत आकाश से उतर कर आया। उसने ईसा की क़ब्र पर लगा हुआ पत्थर लुढ़का दिया और स्वयं उस पत्थर के ऊपर जा बैठा। उसका स्वरूप विद्युत् की भाँति और उसके वस्त्र हिम के समान शुभ्र थे। नवागन्तुक देवदूत के भय से जागरूक प्रहरी अत्यन्त भयभीत और त्रस्त होकर मृतकों की नाईं हो गए। देवदूत ने उन दोनों स्त्रियों को सम्बोधन करके कहा—तुम भयभीत न हो, मैं जानता हूँ कि तुम उस ईसा को ही, जिसका सूली पर बलिदान हुआ है, ढूँढ़ती हो। परन्तु वह ईसा अब यहाँ नहीं है। अपने वचन के अनुसार वह पुनरुज्जीवित हो चुका है। तुम स्वयं आकर उस स्थान को, जहाँ ईसा का शव रक्खा था, देख लो; और यथासम्भव शीघ्र जाकर उसके शिष्यों को यह शुभ सम्बाद दो कि वह मृतकों में से जी उठा और तुम्हारे आगे-आगे गलील को जा रहा है। तुम उसे गलील मे देख सकोगे।"

यही घटना है कि जिसे ईसाइयो के विश्वास के अनुसार ईसा-चरित्र का सब से महत्वपूर्ण भाग कहा जा सकता है। ईसा के इसी पुनरुज्जीवन पर ईसाई धर्म का सर्वस्व अवलम्बित है। हमें अनेक बार ईसाइयो के गिरजों में जाने का अवसर मिला। अनेक बार हमने उस विचार के योग्यतम प्रचारको के भाषण सुनने का यत्न किया, परन्तु आदि से अन्त तक एक मात्र यही ईसा-चरित्र

का महत्वपूर्ण भाग बतलाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस स्थल पर पहुँच कर ईसा मनुष्य-जीवन की सीमा को पार कर, ईश्वरीय जीवन मे प्रविष्ट हो जाता है। यह घटना सरल और विश्वासी हृदयों पर प्रभाव डालने वाली है, उसमें आकर्षण है और अलौकिकता है। परन्तु उस प्रभाव, उस आकर्षण, और उस अलौकिकता के साथ ही उसमें सत्य की मात्रा कितनी है, स्वाभाविकता कितनी है; यही विचारणीय है। मर कर जो उठना अलौकिक—एकदम अलौकिक है। इतिहास के पृष्ठों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता, प्रकृति के नियम उसका समर्थन नहीं करते। मर कर आज तक न कोई उठ सका है और न भविष्य में ही उठ सकेगा। ईसा का मृतोत्थान असम्भव—एकदम असम्भव है। मस्तिष्क के दरबार में, तर्क के इजलास में उसके लिए स्थान नहीं। फिर भी ईसा के जीवन-वृत्तान्तों में यह घटना चित्रित की गई है, इसलिए हमें उसकी आलोचना में कुछ शब्द लिखने भी आवश्यक हैं। इस प्रश्न पर प्रकाश डाले बिना ईसा-चरित्र की आलोचना एकदम अपूर्ण रह जाती है। इसीलिए हर एक आलोचक ने, जिसे ईसा-चरित्र के मनन करने का अवसर मिला है, इस घटना पर अनुकूल या प्रतिकूल कुछ प्रकाश डालने का प्रयास अवश्य किया है।

इस सम्बन्ध में प्रचलित विचारों का संग्रह यदि हम

करें तो इस प्रकार किया जा सकता है। पहला विचार वह है, जो ईसा के चारो जीवन-वृत्तान्तो में पाया जाता है और ईसाई धर्म का प्रधान मन्तव्य है। अर्थात् जैसा कि ईसा ने अपने जीवन-काल में अनेक वार अपने मरने के तीसरे दिन जी उठने की बात कही थी, उसीके अनुसार सोमवार के दिन वह जी उठा। यह दैवी विधान था और दैवी शक्ति के द्वारा पूर्ण हुआ। इसके द्वारा ईसा के ईश्वर-पुत्र होने के विश्वास का दृढ़तर समर्थन होता है। दूसरा विचार यह है कि यह घटना कल्पित—एक मात्र कल्पित है। ऐसा न हुआ, न हो सकता है, कुछ लोगों ने ईसा को ईश्वर-पुत्र या मसीहा सिद्ध करने की धुन मे दूसरी सृष्टि की। तीसरा विचार इस सम्बन्ध में और पाया जाता है, और उसका स्वरूप यह है कि वस्तुतः प्रकृति के नियमों और विधानो के अनुसार किसी मृतक का जी उठना असम्भव है। इसलिए ईसा मर कर जी उठा, यह विश्वास की बात नहीं कही जा सकती। दूसरी ओर इतने दृढ़, प्राचीन और बद्धमूल सिद्धान्त पर अविश्वास करने को भी जी नहीं चाहता। इसलिए यह मालूम होता है कि सूली दिए जाने के समय ईसा का प्राणान्त नहीं हुआ था, बल्कि वह केवल निसंज्ञ हो गया था। उसके भीतर से जीवनी शक्ति का नितान्त विलोप नहीं हुआ था। इसीलिए दूसरे-तीसरे दिन औषधोपचार से या स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा वह

चैतन्य हो गया। सर्वसाधारण ने, जिन्होंने उसे सूली पर लटकते और क़ब्र में रक्खे जाते देखा था, विवश होकर यह विश्वास कर लिया कि ईसा सचमुच मृतकों में से जी उठा।

ईसा के पुनरुज्जीवन सम्बन्धी विचारों को केवल कल्पना और विश्वास के क्षेत्र से बाहर लाकर एक निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से देखा जाय तो साधारणतः दो युक्तियाँ हैं, जिनके ऊपर उन्हें आश्रित कहा जा सकता है। पहला ईसा के जीवन-वृत्तान्त में उस घटना का उल्लेख पाया जाना और दूसरे इसी घटना के ऊपर आश्रित ईसा के शिष्यों का व्यावहारिक जीवन। हम पिछले किसी परिच्छेद में यह देख चुके हैं कि ईसा के यह चारों जीवन-वृत्तान्त, जोकि गॉस्पल शब्द से कहे जाते हैं, किसी दृष्ट-साक्षी द्वारा नहीं लिखे गए, वह केवल अपने-अपने समय में प्रचलित ईसा सम्बन्धी आख्यायिकाओं का संग्रह मात्र है, जिन्हें चार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने संग्रह किया है। फलतः इन जीवन-वृत्तान्तों में इस घटना का वर्णन एकदम प्रमाणिक—नितान्त विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता, फिर भी हम उसे केवल मिथ्या-प्रवाद कह कर उड़ा देना नहीं चाहते। यह घटना है, जो चारों गॉस्पल में पाई जाती है, इसलिए उसका कुछ मूल्य है; और इसीलिए उसकी आलोचना की विशेष आवश्यकता है।

हम यह भी अनेक वार देख चुके हैं कि ईसा के इन संग्रहीत चारों जीवन-वृत्तान्तो में अनेक स्थलो पर मतभेद पाया जाता है, परन्तु किसी घटना के सम्वन्ध में पाए जाने वाले मतभेद के कारण ही उसे निर्मूल ठहराना वस्तुतः उसके साथ अन्याय करना है। इस प्रकार का मतभेद तो एक ही घटना के भिन्न भिन्न-दृष्ट साक्षियों में भी सम्भव है। फिर ईसा-चरित्र के लेखक तो स्वयं दृष्ट-साक्षी भी नही, उनमें मतभेद न होना ही आश्चर्य की वात होती। इसीलिए उनमें जो मतभेद पाया जाता है वह सर्वथा स्वाभाविक है। उसके आधार पर घटना के अस्तित्व को मिटा डालना जल्दबाजी होगी। उदाहरण के लिए ईसा के महाप्रयाण के समय उसके साथ दो और व्यक्तियों को सूली दी गई थी। इनके सम्बन्ध मे एक लेखक ने लिखा है कि उन दोनो ने ईसा को अपशब्द कहे—उसे गालियाँ दी। दूसरा लेखक उनमें से केवल एक ही की इस प्रकार की चेष्टा को वर्णन करता है, और लिखता है कि दूसरे ने उसे इस अनुचित व्यवहार पर फटकारा। इस मतभेद का प्रभाव किसी विचारशील मस्तिष्क पर यह नहीं पड़ता कि ईसा को या उसके साथ किसी और को सूली नही दी गई। साधारणतः यही प्रतीत होता है कि इस प्रकार की कोई घटना हुई अवश्य थी। फलतः ईसा के पुनरुज्जीवन के सम्बन्ध में भी इन सारे मतभेदो के रहते हुए भी, हम केवल इसी

आधार पर इस घटना को नितान्त निर्मूल नहीं कह सकते। हमारा विश्वास है, इस मन्तव्य का किसी न किसी रूप में कोई आधार अवश्य होना चाहिए, जहाँ से यह घटना विकसित हुई। चारों जीवन-वृत्तान्तों में इस घटना के उल्लेख का अभिप्राय यह समझा जा सकता है कि इस प्रकार की कोई घटना अवश्य हुई है।

वह आधार, जहाँ से इस विश्वास का विकास हुआ, क्या है, इस सम्बन्ध में सबसे अधिक उल्लेख हमें मार्क के जीवन-वृत्तान्त में मिलता है। इस प्रसङ्ग में यह स्मरण रखना चाहिए कि आलोचकों की दृष्टि में मार्क का असली गॉस्पल अन्तिम परिच्छेद की ८ रीवर्स तक ही समाप्त हो जाता है, उसके आगे ही १२ वर्स विशेषज्ञों के विचारानुसार मार्क की लिखी नहीं हैं। अधिकांश लोगों का यह भी विश्वास है कि मार्क का गॉस्पल समय की दृष्टि से सबसे अधिक प्राचीन है। इस विश्वास का मूल क्या था, इसका दिग्दर्शन मार्क के १५ वें परिच्छेद में बहुत स्पष्ट रूप से पाया जाता है। इस परिच्छेद में केवल यह बीज ही उपलब्ध होता है और वह सारा विवरण, जो अन्य लोगों ने लिखा है, मार्क में नहीं मिलता। मार्क का गॉस्पल हमें यह बतलाता है कि यह स्त्रियाँ प्रातःकाल के समय जब क़ब्र पर गईं तो इन्होंने उसे खुला देखा। यह भी देखा कि ईसा की मृतक देह वहाँ नहीं थी। शुभ्र वेषधारी एक व्यक्ति को भी उन्होंने

वहाँ बैठे देखा, जिसने उन्हे विश्वास दिलाया कि ईसा जी उठा। पुनरुज्जीवन सम्बन्धी सारी घटना का यह भाग है, जिसके विषय में चारो लेखक एकमत हैं, इसके अतिरिक्त और किसी भी अंश मे चारों मे सहमति नही।

फलतः इससे तीन बातें स्पष्ट हैं—(१) ईसा की मृतक देह वहाँ नही थी, विलुप्त हो गई थी। (२) ईसा के पुनरुज्जीवन का मूल स्रोत यह स्त्रियाँ ही है। वस्तुतः इन्हीं स्त्रियों ने सबसे पहले कहा कि पुनरुज्जीवित ईसा को उन्होंने देखा है। (३) श्वेत वेषधारी किसी पुरुष ने उन स्त्रियो को ईसा के पुनरुज्जीवित हो उठने का विश्वास दिलाया। ईसा-बलिदान की घटना के बाद उसके शिष्यो की मानसिक अवस्था कितनी क्षुब्ध रही होगी, और उस उत्तेजित, क्षुब्ध अवस्था मे यह तीनों बातें उनके मस्तिष्क पर कितना गहरा प्रभाव डाल सकती थीं—यह लिखने की आवश्यकता नहीं, और वह भी आज से सैकड़ों वर्ष पहले के युग में।

ईसा की मृतक देह विलुप्त हो गई थी एवं शुभ्र वेषधारी पुरुष ने, जो देवदूत के समान प्रतीत होता था, उसके पुनरुज्जीवित होने की बात कही, और उन स्त्रियो ने किसी ऐसे व्यक्ति को देखा जो उनके विचार मे ईसा था। क्या उस सुदूरवर्ती अन्धविश्वास के युग में यह तीनो बाते इस प्रकार के किसी विश्वास को जन्म देने के लिए पर्याप्त नहीं थीं?

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि इन तीनों बातों का सम्मिश्रण ही इस प्रकार से हुआ है कि सर्वसाधारण के मस्तिष्क मे उसके परिणाम-रूप ईसा के पुनर्जीवन की धारणा के अतिरिक्त और कोई भाव पैदा होना कठिन था। उस पर फिर इस धारणा की स्रोतस्विनी दो महिलाओ के सरलतर हृदय से बही है और एक शुभ्र वेषधारी देव-दूत ने उसे जन्म दिया है। यह तो ऐसा संयोग बन गया है कि जिसका कि केवल एक निश्चित परिणाम हो सकता था, और वही हुवा भी है। ईसा के पुनर्जीवित होने की भावना का वीज वपन हो गया। उस समय अन्धविश्वास का युग था। ईसा का प्रभाव विकास की चरम सीमा पर था। पुनर्जीवन के बीज को बना बनाया उपजाऊ क्षेत्र मिल गया। उसमें बड़ी तीव्रता के साथ वह अङ्कुरित, पल्लवित और फलित हुआ है। वस्तुतः उस सारी घटना की व्याख्या क्या है ? इस ओर विचार करने का किसी को अवसर ही न मिला।

परन्तु फिर भी कुछ लोग ऐसे थे, जो इस रहस्य को समझते थे, परन्तु वह इस आन्दोलन में न कोई भाग लेते थे और न ले ही सकते थे। यह लोग ईसा के इष्ट-मित्रों और हितचिन्तकों में से थे। वह इस भावना के अनुकूल आन्दोलन में सम्मिलित हो ही न सकते थे। क्योंकि वह उसके वास्तविक रहस्य से अभिज्ञ थे, और इसके प्रतिकूल

आन्दोलन को खड़ा करना उनके और ईसा दोनों के ही लिए घातक और बुरा था। इसलिए इस प्रकार के लोग समस्त रहस्य से अभिज्ञ होकर भी दोनों क्षेत्रों से एकदम उदासीन रहे।

अमेरिका की 'इण्डो अमेरिकन कम्पनी' ने एक प्राचीन पुस्तक इस सम्बन्ध में प्रकाशित की है, जिसका नाम 'क्रूसीफिकेशन' है। यह पुस्तक एक पत्र के रूप में लिखी गई है, और उसका काल स्वयं उस पत्र से प्रतीत होता है कि ईसा-बलिदान के ठीक ७ वर्ष बाद है। पत्र का लेखक जरूसलम फ़्रीमैन्सरी सोसाइटी का एक सदस्य है, और वह उसी सोसाइटी की अलेक्ज़ेण्ड्रिया-स्थित शाखा के दूसरे सदस्य के नाम लिखा गया है। वह पत्र ईसा के जीवन पर बहुत-कुछ प्रकाश डालता है, और इस पुनरुज्जीवन सम्बन्धी समस्या का तो उससे अधिक सुन्दर हल और कहीं हो ही नहीं सका है। उस पर विशेषता यह है कि पत्र-लेखक स्वयं आद्योपान्त सभी घटना का दृष्ट-साक्षी है, इसलिए उसका मूल्य और भी कई गुना अधिक बढ़ जाता है। इस पत्र के देखने से प्रतीत होता है कि स्वयं ईसा भी इस सभा का एक सदस्य था और उसके अन्तिम समय की इस महत्वपूर्ण घटना का वास्तविक रहस्य उस सभा के सदस्यों के अतिरिक्त और किसी को मालूम हो सकना सम्भव ही न था। यह पत्र ईसा के पुनरुज्जीवन के

सम्बन्ध में पाए जाने वाले तीसरे प्रकार के विचारों का समर्थक है। इस पत्र के लेखक और घटना के दृष्ट-साक्षी का कहना है कि वस्तुतः सूली के समय ईसा की जीवनी शक्ति का नितान्त विलोप नहीं हुआ था, बल्कि वह सूली की उस नारकीय व्यथा से संज्ञा-शून्य हो गया था। यह बात सर्वसाधारण की तो क्या, स्वयं राज-कर्मचारियों की भी समझ में न आई थी। उन सबका विश्वास था कि ईसा के प्राण-पखेरू इस लोक में नहीं हैं। परन्तु ईसा के सहयोगी बन्धु और इस सभा के सदस्य, जिनमें से पत्र का लेखक भी एक था, उस समय घटनास्थल पर उपस्थित थे। इनमें से निकोडेमस नामक व्यक्ति ने, जो चिकित्सा-शास्त्र में सिद्ध-हस्त था, ईसा की अवस्था का निरीक्षण किया, जिसका परिणाम उसने यह निकाला कि वस्तुतः अब तक ईसा की चेतना-शक्ति का विलोप नहीं हुआ है; यदि समय रहते उसका उपचार किया जाय तो बहुत सम्भव है, उसके प्राणों की रक्षा हो जाय। यही सोच कर उन लोगों ने पाइलेट से ईसा की मृत-देह की याचना की और उनकी इच्छा एवं प्रचलित प्रथा के अनुसार पाइलेट ने उसकी स्वीकृति दे दी। निकोडेमस ने उपयुक्त औषधादि का लेपन कर, इस कार्य के लिए क़ब्र के समान विशेष रूप से निर्मित स्थान में उसे रख दिया। निकोडेमस का अनुमान ठीक निकला और इस औषधोपचार के द्वारा वह ईसा के भीतर फिर से

जीवनी शक्ति का सञ्चार करने में कृतकृत्य हुआ। उसके वाद कुछ दिन ईसा और जीवित रहा, परन्तु इस सूली की व्यथा से उसका शरीर इतना जर्जर हो गया था कि वह वहुत दिन तक स्थिर न रह सका। अन्त में इस घटना के थोड़े दिन वाद ही ईसा ने अपनी इहलीला संवरण कर ली।

इस पत्र में वर्णित घटनाओं के साथ मार्क के गॉस्पल का वर्णन वड़ी सुन्दरता के साथ टक्कर लेता है। वह तीन वातें, जिनका कि उल्लेख हम पिछली पंक्तियों में कर आए हैं और जिनका आवश्यक परिणाम ईसा की पुनरुज्जीवन सम्वन्धी इस धारणा की उत्पत्ति इस पत्र में भी पाई जाती है। परन्तु वहाँ उनका उपयोग एक भ्रान्त धारणा की उत्पत्ति में हुआ था और यहाँ उन्हीं तीनों वातों ने उसी भ्रान्त धारणा का स्पष्टीकरण किया है। ईसा का मृतक देह सचमुच उस स्थान से विलुप्त हो गया था, परन्तु यह घटना इन्हीं इसीरों के द्वारा हुई थी। ईसा की क़ब्र पर पहुँचने वाली स्त्रियों को श्वेत वेषधारी जिस व्यक्ति के दर्शन हुए थे, वह स्वर्गीय देवदूत नहीं, वल्कि इसी सभा के सदस्यों में से एक व्यक्ति था। फलतः ईसा का मृतोत्थान या पुनरुज्जीवन जिस अर्थ में और जिस रूप में प्रचलित विश्वास के अनुसार माना जाता है, उस रूप में न हुआ ही और न हो ही सकता था। परन्तु फिर भी उस प्रचलित विश्वास को एकदम निर्मूल, निराधार, मिथ्या नहीं ठहराया

जा सकता। जिज्ञासु हृदय के भीतर उथल-पुथल मचाने वाली इस विकट समस्या का हल 'क्रूसीफिकेशन' नामक पुस्तक के प्रकाशन से बड़ी सरलता से हो गया है। ऊपर जो कुछ हमने लिखा है, वह उसका सारांश मात्र है। उसमें उसका अपना सौन्दर्य भी नहीं रहा है और न उतनी उपयोगिता ही, इसलिए इस प्रसङ्ग का कुछ सविस्तर वर्णन हम उसी पुस्तक के आधार पर कर देना चाहते हैं। इससे पाठको को विशेष लाभ होगा, और पुस्तक की उपयोगिता भी कुछ बढ़ जायगी। पत्र के उस अंश का अनुवाद इस प्रकार है :—

"प्रस्थान समुदाय (Procession) में दण्डाज्ञा प्राप्त ईसा और दो चोर थे। प्रस्थान मार्ग घाटी के प्रवेश-द्वार से बाहर जरूसलम से गोलगोथा तक था। गोलगोथा स्थान ही सूली दिए जाने के लिए नियत था। जब ईसा को सूली के भार से दबा और डूबा जाता हुआ स्त्रियों ने देखा तो उन्होंने उच्च स्वर से रुदन करना प्रारम्भ किया।

कोड़ों की मार से जो आघात उसके शरीर में हो गए थे, उनसे वेग के साथ रक्त प्रवाहित हो रहा था। एक बीहड़ पहाड़ के किनारे, जहाँ कुछ भी नहीं उत्पन्न होता था और जिसको 'जील्यून' कहते थे और जो उत्तर की ओर है और जिसमे होकर सुनसान मृत्यु की घाटी को मार्ग जाता है, वह प्रस्थान समुदाय ठहरा। ईसा भूमि पर गिर पड़ा। उसका पीड़ित शरीर बलहीन था।

रोमन सिपाही सूलियों के लिए स्थान की खोज करने लगे। स्थान नियत कर लेने पर उन्होंने इच्छा की कि कष्ट-भोगियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करें, और उसका मार्ग उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हें एक-एक प्याला शराब का दे देवें, जिससे वे चेतना-शून्य हो जावें। इस प्रकार अचेतन करने की प्रथा, सूली देने से पूर्व, वहाँ प्रचलित भी थी। यह पान, खट्टी मद्य, एक और औषधि (Wormwood) मिला कर बनाया जाता था और इसे टोसका (Toska) कहते थे। परन्तु ईसा ने इसे स्वीकार नहीं किया, उसने सोचा कि जब वह अपने विश्वास और सचाई के लिए मर रहा है तो शराबी बन कर क्यों मरे, और इसीलिए उसने मद्यपान करना उचित नहीं समझा। उसको इस मिश्रण का ज्ञान हमारे सङ्घटन से प्राप्त हो चुका था और चख कर उसने और भी निश्चय कर लिया। सूली गाड़ी जा रही थी और वह समय, जो ईसा के दण्ड-विधानार्थ नियत था, आ गया था। पहला कार्य इस सम्बन्ध में जो करना था वह अपने शरीर से अपने वस्त्रों का फाड़ना था, परन्तु इसके लिए नियमानुसार यह आवश्यक था कि सिपाहियो के वस्त्र, जो कोड़ा लगने के वाद उसने पहने थे, उन्हे उतार कर उसके असली वस्त्र पहनाए जायँ और तब वे फाड़े जायँ।

'सैनहीड्रीम' (Sanhedrim) के सेवकों की प्रार्थनानुसार ईसा के लिए जो सूली तैयार की गई थी, वह चोरों

की सूलियों के मध्य में यह प्रदर्शित करने के लिए कर दी गई कि वह उनसे बड़ा अपराधी था।

ईसा के लिए जो सूली थी उसमें और भी विशेषता की गई थी, और वह यह थी कि साधारण रीति से लम्ब-रूपेण जो कड़ी सूली में लगाई जाती है, वह सूली से ऊपर नहीं पहुँचती, परन्तु ईसा की सूली में वह कड़ी इस भाँति लगाई गई थी कि ऊपर तक पहुँचती थी। तब उन्होंने ईसा को पकड़ा और ऊपर उठा कर एक छोटे खम्भे पर रक्खा, जो सदैव प्रत्येक सूली के सम्मुख लगाया जाता है; जिसका उद्देश्य यह होता है कि अपराधी का शरीर, जब वह रस्सियों से कसा जाता है, उस पर ठहरा रहे। उन्होंने प्रथम उसकी बाँहें सामान्यतया दृढ़ रस्सी से बाँधीं कि समस्त रक्त, जो बाहुओं में प्रवाहित हो रहा था, हृदय को लौटने लगा और इस प्रकार उसे श्वास लेना भी कठिन हो गया। इसी प्रकार उन्होंने उसके पाँवों को बाँधा और टाँगों तक को आघात पहुँचाते हुए इस प्रकार रस्सियों से उन्हें कसा कि उनका भी रक्त-प्रवाह बन्द हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने मोटी लोहे की कीलें उसके हाथों में घुसेड़ीं, परन्तु पैरों में नहीं; क्योंकि सामान्यतया पाँवों में नहीं घुसेड़ी जातीं। मैं यह बात विशेष रीति से भाइयो! तुम्हें इसलिए लिख रहा हूँ कि जन-प्रवाद यह था कि उसके पैरों में कीलें घुसेड़ी गई थीं और तब वह उसी समय अकथनीय कष्ट भोगने के लिए लटका दिया गया—

सूर्य का ताप उस दिन प्रचण्ड और क्लेशप्रद था।

लोक-परम्परानुकूल जब सिपाहियो ने उसके वस्त्रों को अपने अधिकार में किया, तो उन्होने उसके लबादे को चार भागों में विभक्त कर लिया, परन्तु कुरता बना हुआ था फाड़ा नहीं जा सकता था। अतः उसके लिए उन्होंने चिट्ठियाँ डाल लीं।

मध्याह्नोत्तर काल होने पर जब सूर्य के ताप में शिथिलता आनी आरम्भ हुई थी, तब नगर से आकर दर्शकों का बड़ा समूह वहाँ उपस्थित हो गया। सब वहाँ बड़े कौतूहल में थे। अनेक पुजारी भी वहाँ आगए थे, जो यहूदियों की पापकारी प्रतिहिंसा का दृश्य अवलोकन करते हुए उस ईसा का उपहास कर रहे थे। उन्होंने उसे नीचे झुका दिया, क्योंकि वह दुःख से पीड़ित हो रहा था, और दर्शकों को भी उसका उपहास करने का परामर्श दिया। ईसा ने टकटकी लगा कर आकाश की ओर दृष्टि रखते हुए इस कष्ट को शान्ति से सहन किया। उसने अपनी जाति की उन स्त्रियों के शब्द, जो गैलीली से आईं, और कुछ अन्तर से खड़ी हुई अपने हाथ मलते हुए उसके लिए विलाप कर रही थीं, नहीं सुने। वे स्त्रियाँ उसकी अकाल मृत्यु समझ कर ही विलाप कर रही थीं।

यह यातना का रुदन और विलाप कुछ अश्वारोहियों के घोड़ों की टापों की नाद से दब गया, जो घटनास्थल की

ओर बढ़े आ रहे थे। यह यहूदियों का मुख्य पुजारी 'कैयाफ़स' (Caiaphas) था, जो बहु-संख्या में अनुचर और रक्षक-वर्ग लेकर सूली-प्राप्त ईश्वर-पुत्र का उपहास करने आया था। और यहाँ तक कि एक सूली-प्राप्त तस्कर भी उसका उपहास करने में उनके साथ सम्मिलित हो गया, क्योंकि वह गुप्त आशा बाँधे हुए था कि ईसा उन्हे और अपने आपको भी अपनी अलौकिक शक्तियों से सूली-दण्ड से बचा लेगा।

अब रोमनों ने यहूदियों को धिक्कारने के उद्देश्य से सूली पर स्थित ईसा के शिर पर एक पट्टिका स्थिर कर दी, जिस पर भिन्न-भिन्न चार भाषाओं में 'यहूदी-नरेश' शब्द लिख दिए। यद्यपि इससे पुजारियों की कोपाग्नि प्रज्वलित हो गई और वे बड़े आवेश में आए, परन्तु वह पाइलेट से डरते भी थे, इसलिए उन्होंने अपना क्रोध ईसा को अपमान-सूचक वचन कह कर ही निकालना उचित समझा। रात्रि का अन्धकार पृथ्वी पर फैला, और जन-समुदाय घटना-स्थल से जरूसलम को लौटने लगा, परन्तु ईसा, उसके शिष्य और मित्र, और हमारे सङ्घटन के वृद्धगण गलगोथा ही में ठहरे रहे।

हमारा सङ्घटन एक नवीन बस्ती में उपासना और प्रीति-भोज में भाग लेने के उद्देश्य से सङ्घटित था। ईसा ने गैलीली की रुदन करने वाली स्त्रियों में से अपनी माता

को पहचाना, जो शान्त खड़े हुए जॉन के पास थी। ईसा क्लेश से पीड़ित होकर चिल्ला उठा और बाईसवें भजन का पाठ करते हुए, उसीके द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की कि उसे इस घोर कष्ट से मुक्त करे। अब भी वहाँ पहाड़ पर कुछ फैरीसी उपस्थित थे और उन्होंने फिर उसका उपहास करना विचारा। क्योंकि वे आशा कर रहे थे कि ईसा सूली से उतर आएगा, पर उनकी आशा पूरी नहीं हुई, इसलिए उन्होंने समझा कि वे धोखे में थे और इसी आधार पर उन्हें क्रोध आया। अस्तु, उस समय उष्णता का प्रकोप था, उसका वर्धमान वेग असह्य प्रमाणित हो रहा था, पृथ्वी और वायु दोनों अग्निमय हो रहे हैं, और ऐसा होना तत्वों के विशुद्ध बनाने के लिए आवश्यक ही था।

'इसीर' भाई अपने प्राकृतिक और तात्विक ज्ञान से जानते थे कि एक भूकम्प आने वाला है, जैसा कि इससे पूर्व हमारे पिता और प्रपितामह के समय में आया था। तमोमय रात्रि का पृथ्वी पर विस्तार हो चुका था, तभी भयानकता से पृथ्वी में भूकम्प आने प्रारम्भ हुए। इससे रोमन 'योधशताधीश' इतना व्याकुल हो गया कि अपने देवताओं से प्रार्थना करने लगा। उन्हें विश्वास हो गया कि ईसा देवताओं का प्रिय था। अधिकांश भयभीत नर-नारी शीघ्रतर घटनास्थल से जरूसलम लौट गए और योधशताधीश ने, जो एक उदार और करुणाशील पुरुष था, जॉन को

परवानगी दी कि ईसा की माता को सूली के पास ले जावे। ईसा प्यास से व्याकुल था, उसके होठ सूख रहे थे और पीड़ा से शरीर का प्रत्येक अवयव जल-भुन रहा था। 'हीसौथ' (एक प्रकार का वृक्ष) की लम्बी-पतली शाखा में इसपञ्ज लगा और उसे सिरड़े में डुबो कर एक सिपाही ने ईसा को दिया। उसीसे उसने अपनी प्यास बुझाई। उसने अपनी माता को जॉन की देख-भाल में रखने के लिए इच्छा की। उस समय अन्धकार बढ़ता जा रहा था। यद्यपि उस रात आकाश में पूर्ण चन्द्र उदय होना चाहिए था, परन्तु मृत-समुद्र से लाल रङ्ग का कुहरा उठ रहा था। जरूसलम के चतुर्दिश स्थित पहाड़ों के किनारे भयानक रीति से काँप उठे और ईसा का शिर उसकी छाती पर गिर पड़ा। उसने अन्तिम बार पीड़ा से व्यथित होकर आह की और संसार से चल दिया।

वायु में फुङ्कारने का सा शब्द सुनाई दिया और यहूदी जो अब तक वहाँ थे, भयभीत हो गए। उनका विश्वास था कि बुरी रूहें, जो आकाश और पृथ्वी के मध्य रहती हैं, जनता के दण्डित करने के लिए प्रस्थान कर रही हैं। वायु मे वह विलक्षण और असाधारण शब्द था, जो भूकम्प से पूर्व सुनाई दिया करता है। शीघ्र ही पहाड़ो में कम्प होना प्रारम्भ हुआ और निकटवर्ती ग्राम और नगर हिलने लगे। मन्दिर की चौड़ी दीवारें फट गईं, पर्दा भी फट कर अपनी

जगह से गिर पड़ा। यहाँ तक कि पहाड़ की चट्टाने भी फट गईं। और चट्टानो में खोद कर बनाई हुई क़ब्रें भी नष्ट हो गईं और उनमें रक्खे हुए शवों का भी यही परिणाम हुआ। यहूदियों ने इन घटनाओ को अलौकिक समझा और रोमन योधशताधीश ने अब ईसा को अलौकिक पुरुष और निरपराधी होने में विश्वास किया, और उसकी माता को सान्त्वना दी। यद्यपि हमारे भ्राताओ ने इन घटनाओ की वास्तविकता जनता पर प्रकट करने का साहस नहीं किया और उसे गुप्त रक्खा, तो भी वे इस प्राकृतिक घटना के कारणो को पूर्ण रीति से जानते थे, और उन्हें अपने भाई (ईसा) में, बिना उसमे किसी अलौकिकता की कल्पना किए ही, विश्वास था।

प्रिय भ्राताओ! तुमने हमे उपालम्भ दिया है कि हमने गुप्त साधनो से अपने मित्र को मृत्यु-दण्ड से क्यो नहीं बचाया। परन्तु मैं इसके उत्तर में तुम्हे केवल अपने सङ्गटन के नियमो का सङ्केत करता हूँ, जो प्रकट रीति से कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं देते। और राज-कार्य में भी हस्तक्षेप करने से रोकते हैं। फिर भी हमारे दो अनुभवी और प्रभावशाली भाइयो ने, पाइलेट पर और यहूदियो की राजसभा पर भी अपना पूरा-पूरा प्रभाव डाला, जिससे ईसा बच जावे, परन्तु निष्फल हुआ। ईसा ने स्वयं भी यही चाहा कि उसे अपने विश्वास के लिए मृत्यु-दण्ड भुगतने

दिया जावे, और इस प्रकार उसने सङ्घटन के नियम का पूरा-पूरा पालन किया। क्योंकि तुम जानते हो कि पुण्य और सत्यता के लिए मरना महान् बलिदान है, जो एक भाई कर सकता है।

जोज़ेफ नाम का एक पुरुष 'अरिमेथिया' (Arima-thea) का निवासी था, वह सम्पन्न और यहूदो राजसभा का सदस्य भी था और प्रजा में भो उसका बहुत मान था। यह बड़ा दूरदर्शी था और किसी पार्टी से सम्बन्धित न था, वह हमारे सङ्घटन का एक गुप्त सदस्य था और हमारे नियमानुकूल आचरण रखता था। उसका मित्र 'निकोडेमस' (Nicodemus) उच्च श्रेणी का विद्वान् था, वह भी हमारे सङ्घटन के प्रथम श्रेणी के सदस्यो में से था। अस्तु, भूकम्प के बाद यह घटना हुई कि जोज़ेफ और निकोडेमस सूली के निकट आए। उस समय अधिक पुरुष घटनास्थल से लौट चुके थे। उनको सूली प्राप्त के मृत्यु की सूचना हमारे एक भ्राता की बाटिका में मिली थी, जो 'कैलबेरी' के निकट ही है। यद्यपि उन्होंने इस परिणाम को सुन कर उच्च स्वर से विलाप किया, परन्तु फिर भी उन्हें यह बात विलक्षण प्रतीत हुई कि सात घण्टे भी पूरे जिसे सूली पर लटकाए हुए न हुए हों और वह मर चुका हो। उन्होंने इसका विश्वास न करके ही शीघ्रता से घटनास्थल के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने अकेले जॉन को पाया। उन्होंने

यह स्थिर करके कि देखें उस शरीर की, जिसे वे बहुत प्यारा समझते थे, अब क्या अवस्था हो गई। जोज़ेफ और निकोडेमस ने ईसा के शव की जाँच की। निकोडेमस बहुत प्रभावित हुआ और जोज़ेफ को पृथक ले जाकर उससे कहा—"जितनी निश्चित जीवन और प्रकृति सम्बधी मेरी विद्या है, उतनी ही निश्चित उसके बचा लेने की सम्भावना है।" परन्तु जोज़ेफ उसका तात्पर्य नहीं समझा और उसने हमको चेतावनी दी कि जो कुछ हमने सुना है उसे जॉन से नहीं कहना चाहिए। अवश्य यह एक गुप्त रहस्य था कि मृत्यु से अपने भाई की रक्षा कर ली जावे। निकोडेमस ने उच्च स्वर से कहा कि "हमारे पास शीघ्रता से यह शव इस प्रकार होना चाहिए कि हड्डियाँ न टूटने पावें, क्योंकि अब भी यह बचा लिया जा सकता है।" तब सावधानता से उसकी रक्षा के सम्बन्ध में धीरे-धीरे उसने कुछ बातें कीं और कहा कि "अयशस्करी रीति के साथ दफ़न होने से बचाया गया।"

उसने जोज़ेफ को प्रोत्साहित किया कि अपने लाभा-लाभ का विचार छोड़ कर अपने मित्र को बचाने का उद्योग करे, और शीघ्र ही 'पाइलेट' के पास जाकर उससे अनुमति प्राप्त करे कि वह आज ही रात ईसा के शव को सूली से लेकर चट्टान में खोदी हुई एक क़ब्र में दफ़न कर देवे, वह चट्टान जोज़ेफ ही को थी।

मैंने निकोडेमस का तात्पर्य समझ लिया। यह काम जॉन के लिए छोड़ा गया कि वह सूली की रक्षा करे और सिपाहियों को ईसा के शव की हड्डियाँ तोड़ने से रोके।

रात्रि में किसी शव को सूली पर रहने देने का नियम नहीं, और दूसरे दिन रविवार था, इसलिए साधारण-तया सिपाही शव को शीघ्र सूली से उतार कर गाड़ देवें। यहूदियों की राजसभा ने पाइलेट से याचना की कि सिपाहियों को आज्ञा दी जावे कि सूली प्राप्त मृत पुरुषों की हड्डियाँ तोड़ कर उन्हें गाड़ देवें। ज्योंही जोज़ेफ और निकोडेमस में से प्रत्येक ने अपने-अपने निश्चित, पवित्र उद्देश्यों के सिद्धार्थ प्रस्थान किया, एक सिपाही आया और योधशताधीश के लिए आज्ञा लाया कि शवों को सूली से उतार कर गड़वा देवें।

मुझे इस सूचना के प्राप्त होने से बड़ी चिन्ता हुई कि यदि सावधानी से शव न उतारा गया तो वह न बचाया जा सकेगा और फिर बचने की कुछ भी आशा न रहेगी, यदि उसकी हड्डियाँ तोड़ दी गईं।

जॉन सम्भ्रान्त-चित्त और दुःखी था, इस भय से नहीं कि ईसा के बचाने का वास्तविक उद्योग विफल हो जायगा, क्योंकि इसकी उसे जानकारी न थी; उसके दुखित होने का कारण यह था कि वह समझने लगा था कि अब उसे अपने मित्र के शव को खण्डिताङ्ग होते देखना पड़ेगा;

क्योंकि जॉन का विश्वास था कि ईसा मर गया। ज्योंही वह सिपाही आया था, मैं उसके पास गया, उस समय मुझे आशा थी कि जोज़ेफ पाइलेट से मिल चुका होगा, जिसकी वास्तव मे कुछ भी सम्भावना न थी। मैंने जाकर उससे पूछा तो उसने उत्तर दिया कि "मैं पाइलेट के पास नहीं, किन्तु उसके मन्त्री के पास से आया हूँ। मन्त्री ही ऐसे साधारण कार्यों का निवटारा अपने अधिकार से शासक की ओर से कर दिया करता है।" योधशताधीश को मेरी विकलता का ज्ञान हो गया। वह मेरी ओर देखने लगा, मैंने मित्रता के ढङ्ग से उससे कहा—"तुम जानते हो कि यह पुरुष, जिसे सूली का दगड मिला है, एक असाधारण व्यक्ति था। अब उसके साथ अप्रिय आचार मत करो। जनता में से एक सम्पत्तिवान् पुरुप पाइलेट के पास गया हुआ है कि धन देकर शव को प्राप्त कर लेवे और शिष्टाचारानुकूल उसे दफन करे।"

प्रिय भ्राताओ! यहाँ मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि पाइलेट प्राय: सूली-दगड प्राप्त पुरुषों के शव मृत-पुरुष के मित्रो के हाथ बेच देता था और वे मित्र शव को लेकर उसे उचित रीति से दफन किया करते थे। योधशताधीश उन घटनाओं को देख कर, जो ईसा को सूली देने के पश्चात् घटित हुईं, ईसा को निर्दोष समझने लगा था। अत: उसका व्यवहार मेरे साथ मित्रता का था, इसलिए जब सिपाहियों

ने दोनों चोरों के शवों को भारी लाठियों से पीट कर उनकी हड्डियाँ टुकड़े-टुकड़े कर दीं तो उसने सिपाहियों के पास जाकर उनसे कहा कि ईसा की हड्डियाँ मत तोड़ो, क्योंकि यह मर चुका है। उसी समय एक व्यक्ति को शीघ्रता के साथ ऐण्टोनिया के राजमहलों से कैलवेरी (घटनास्थल) की ओर आते देखा। वह योधशताधीश की ओर बढ़ा और उसे आज्ञा दी कि उसे शीघ्र ही पाइलेट ने बुलाया है। योधशताधीश ने आज्ञा सुन कर आज्ञा-वाहक दूत से पूछा कि इतनी रात्रि बीतने पर असमय पाइलेट को किस लिए उसकी आवश्यकता है। दूत ने कहा कि वह यह जानना चाहता है कि ईसा वास्तव में मर चुका है या नहीं। योधशताधीश ने कहा कि "वह मर चुका है, इसलिए हमने उसकी हड्डियाँ नहीं तोड़ी ।" मरे हुए होने का अधिक निश्चय करने के लिए सिपाहियो में से एक ने उसके शव में इस प्रकार भाला चुभोया कि वह उसके पुठ्ठे या नितम्ब में घुस गया, परन्तु शरीर निश्चेष्ट ही रहा। इसे योधशताधीश ने ईसा के मरे हुए होने का निश्चित चिह्न समझ लिया और शीघ्रता के साथ अपना उत्तर देने के लिए चला गया। इस (भाले के) क्षुद्र आघात से रक्त और जल प्रवाहित होने लगा जिससे जॉन तो आश्चर्य में पड़ गया। परन्तु मेरी आशा-लता लहलहाने लगी। जॉन उस शिक्षा से, जो उसे हमारे सङ्घटन में प्राप्त हुई थी, जानता था कि

मृत शरीर से कुछ रक्त की गाढ़ी बूँदों के सिवा, आघात पहुँचने पर कुछ नहीं निकलता, परन्तु यहाँ जल भी प्रवाहित था। मैं बड़ी उत्कण्ठा से चाह रहा था कि जोज़ेफ और निकोडेमस लौटें। निदान कुछ गैलीली नगर की स्त्रियाँ विथेनिया से लौटती हुई दिखाई दीं, जहाँ से वे ईसा की माता मरियम को हमारे 'इसीर' मित्रों की देख-भाल में लाई थीं? उन स्त्रियों में लाज़रस की भगनी मेरी भी थी, जो ईसा से प्रेम रखती थी। यह उच्च स्वर से रोने लगी। एक ओर मेरी रो रही थी और रोकर अपनी आन्तरिक व्यथा दूर कर रही थी, दूसरी ओर जॉन बिना किसी दूसरे विचार के टकटकी लगाए ईसा के नवाघात की ओर देख रहा था कि इसी बीच में जोज़ेफ़ और निकोडेमस शीघ्रता करते हुए लौट आए।

जोज़ेफ ने अपने गौरव की रक्षा के साथ पाइलेट से ईसा का शव माँगा और उसने उसकी मृत्यु का निश्चय करके शव को बिना उसका कुछ मूल्य लिए जोज़ेफ को दे दिया। क्योंकि पाइलेट जोज़ेफ का बड़ा सम्मान करता था और गुप्त रीति से इस मृत्यु-दण्ड के लिए पश्चात्ताप भी करता था। जब निकोडेमस ने आघात से रक्त और जल प्रवाहित होते देखा, तो उसका चित्त नई आशाओं से प्रफुल्लित हो गया। और उसने भावी-शुभ परिणाम का विचार करते हुए उत्साह-वर्धक शब्दों में बातें कीं। और जोज़ेफ़ को

जॉन से कुछ अन्तर पर लाकर जहाँ मैं खड़ा था, शीघ्रता-पूर्ण धीमी वाणी से कहा—"प्रिय मित्रो ! प्रसन्न होओ और मुझे कार्य करने दो, ईसा मरा नहीं है। वह मरा हुआ सा इसलिए प्रतीत होता है कि बलहीन हो चुका है।" निको-डेमस ने यह भी कहा—"जोज़ेफ़ तो पाइलेट के साथ रहा और मैं शीघ्रता से अपनी नव-बस्ती में जाकर ऐसी औषधियाँ ले आया जो ऐसी अवस्थाओं में उपयोगी हो सकती थीं। परन्तु मैं तुम्हे सावधान करता हूँ कि जॉन से यह बात न कहना कि हम ईसा के मृत-शरीर को पुनर्जीवित करने की आशा करते हैं। कदाचित् वह इस नवजात प्रसन्नता को छिपा न सके। और यदि सर्व-साधारण में यह बात फैल गई तब हमारे शत्रुगण उसके साथ हमको भी मृत्यु-दण्ड से दण्डित करेंगे।"

तत्पश्चात् वे शीघ्रता से सूली की ओर गए और चिकित्सा-शास्त्र की मर्यादानुसार उन्होंने उसके शरीर से बन्धनों को खोला और हाथों से कीलें निकाल दीं, और बड़ी सावधानी से शव को भूमि पर रक्खा। और स्वच्छ पट्टियों के बड़े-बड़े टुकड़ों पर उसने आघात पूरक गन्धयुक्त द्रव्यों और मरहमों को फैलाया, जो वह अपने साथ लाया था और जिनका योग केवल हमारे सङ्घटन ही को ज्ञात था।

इन पट्टियों को उसने ईसा के शरीर से बाँध दिया, छल के साथ यह प्रकट करते हुए कि ये पट्टियाँ उसने शव

को जीर्ण और मलिन होने से बचाने के लिए बाँधी हैं। और यह कि भोज के पश्चात् वह मसाले और सुगन्धित पदार्थ शरीर में भरके उसकी रक्षा का प्रबन्ध करेगा।

ये सुगन्धित पदार्थ और मरहम आघातों को भर कर ही ठीक कर देने का अपूर्व गुण रखते थे और हमारे 'इसीर' भाई इसका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि वे चिकित्सा-शास्त्र के नियमों से अभिज्ञ हैं। इनका प्रयोग वे इसलिए किया करते थे कि मृतवत् मूर्च्छा को दूर करके रोगी को चेतनावस्था में ला दें।

जोजेफ और निकोडेमस उसके मुख की ओर झुके हुए थे और उनके अश्रु उसके मुख पर पड़ रहे थे, परन्तु उनके इस प्रकार झुकने का तात्पर्य यह था कि अपने श्वास फूँक-फूँक कर उसके शरीर के भीतर गर्मी पहुँचा रहे थे। अब भी जोजेफ को ईसा के अनुमानित मूर्च्छा-मुक्त होकर पुनर्जीवित हो जाने में सन्देह था। परन्तु निकोडेमस उसे उत्साहित करता हुआ कह रहा था कि उद्योग बलपूर्वक करता जावे। निकोडेमस ने कीलक-मुक्त हाथों में भी स्निग्ध वस्तुओं का विलेपन किया, परन्तु उसने उस आघात की पूर्त्ति करना सम्प्रति उचित नहीं समझा, जो पुट्ठे पर भाले से किया गया था; क्योंकि उसने विचारा था रक्त और जल-प्रवाह श्वासोच्छ्वास लेने में सहायक और पुनर्जीवित करने में लाभदायक होगा।

अपनी यात्रा और क्लेश से पीड़ित जॉन को विश्वास नहीं था कि उसका मित्र पुनर्जीवित हो जायगा, और उसे इसलिए भी आशा नहीं थी कि स्वर्ग में मिलने से पूर्व उसे देख सके।

तत्पश्चात् शव चट्टान में बनाई हुई क़ब्र में रक्खा गया। इस चट्टान का स्वत्वाधिकारी जोज़ेफ था। उन्होने उस शवस्थल को अगर और अन्य पुष्टिकारक औषधियों के धूएँ से भर दिया। यद्यपि शव, शैवाल के ऊपर रक्खा हुआ था, फिर भी वह कठोर और अचेतन था। उन्होने एक बड़ा पत्थर शवस्थल के द्वार पर रख दिया, जिससे वाष्प से शवस्थल भर जावे और वाष्प बाहर न निकलने पावे। अन्यो के साथ यह कार्य करके जॉन वेथेनिया को चला गया कि वह पुत्र-शोक से पीड़ित उसकी माता को सान्त्वना देवे।

यद्यपि रविवार था, फिर भी कैयाफ़स (Caiaphus) ने अपने गुप्तचर भेजे। वह यह जानने का इच्छुक था कि ईसा के गुप्त मित्र कौन-कौन थे। उसका सन्देह पाइलेट पर था, क्योकि उसने बिना कुछ लिए ईसा का शव जोज़ेफ को दे दिया था, जो एक सम्पन्न, रब्बी और उच्च राजसभा का सदस्य था और जो इससे पूर्व कभी अभियोग के समय उसमें भाग लेने के लिए उपस्थित नहीं हुआ था। उसने अब अपना ही शवस्थल सूली-दण्ड प्राप्त व्यक्ति के दफ़न करने के लिए दे दिया था। अतः कैयाफ़स ने अनुमान

किया कि सम्पन्न जोज़ेफ और गैलीली निवासियों के मध्य कोई गुप्त योजना है। और यह सुन कर कि उन्होंने शव को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया है, उसने उनके बन्दी करने का विचार किया। क्योंकि उसे यह भय उत्पन्न हो गया था कि जोज़ेफ और पाइलेट मिल कर यहूदियों के विरुद्ध गुप्त सूत्रपात कर रहे हैं।

इस भय से यह अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हुआ और जोज़ेफ पर येन-केन-प्रकारेण कुछ अभिशाप लगाने का विचार करने लगा, जिससे उसे बन्दीगृह में डाल सके।

परन्तु उसने देर से रात्रि में कुछेक अपने सशस्त्र भृत्यों को अन्धकारमय घाटी में, जो शवस्थल (Grotto) से जिसमें ईसा का शव रक्खा था, समीप ही थी, भेज कर स्वयं अपना भेद प्रकट कर दिया। उनसे कुछ अन्तर पर मन्दिर के सैन्यदल का एक विभाग उच्च-पुजारी के भृत्यों की आवश्यक सहायतार्थ बैठा था। परन्तु जनप्रवाद ने तुमको बतलाया था कि यह विभाग रोमन सैन्यदल का है, यह बात ठीक नहीं थी।

उच्च-पुजारी ने पाइलेट का भी विश्वास नहीं किया। इसी बीच में निकोडेमस मेरे साथ सङ्घटन के भाइयों के पास आया। आने का उद्देश्य यह था कि सब से अधिक बुद्धिमान् ब्योज्येष्ठ की भी अनुमति प्राप्त है कि ईसा को पुनर्जीवित करने का सर्वोच्च उपाय क्या करें? सब भाई

इस बात से सहमत हुए और निश्चय किया कि प्रथम कुछ रक्षक रक्षा के लिए शवस्थल पर भेज दिए जावें। और जोज़ेफ़ और निकोडेमस शीघ्रता से नगर को भावी उद्योगो की पूर्ति के लिए चले आएँ। अर्धरात्रि के बीत जाने और प्रातःकाल होने से पूर्व पृथ्वी में फिर कम्प आने प्रारम्भ हुए और वायु अति पीड़ाकर हो गया। चट्टाने हिलीं और फट गईं और छिद्रो से लाल रङ्ग की लपटें निकलने लगीं जिससे प्रातःकाल के निकट जो लाल रङ्ग का कुहरा पड़ा करता है वह प्रकाशमय हो गया। निस्सन्देह यह रात्रि भयानक थी। वनीय पशु भूकम्प से भयभीत होकर उच्च स्वर से चीख़ते-चिल्लाते, जिधर-तिधर भागने लगे। शवस्थल के सङ्कुचित द्वार से दीपक का कम्पपूर्ण प्रकाश भयानक रात्रि में इधर-उधर जाकर उच्च पुजारी के भृत्यों को भय-भीत कर रहा था।

वायु में होने वाले फुङ्कारों और पृथ्वी से होने वाली गरज और गम्भीर नादों से भी वे भयभीत हो रहे थे। सङ्घटन की आज्ञानुसार हमारा एक भाई शवस्थल में गया, वह चौथी श्रेणी का श्वेत वस्त्र धारण कर रहा था। वह एक गुप्त मार्ग से, जो पर्वत से शवस्थल तक है, और जिसे केवल हमारे सङ्घटन के सदस्य ही जानते थे, गया। उच्च-पुजारी के कायर भृत्यों ने श्वेत वस्त्रधारी हमारे भाई को पहाड़ से धीरे-धीरे उतरते और आते देखा, और उस समय प्रातः-

कालीय रक्त कुहर से अन्धकार भी हो रहा था, तो उन्होंने सोचा कि एक देवदूत पर्वत से उतर रहा है।

जब यह भाई उस शवस्थल पर आया जिसका वह रक्षक नियत हुआ था, तो उसने शवस्थल द्वार से निश्चयानुसार पत्थर निकाल लिया और उस पर बैठा रहा। ऐसा होने पर सिपाही भागे और इस बात को फैलाते गए कि एक देवदूत ने उन्हें वहाँ से निकाल दिया। जब वह युवक 'इसीर' पत्थर पर बैठा था तो फिर एक भूकम्प आया और वायु के एक झोंके ने शवस्थल में रक्खे दीपक को बुझा दिया अब वह प्रातःकाल का प्रकाश होने लगा।

ईसा की कल्पित मृत्यु हुए अब ३० घण्टे बीत चुके हैं। जब किसी भी प्रकार की ध्वनि रक्षक भाई शवस्थल में सुनता है तब सब के निकट जाकर देखता है कि कोई नवीन घटना तो नहीं हुई। उसे वायु से इस प्रकार की एक गन्ध आती प्रतीत हुई जो उस समय आया करती है, जब पृथ्वी से अग्नि निकला करती है। रक्षक युवक को वर्णनातीत प्रसन्नता हुई जब उसने देखा कि ईसा के होट हिले और उसने श्वास ली। वह शीघ्र ही सहायतार्थ उसके पास चला गया और छाती से उठती हुई धीमी नाद उसने सुनी। मुखाकृति बदल गई और आँखें खुल गईं। ईसा ने आश्चर्य के साथ हमारे सङ्घटन के नवछात्र को ध्यानपूर्वक देखा। यह घटना उस समय हुई थी जब मैं प्रथम श्रेणी के

भ्राताओं और जोज़ेफ के साथ सङ्घटन को छोड़ रहा था। जोजेफ़ यह अनुमति लेने आया था कि किस प्रकार उसकी और सहायता की जावे। निकोडेमस ने, जो एक अनुभवी चिकित्सक था, मार्ग में कहा था कि वायवी असामान्यावस्था जो तत्वो के परिवर्त्तन से हो रही है, ईसा के लिए लाभ दायक है और यह कि उसे ईसा के मरने पर कभी विश्वास नहीं हुआ था। और यह कि नवाघात से रक्त जल-प्रवाह आवश्यक चिन्ह था कि उसका जीवन समाप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार संलाप करते हुए हम सब शवस्थल पर पहुँचे। जोज़ेफ और निकोडेमस आ गए थे। हम सब संख्या में २४ और सब ही प्रथम श्रेणी के सदस्य थे। शवस्थल में प्रवेश करते ही हमने देखा कि श्वेत वस्त्रधारी नवछात्र दोनों जानुओ से शैवाल के बिछौने पर बैठा हुआ अपनी छाती का सहारा पुनर्जीवित ईसा के शिर को दे रहा था। ईसा ने अपने 'इसीर' मित्र को पहचान लिया। उसकी आँखें हर्ष से फड़कने लगीं, उसके गालो में हलकी उदास लाली आ गई और वह यह कहता हुआ बैठ गया—"मैं कहाँ हूँ।"

ऊपर के इस सारे विवरण को एक बार पढ़ जाने के बाद वस्तुतः उस पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नही रह जाती। यह विचार स्वयं इतना ही अधिक परिपुष्ट और सप्रमाण है, जितना कि पुनरुज्जीवन का साधारण विश्वास युक्ति-शून्य है। फिर भी हम नहीं कह सकते

कि यही विचार वास्तविक तथ्य और सर्वमान्य है। अनेक विद्वानों ने इस पुनरुज्जीवन की घटना की व्याख्या और ही ढङ्ग से की है और उसे भक्त-हृदय का केवल मानसिक विचार मात्र कह कर टाल दिया है। परन्तु हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है और बलपूर्वक कहा जा सकता है कि पुनरुज्जीवन की यह घटना साधारणतः जिस रूप में और जिस अर्थ में समझी जाती है वह रूप असम्भव है। उस रूप में इसको व्याख्या करना ईसा-चरित्र के सौन्दर्य को नष्ट कर देना है, स्वाभाविकता का गला घोंट देना है और ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर अत्याचार करना है। इस प्रकार के पुनरुज्जीवन मानने के तीन अर्थ हो सकते हैं—(१) या तो उसे ईसा के महान् और लोकोत्तर चरित्र का पुरस्कार कहा जावे, (२) अथवा यह समझा जाय कि ईसा जिस ईश्वरीय मिशन को लेकर आया था इस आकस्मिक महा प्रयाण ने उसकी गति में बाधा उपस्थित कर दी। उसी की पूर्त्ति के लिए इस पुनरुज्जीवन की आवश्यकता हुई। (३) अथवा यह परमात्मा की विशेष कृपा थी जिसका कोई कारण नहीं कहा जा सकता। परन्तु तर्क की कसौटी पर इन तीनों में से कोई भी बात पूरी उतरती नहीं दीखती।

पहला विचार एकदम तर्क और युक्ति से शून्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि नितान्त भोले-भाले मस्तिष्क से

उसकी उत्पत्ति हुई है। जो इस संसार के अतिरिक्त और कोई संसार नहीं समझता, जिसके यहाँ इस जीवन को छोड़ कर और कोई जीवन नहीं है। यह माना कि ईसाई पुनर्जन्म नहीं मानते, फिर भी उनके यहाँ इस संसार से उत्कृष्ट संसार है, इस जीवन से सुन्दरतर जीवन भी है। एक लोकोत्तर चरित्र के लिए यदि पुरस्कार की आवश्यकता थी तो वह सुन्दरतर जीवन, वह उत्कृष्टतर संसार उसके लिए पर्याप्त था। केवल इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्व की व्यवस्था का उच्छेद और एक अनहोनी घटना की कल्पना किसी विचारशील मस्तिष्क में स्थान नहीं पा सकती। दूसरा विचार अनुपयुक्त, असम्भव और उपहासास्पद सा प्रतीत होता है। परमात्मा का कोई विशेष मिशन लेकर ईसा जगत् में जन्मा था। उस ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्त्ति में अतर्कित विघ्न पैदा हुआ, जिसका प्रतिकार ईश्वर के पास कोई न था। जिस ईश्वर की आयोजनाएँ इस प्रकार उपहासास्पद और उपेक्षा के योग्य होती हैं उसकी अवस्था सचमुच बड़ी दयनीय है। उसके साथ 'ईश्वर' शब्द जोड़ना ईश्वरत्व का घोर अपमान करना है। एक बात और है जो इस सम्बन्ध में कही जा सकती है; वह यह कि लोगो को उसकी मसीहत पर—ईश्वर-पुत्र होने पर—विशेष रूप से विश्वास दिलाने के लिए परमात्मा ने यह युक्ति सोची थी। हमें यह युक्ति पहले दोनों विचारों से भी अधिक सारहीन मालूम

होती है। विश्वास हृदय की चीज़ है, मस्तिष्क से भी थोड़ा-बहुत सम्बन्ध कहा जा सकता है। उनके भीतर अतर्कित रूप से स्वतः ही अनेक प्रकार की भावनाओं का उदय और अस्त हुआ करता है। यदि सचमुच इस प्रकार के विश्वास दिलाने की आवश्यकता ही थी तो क्या वह ईश्वर जो सर्व शक्तिमान है—जो एक अनहोनी घटना को करने में कुण्ठित न हुआ वह मानव-हृदय और मस्तिष्क में ईसा के विषय में इस प्रकार की भावना उदय न कर सकता था? क्या प्रकृति के नियम और विश्व की व्यवस्था का उल्लङ्घन किए बिना यह कार्य उसके लिए असम्भव था? फिर यह तो साधारण पुरुषों से भी अधिक गई-बीति चेष्टा है। साधारण पुरुष भी लौकिक व्यवहार में जिस व्यवस्था को स्थिर कर लेते हैं—उसका उल्लङ्घन उपायान्तर रहते हुए पसन्द नहीं करते। फिर वह तो विश्वनियन्ता है। वह स्वयं ही यदि विश्व-व्यवस्था का उल्लङ्घन करेगा तो फिर उसकी रक्षा कैसे हो सकेगी?

"बारी खेत खाय तो उपाय कहा करिए!"

पुनरुज्जीवन सम्बन्धी इस घटना का जो विवरण चारों जीवन-वृत्तान्तों में दिया है उसकी यदि तुलनात्मक आलोचना की जावे तो हम देखेंगे, घटना का जितना अंश स्वाभाविक, युक्तिसङ्गत और सत्य सा प्रतीत होता है उतने—केवल उतने ही—अंश में सब लेखक एकमत हैं। स्त्रियाँ क़ब्र देखने

गईं—यह सम्भव है। क़ब्र खुली हुई थी, यह भी सम्भव है। ईसा की मृतक देह उसमें नहीं थी, यह भी हो सकता है। उन्हें क़ब्र में श्वेत वेशधारी व्यक्ति दिखाई दिया था, यह भी सम्भव है। चारों लेखक इन—केवल इन अंशों में परस्पर सहमत हैं और उनकी टक्कर ऊपर उद्धृत इसीर के पत्र से ठीक बैठ जाती है। शेष अनेक अंशो में उनमें परस्पर मतभेद पाया जाता है। जैसे :—

१—पहला मतभेद स्त्रियो की संख्या के विषय में है। 'जॉन' केवल एक 'मेरी मगदलीनी' का उल्लेख करता है। मैथ्यू ने मेरी मगदलीनी और उसके साथ एक और मेरी का वर्णन किया है। मार्क ने यह संख्या तीन तक बढ़ा दी है जिनमें दो उपरोक्त मेरी और एक रोलैम है। लूक-अनुसार यह संख्या तीन से भी और ऊपर चली गई है जिनमें दो मेरी जोना और 'कुछ अन्य' स्त्रियाँ सम्मिलित हैं।

२—उन स्त्रियों के सामने शुभ्र वेशधारी जो पुरुष प्रकट हुए थे उनके विषय में भी परस्पर मतभेद है। मार्क ने एक 'नवयुवक' का उल्लेख किया है। मैथ्यू ने एक देवदूत का वर्णन किया है। लूक ने दो मनुष्यों और जॉन ने दो देवदूतो का ज़िक्र किया है। जॉन के अनुसार इन देवदूतों का दर्शन भी मेरी के दुबारा आगमन के समय हुआ है।

३—श्वेत वेशधारी उस व्यक्ति ने स्त्रियो से क्या शब्द कहे, इस सम्बन्ध में भी मतभेद है। मैथ्यू और मार्क के

अनुसार उसने ईसा के पुनरुज्जीवन का विश्वास दिलाया, उसके गलील जाने की बात कही और शिष्यो को मिलने के लिए सन्देश भेजा। ल्यूक ने ईसा के पूर्व कथन की ही ओर सङ्केत करते हुए केवल साधारण रीति से उसके उठ बैठने की बात कही है। और जॉन के अनुसार उन्होंने मेरी से केवल यह कहा है कि—

Women ! Why weepest thou ?

"हे स्त्रियो ! तुम क्यो रोती हो ?"

४—चौथा मतभेद यह है कि मैथ्यू, ल्यूक और जॉन के अनुसार स्त्रियों ने जो कुछ देखा था उसकी सूचना तत्काल जाकर ईसा-शिष्यों को दी है, परन्तु मार्क के अनुसार—

They said nothing to anyone.

५—पुनरुज्जीवन के बाद ईसा किन लोगों के सामने किस रूप में प्रकट हुआ, इस सम्बन्ध में भी परस्पर मतभेद है। मार्क में सब से पहले मेरी मगदलीनी, उसके बाद राह-चलते दो शिष्यो और उसके बाद इकट्ठे ग्यारह शिष्यों को जब वह भोजन पर बैठे थे, दर्शन दिया। मैथ्यू के अनुसार पहले दो स्त्रियों को और फिर ग्यारह शिष्यों को उसके दर्शन हुए। जॉन के यहाँ पहले एक स्त्री को, फिर एकत्रित शिष्यो को दो बार दर्शन मिले। ल्यूक के अनुसार पहले क्लीओपा और उसके साथियों को पीछे शिष्यो को उसके दर्शन हुए हैं।

इन सब व्याख्याओं के अतिरिक्त ईसा के इस पुनरुज्जीवन की एक और भी व्याख्या की जाती है, जिसका आशय ईसा के भौतिक नहीं, बल्कि आत्मिक पुनरुज्जीवन से है। यह व्याख्या भी बहुत अंश तक युक्तिसङ्गत कही जा सकती है। इस प्रकार का पुनरुज्जीवन का विश्वास हर-एक जाति में पाया जाता है, उसे हम अयोक्ति कभी नहीं समझते हैं। इस व्याख्या-शैली के समर्थक लोग पीटर (Peter 1st) के तृतीय परिच्छेद की १८ वीं Verse को अपने विचार के पोषण के लिए प्रायः उपस्थित करते हैं। आयत के अन्तिम शब्द इस प्रकार हैं :—

"Being put death in the flesh but quickened by the spirit."

अतः पुनरुज्जीवन सम्बन्धी विचारों की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारण विश्वास के अनुसार जिस प्रकार का पुनरुज्जीवन माना जाता है वह न सम्भव है, न युक्त है, और न सुन्दर है। ईसा-चरित्र का महत्व उससे बढ़ता नहीं, बल्कि क्षीण ही होता है। यदि ईसा-चरित्र से इस अलौकिक असम्भव विश्वास को हटा दिया जाय तो सैकड़ों ऐसे पुरुष जो अब तक उसकी उपेक्षा कर रहे हैं, बड़ी उत्सुकता के साथ उसे अपनाने लगेंगे। ईसा-चरित्र के साथ सब से बड़ा अन्याय यदि कोई हुआ है तो वह यही मिथ्या-विश्वास है। इसने ईसा-चरित्र को—उसके

आदर्शों को—विश्वजनीन आदर्श बनने में अपरिमित बाधा उपस्थित की है। इस प्रकार के अन्धविश्वास का नाश जितनी जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा है। उससे ईसा-चरित्र की श्रीवृद्धि और गौरव-वद्धि होगी, ऐसी हमारी धारणा है।